

• श्री •

काश्मीर नरेश जयापीड के प्रधान मंत्री कवि दामादरगुप्त द्वारा विरचित

# कुट्टनी मूलम्

अथवा

शम्भुलीकृत नामक काव्य

★

अनुवादक

अत्रिदेव विद्यालंकार

भूमिका

डाक्टर सूर्यकान्त, डि लिट्.

प्रिन्सिपल भारती महाविद्यालय [ बनारस हिन्दूयूनिवर्सिटी ]

★

प्रकाशक

इन्डोलॉजिकल्, बुक हाउस

सी.जे. ३८/१६ वास फाटक, पो० ब० न० ६८, वाराणसी

प्रकाशक—

इन्डोलॉजिकल बुक हाउस  
सी के ३८/१६ वास पाटक  
पो० ब० न० ९८, वाराणसी ।

सर्वाधिकार सुरक्षित प्रकाशवाधीन ।  
सन् १९६१ ई०  
मूल्य ६)

मुद्रक—

सूरज प्रसाद गुप्त,  
ज्वाला प्रिंटिंग वर्क्स, त्रिलोचनघाट वाराणसी ।

## प्रस्तावना

इतिहास—संस्कृत के प्राचीन विद्वान् कुट्टनीमतम् से भली प्रकार परिचित थे, उन्होंने इसको बहुत स्थानों पर उद्धृत किया है<sup>१</sup>। बाद में यह बहुत समय तक एक प्रकार से लुप्त रहा। सन् १८८३ में डा० पोर्टमन को संस्कृत पुस्तकों की खोज करते समय लाट्पत्र पर लिखी इसकी प्रति मिली। इस हस्तलिखित प्रति में पुस्तक का नाम "शम्भलीमतम्" दिया था। यह प्रति अधूरी थी। अपनी रिपोर्ट में डा० पोर्टमन ने इसका उल्लेख किया है।<sup>२</sup>

महामहोपाध्याय पण्डित दुर्गाप्रसाद, जयपुर निवासी ने १८८६ में इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त की। इन हस्तलिखित प्रतियों में पुस्तक का नाम 'कुट्टनीमतम्' था। ये दोनों प्रतियाँ अधूरी और अशुद्ध थीं। फिर भी सन् १८८७ में काव्यमाला शुद्ध तीन में इसका प्रकाशन किया गया, क्योंकि यह रचना प्राचीन और सुन्दर थी।

सन् १८९७-९८ महामहोपाध्याय श्रीहरप्रसाद शास्त्री ने अपनी नेपाल-यात्रा में संस्कृत पुस्तकों की खोज करते समय इसकी एक प्रति प्राप्त की। यह प्रति सबसे पुरानी प्रतीत होती है<sup>३</sup>।

श्री तनमुखराम त्रिपाठी ने सामान्य विद्यार्थियों के उपयोग के लिए इस ग्रन्थ को टिप्पणों के साथ प्रकाशित करने का विचार किया। इसीलिए उनके मित्र काशीवासी श्री बाबू गोविन्ददाम ने इसकी टिप्पणी तैयार करवाई। परन्तु

१ कुट्टनीमतम् के आयाद	प्रतीक	उद्धृत स्थान
६६७	अतिक्रीमल ( पल्लव )	का प्र अ२०२
१०३	अभिसारय	का. प्र ८६७, ६१८०
१६५	एकामात्र	सुभा १०७१
८३३	कुलपत्न	पञ्चतन्त्र ४२०
८१७	वर्क प्रवर्तित	पञ्चतन्त्र ११३५
८२०	सविवादे परलोक्ष	पञ्चतन्त्र ११३६

२ संस्कृत की पुरतों की खोज की डा० फिमन की रिपोर्ट—दम्बई विभाग—१८८३-८४, पृष्ठ २३।

३ रायल एशियाटिक सामायनी द्वारा प्रकाशित कुट्टनीमतम् काव्य की भूमिका के अनुसार।

श्री त्रिपाठीजी को इस टिप्पणी से सतोष नहीं हुआ उन्होंने स्वयं विस्तृत व्याख्या संस्कृत में लिखकर इसे बड़ परिश्रम और मुदरता से प्रकाशित किया ।

**काव्य का नाम**—कहण न अपनी राजतरंगिणी में इस काव्य का नाम कुट्टनीमतम लिखा है इसीलिए कुट्टनीमतम नाम से यह काव्य ध्यात हुआ । कुट्टनी और गम्भीरी दोनों ही गद्य समानाधिक है<sup>१</sup> । एक शब्द द्वारा दिया हुआ परामर्श—इस काव्य का सार है ।

**ग्रन्थकर्ता का समय**—कुट्टनीमत काव्य के निमाण के समय की परिस्थिति का ज्ञान हमको कल्हण की राजतरंगिणी से मिलता है । इसके अनुसार जयापीड राजा से पूर्व जिन दो-तीन राजाओं ने राज्य किया था वे बहुत अयोग्य अयोग्यकारी लम्पट और कामुक थे । जयापीड ने अपने पास विद्वानों तथा कवियों को आश्रय दिया । उसने ही इस काव्य के कर्ता दामोदर गुप्त को अपना प्रधान मंत्री भी बनाया । जयापीड प्रारम्भ में बहुत ही पवित्र एवं धर्मात्मा थे । परन्तु अपने जीवन के अन्तिम काल में वे लम्पट बन गये थे तथा इन्द्रिय सुख में ही रत रहने लग गये । जयापीड के पाछ ललितादिय गद्दी पर बैठे थे । इसके विषय में कल्हण ने लिखा है कि वह कुट्टनियों से घिरा रहता था । उसकी मिनता उन लोगों से थी जो वेश्याओं की कथाएँ कहने में दक्ष थे । वह छोटी स्त्रियों से सन्तुष्ट नहीं होता था ।

राजा का ही अनुकरण अथ राजकुमारों ने किया युवा राजकुमारों ने तथा धनी पुरुषों ने भी राजा का अनुकरण किया । कुट्टनीमतम में जहाँ उच्च समाज का चित्रण मिलता है वहाँ पर छोटे समाज का चित्रण भी मिलता है । जयापीड के समय बहुत से कवि हुए और बहुत से काव्य बने । परन्तु कुट्टनीमतम के सिवाय उनके समय का कोई काव्य अभी तक नहीं मिला । इसलिए इस ग्रन्थ के सिवाय अथ किसी भी प्रकार से हम उस समय की स्थिति का ठीक पता नहीं लग सकता ।

**ग्रन्थकर्ता का उद्देश्य**—दामोदर गुप्त इस अनतिक गिरावट से बहुत दुःखी था इसीलिए उन्होंने कुट्टनीमतम में लम्पट मनुष्यों का चित्रण किया है । कुट्टनी विकराला के मुख से कवि ने चतुरता बपट छल मनुष्यों की निबलता आदि की सब बातें कहलवाई हैं । कवि ने इस काव्य को लिखने का स्पष्ट उद्देश्य अन्त में लिखा है कि—

१ कुट्टनी गम्भीरी समे —अमरकोश गम्भीरी गम्भीरानुपदेशदायिनी कुट्टनी इति वदन्ति वासवराज श्री व्याख्या में श्रीकृष्णधरि ।

काव्यमिदं यः शृणुते सम्यक् काव्यार्थपालनेनासौ ।

नो वञ्च्यते वदाच्चिद् वेद्याधूर्तकुट्टनीभिरिति ॥ १०५९ ॥

जो मनुष्य इस काव्य को सुनता है और ठीक प्रकार से इस पर चलता है वह कभी भी वञ्चा, धूर्त और कुट्टनियों से उगा नहीं जाता ।

कवि—राजतरंगिणी के अनुसार दामोदर गुप्त जयापीड राजा का मंत्री था । इसके समकालीन धातुपाठ के वर्त्ता भट्ट, उद्भट मो इसी समय हुए । तीसरे पण्डित मनोरथ ये, जिनके कुछ पद्य क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारवर्त्ता में उद्धृत किये हैं । चौथे पण्डित वामन ये, जिन्होंने अल्हार सूत्र बनाया और पाणिनि की अष्टाध्यायी पर काशिकावृत्ति सम्मिलित रूप में लिखी<sup>१</sup> ।

कल्हण की दी हुई वशावली के अनुसार जयापीड ने ७५१ से ७८२ ईस्वी परचात तक राज्य किया । परन्तु कुछ लोग इस वशावली को ठीक नहीं मानते, उनके मत से जयापीड ने ७७९ से ८१३ ईस्वी परचात तक राज्य किया ( स्टेइन लिखित राजतरंगिणी की भूमिका )<sup>२</sup> । यहाँ काल दामोदर गुप्त का है ।

कवि ने अपने सम्बन्ध में कोई भी परिचय नहीं दिया । राजतरंगिणी में कवि के सम्बन्ध में एक ही श्लोक है, जिससे इतना ही पता चलता है कि वे जयापीड के मंत्री थे । पुस्तक के अन्त में दी हुई पुष्पिका भी इसी को पुष्ट करती है ।<sup>३</sup>

कवि दामोदर गुप्त की बनाई दूसरी कोई रचना अभी तक उपलब्ध नहीं । बल्लभदेव ने अपनी सुभाषितावली में कवि के चार श्लोक उद्धृत किये हैं । इससे अनुमान होता है कि सम्भवतः इनकी अन्य भी रचनाएँ रही हों<sup>४</sup> ।

काव्यरचना—नामान्यत भाषा सरल है, लम्बे एवं कठिन समासों से रहित है । थोड़ा सा स्थाना पर अव्यतिष्ठ शब्दों का उल्लेख है ( सुम्भिका-६४, उच्चण्ड-६६, ) । शब्दरचना सुगम एवं मनोहर है । कुट्टनीमतम् में शृंगार रस

१ क्षीरामिश्रल्लक्ष्मिविद्योदाध्यायात्मशृङ्गुण ।

पुनै सह ययौ वृद्धिं स जयापीडपण्डित ॥ राजतरंगिणी ४८६,

विद्वान्दीनारक्षेण प्रवह दृढचेतन ।

भट्टोऽभूदुभयस्तस्य भूमिगतु<sup>१</sup> सभापति ॥

स दामोदरगुप्ताख्य कुट्टनीमतारिणम् ।

कविं कविं शैलिरिव पुनै धीर्मचव व्यधात् ॥

मनोरथ शराददृष्टत्क सन्निभास्तथा ।

बभूवु कवयस्तस्य वामनापाश्च मनिषा ॥ रा त ४६४, ४६६, ४६७

इति श्रीकाशमारमहामण्डकमहोपाध्यायराजन्यायाडमन्त्रिप्रवरदामोदरगुप्तकविविरचित कुट्टनी मत समाप्तम् ।

श्री मणेशराव रामकृष्ण तैलप की भूमिका के आधार पर

की प्रदानता है कवि बहुत सूक्ष्मदर्शी तथा अनुभवी है, उसने अपनी रचना को अन्त तक बहुत ही सुन्दरता से पूर्ण किया है।

प्रोफेसर कीय ने कुट्टनीमतम् को उपदेशक प्रबोधक काव्य की श्रेणी में रक्खा है, उसने कहा है—

काश्मीर के राजा जयापीड ( ७७९-८१२ ) के मंत्री दामोदर गुप्त का कुट्टनामत अपक्षावृत्त अधिक रोचक कृति है। उसका समय भी निश्चित है। भारतीय वेद-साहित्य का यह एक प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें एक युवती वेश्या को शिक्षा दी गई है कि उसे धरावर केवल सम्पत्ति की इच्छा रखते हुए ही किस प्रकार चाटुकारिता की समस्त कलाओं के प्रयोग और कृत्रिम प्रेम द्वारा अपने लिये धन कमाना चाहिये। कल्हण ने एक कवि के रूप में दामोदर गुप्त का उल्लेख किया है और मम्मट रूय्यक तथा सुभाषित संग्रह में उनके उद्धरण दिये हैं। इससे स्पष्ट है कि इनकी कृति न पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त की थी। साहित्यिक इतिहास की दृष्टि से उक्त काव्य का महत्व यह है कि उसमें हर्ष की रत्नावली के प्रदर्शन की एक प्रभावक और वास्तविक ढंग से चित्रित किया गया है। कवि की शैली सरल पर अरमणीय नहीं है। उसके कुछ पद्यों में अपरिष्कृतता या ग्राम्यदोष के रहन पर भी बुद्धि और नर्मोक्ति दोनों विद्यमान हैं।

संस्कृत साहित्य का इतिहास भाग २ पृष्ठ २८२-२८३

कामशास्त्र सम्बन्धी साहित्य संस्कृत में पर्याप्त है। पुरुषार्थचतुष्टय में धर्म के लिये मनु, बृहस्पति, याज्ञवल्क्य, पाराशर के नाम से स्मृतियाँ बनीं, उसी प्रकार काम के क्षेत्र में वात्स्यायन, वाग्भट्ट, धनुक, दत्तक आदि ने इसके भिन्न भिन्न अंगों को लेकर ग्रन्थ बनाये। इनमें दत्तक ने पाटलीपुत्र की वेश्याओं की प्रायना पर पृथग् ग्रन्थ रचना की थी। वेश्याओं की शिक्षा के लिये क्षेमेन्द्र ने समयमातृका लिखी। इसी कवि ने नर्ममाला में वेश्याओं का चित्र भी चित्रित किया है। इन सबका उद्देश्य एक ही था, मनुष्य इनको पढ़कर इनकी बुराइयों से परिचित हो जाय और इस रास्ते पर पैर न बढ़ाय<sup>१</sup>। इसी श्रेणी में शृंगारदीपिका, रतिमञ्जरी, अनगरम, रतिरहस्य, रतिशास्त्र, पञ्चसायक आदि रचनाएँ हैं।

प्राचीन काल में संस्कृति के दो ही स्थान थे, एक वाराणसी और दूसरा पाटलीपुत्र या कुसुमपुर। कुसुमपुर का नाम मुद्राराक्षस में भी आता है। इन्हीं दो स्थानों का केन्द्र रखकर कुट्टनीमतम् की रचना की गई है। इसमें प्राचीन काल

१ अथर्ववेद में कुत्तक मांस को भी शुण बताया है, इससे यह खाने योग्य नहीं माना जाता।

था। इसी से स्थान स्थान पर संस्कृत के अन्य ग्रन्थों से प्रसंगानुवूल उद्धरण टिप्पणी के रूप में दिये हैं। इससे इतना लाभ जरूर मिला कि संस्कृत के कुछ नये ग्रन्थ देखने में आ गये। उनसे यह स्पष्ट हो गया कि यह विषय महत्व का है और इस विषय में बहुत अधिक सामग्री संस्कृत साहित्य में सुरक्षित है, जिनका कि उपयोग इस जमाने में हमको करना चाहिये।

अनुवाद के विषय में मुझे स्वयं कुछ नहीं कहना—मैंने अभी तक आयुर्वेद साहित्य में कार्य किया है यह अनुवाद इस विषय में मेरा पढ़ा है। सम्भवतः इसमें भाषा या अन्य प्रकार की कुछ त्रुटियाँ या स्क्लन रह गया हो, जो कि पाठकों के सुझाव पर अगले संस्करण में सुधार दिया जायेगा। मुझे यही सन्तोष है कि हिन्दी साहित्य में यह अनुवाद प्रकाशित हो रहा है।

मेरी नम्र प्रार्थना को स्वीकार करके, समय न होत हुए भी डाक्टर श्री मूयकान्त जी, डिप्टि प्रिन्सिपल भारतीय महाविद्यालय में (काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय) इसकी जो प्रस्तावना लिखी, उसके लिए मैं बहुत आभारी हूँ। इसके साथ ही प्रकाशक श्री रामेश्वर मिह (इन्डोलाजीकल बुक हाऊस वाराणसी) का भी उपकार भानता हूँ कि उन्होंने पुस्तक को उत्तमता से समय पर प्रकाशित किया।

अत्रिदेव विद्याकार

# विषयानुक्रमिका



	पृष्ठाङ्क	पृष्ठाङ्क
मंगलाचरण [ कामदेव सम्बन्धी ],	१	१
प्रथरुता की प्रार्थना [ काव्य का प्रारम्भ ]	२	१
काव्यगुप्ती [ काव्यी ] का वर्णन	३ १६	२५
मालती नामक वैश्या का वर्णन	२० २१	६
प्रसन्नगण किसी अन्य से गद्गद वक्ष्याओं को वामुक हृत्पथ से जीतने का उपाय जानने चाहिये	२२ २३	६
इस आया का सुनना और		
इसलिये कुट्टनी के उपदेश का जानने का इच्छा से		
निकराला नामकी कुट्टनी का घर जाना	२४ २६	६७
निकराला नामकी कुट्टनी का वर्णन	२७ ३०	७
उसका घर में जाकर मालती का बैठना	३१	८
मालती का कहना प्रारम्भ करना	३२	८
प्रारम्भ में निकराला की प्रशस्ति	३३ ३६	८-९
मालती का करना मन्त्रन कहना	४० ४२	९
निकराला का मालती को सन्तवना देना	४३	९
निकराला का प्रतिवचन काम'बनों को घर में करने वाले मालती से सौन्दर्य का वर्णन	४४ ४७	९ १२
शाल	४४	९
वृक्ष	४५	१०
वृक्षशान्ति	४६	१०
वृक्षशान्ति	४७	१०
समुन्नाय	४८	११
रान	४८	११
शादु	४९	११
मन्त्रदेश	४९	११



	आर्याङ्क	प्राङ्क
रोमराजी	५२	११
जघन	५३	१२
ऊरु	५४	१२
जघायें	५५	१२
पैर	५६	१२
चाल	५७	१२
अतिशय धन लाभ के लिये भट्ट के पुत्र रिन्ता		
मणि को आकर्षित करने का उपदेश	५८ ६१	१३
चि तामणि के वश का वर्णन	६२ ६७	१३ १५
चिन्तामणि की चेष्टा का वर्णन	६८ ८७	१५ १८
चिन्तामणि को वश म करने के उपाय का कहना	८८	१६
पहले दूता को भेजने का आदेश	८९	१६
भेजी हुई दूती के करणीय कार्यों का उपदेश	९०	१६
दूती की बातचीत का उपदेश	९१ १०६	१६ १२
भट्टपुत्र के दशन से अपने को धन्य कहना	९१	१६
वेश्या के बुरे आचरणों में यासित मन वाले		
पुरुषों में वेश्या के विरह व्यथा का अनौचित्य—		
प्रकाशन	९२ ९५	१०
इसमें दुराशा से कहना	९६	२०
विरहाक्रान्ता मालती की अवस्था का वर्णन	९७ १०५	२० २२
मालती की जीवन रक्षा की प्रार्थना	१०६	२२
मालती के गुणों को कहना	१०७ १२५	१२ १५
मालती के गुणों का वर्णन	१०८	२२
शरीर	१०८	२२
स्नावण	१०९	२२
अलकावलि	११०	२२
वदन	१११	२३
नेत्र	११२	२३
अवर	११३	२३
मध्य भाग	११४	२३
नितम्ब	११५	२३

	आपाङ्क	पृष्ठाङ्क
कदयुगल	११६	२४
सम्पूर्णरूप का वर्णन	११७-१२२	२४
मालती का कामशास्त्र आदि नाना कलाओं में निपुणता का वर्णन	१२३-१२५	२५
अपुण्यकारी पुरुषों के लिये मालती दुःप्राप्त है	१२६-१२७	२५
इतना सब कहने पर भी यदि मष्ट का पुत्र मालती के प्रति उदासीन रहे, तब उपालम्भ रूप में दूती के करणीय कार्यों का उपदेश	१२८	२६
उपालम्भ का दण्ड	१२९-१३३	२६
निर दूती द्वारा सान विधि	१३४-१३७	२७
प्रलोभित मष्टपुत्र के घर में आने पर उसके आदर में करणीय कार्यों का निष्कला द्वारा उपदेश	१३८-१४०	२८
मालती की माता को स्वागत चाटुमाण्ड्य आदि करने का उपदेश	१४१-१४८	२८-३०
मालती को नायक के समीप जाने का उपदेश	१४९-१५०	३०
वैश्वोचित स्वरूप का उपदेश	१५१-१६४	३०-३४
नायक के आकर्षण और रागवृद्धि के लिये जम्पांशुक वचनों का उपदेश	१६५-१६८	३४-३५
प्रेम की स्थिरता के लिये नायक से प्रार्थना करने का उपदेश	१७०-१७२	३५
गणिका में भी शोषने वाले स्नेह, शक्ति आदि गुण कष्टरूप होने की भाँति स्वाभाविक भी होते हैं, इनकी पुष्टि—	१७३-१७४	३५
गणिका का प्रेम स्थिर होता है, इसको सिद्ध करने के लिये मालती द्वारा हास्य का आश्रय कहना	१७५	३५

### [ हारलता-आश्रयान ]

पादलीपुत्र महानगर का वर्णन	१७६-१८२	३६-३८
पुन्दर नामक ब्राह्मण का वर्णन	१८३-१८६	३८-४०
पुन्दर द्विज के वंश का वर्णन	१८७-२००	४०
पुन्दर के पुत्र सुन्दरसेन का वर्णन	२०१-२०८	४०-४२

	आर्थाङ्क	पृष्ठाङ्क
गुण पालित नामक सुन्दरसेन के मित्र का वर्णन	२१०	४२
प्रसंगवश किसी से गाई हुई आर्या में देशान्तर पर्यटन की स्तुति का सुन्दरसेन द्वारा श्रवण	२११ २१२	४२
सुन्दरसेन कृत पृथ्वी पर्यटन प्रयोजन वर्णन एवं पर्यटन के लिये गुणपालित से प्रार्थना करना	२१३ २१६	४२
गुणपालित द्वारा प्रवास में होने वाले हुए लोगों का वर्णन	२१७ २२०	४२
अमीष्ट कार्य के करने में दत्तचित्त मनुष्यों को शयन आसन आदि की चिन्ता नहीं होती इस अभिप्राय की आर्या को किसी से गाते हुए सुन्दरसेन ने सुना	२२१ २२३	४२ ४४
मित्र सुन्दर सेन के साथ नाना प्रकार के कौतुक देखते हुए सम्पूर्ण पृथ्वी का भ्रमण करना	२२४ २३७	४४ ४६
सुन्दरसेन के साथ अर्बुदाचल (आबू) पर आना	२३८	४६
गुणपालित कृत अर्बुदाचल का वर्णन	२३९ २४६	४६ ४७
अर्बुदाचल में स्थित मुनिया का वर्णन	२४७ २४९	४७
अर्बुदाचल उपत्यका का वर्णन	२५० २५३	४७ ४८
इस प्रकार वर्णन करते हुए प्रसंगवश किसी से गाई हुई आर्या में जो अर्बुदाचल के प्रष्ट भाग को नहीं देखते, उनका बहुदेश पर्यटन व्यर्थ है, इस अर्थ की आर्याको सुन्दरसेन ने सुना	२५४ २५५	४८ ४९
सुन्दरसेन का मित्र के साथ अर्बुदाचल की चोटी पर स्थित देवालय आदि की शोभा देखने के लिये जाना	२५६-२५७	५०
वहाँ पर उद्यान में खेलती हुई अति रमणीय हारलता को देखना	२५८ २६१	५०
हारलता को देखकर कामरे यशभूत सुन्दर सेन द्वारा उसके सौन्दर्य का वर्णन	२६२ २६६	५० ५१
सुन्दरसेन का अनुराग जानकर कामपोटित हारलता की सात्विकभावोक्ति विविध कामावस्था का वर्णन	२६७ २७५	५१-५२

	आयाङ्क	प्रयाङ्क
हारलता की कामपीडितावस्था को जानकर उसकी सगी शशिप्रभा द्वारा-वेश्याओं का सद्भाव जय अनुराग हितकारी नहीं शत्रु कृत्रिम अनुपाग है। हितकारी है-दसका उपदेश	२७६-२८१	५२-५४
कामपीडा को सहने में असमर्थता ज्ञातकर हारलता ने उसने लिये शीघ्र गन्त करने न लिये शशिप्रभा को कहना	२८२-२८४	५४-५५
शशिप्रभा का मुन्दरसेन के सामने हारलता की निरहाजस्था का वर्णन तथा उसने जीवन की रक्षा के लिये प्रार्थना	२८५-३००	५५-५८
मुन्दरसेन ने शशिप्रभा के वचनों का आश्चर्य किया है, यह जानकर गुणपालित द्वारा की हुई वेश्याओं की निन्दा	३०१-३२४	५८-६३
इसी अन्तर में किसी पुरुष द्वारा प्रसंगवश गाई हुई तीन आयाओं द्वारा "स्वय आदि हुई कामपीडित मुन्त्री युवती का त्याग करने वाला मनुष्य मूर्ख ही है" सुनना	३२५-३२८	६४
गुणपालित के साथ हारलता के घर जाने का मुन्दरसेन का निश्चय करना	३२९-३३०	६४-६५
वेश्यावास की धीधी में घुसते समय मार्ग में वेश्याओं और गिरी में होने वाले परस्पर उपालम्भ कलह आदि का मुन्दरसेन द्वारा वर्णन	३३१-३६८	६५-७२
घरमें आये मुन्दरसेन का हारलता द्वारा किया सत्कार	३६९	७२
मुन्दरसेन के प्रति हारलता की समीचीन चाटुनि और बाहर चला जाना	३७०-३७४	७२-७३
हारलता और मुन्दरसेन का कामशास्त्रानुसार नाना प्रकार के सम्भोग प्रकार का वर्णन	३७५-३९०	७३-७७
प्रातः काल में हारलता का शय्यागृह से निकलना	३९१	७७

	आयाङ्क	पृष्ठाङ्क
इसने पीछे अपने करणीय कार्यों को करने के लिये बाहर जाते हुए मुन्दरसेन ने गणिकाआ और कामुहों के भिन्न भिन्न सम्मेलन में अनुभूत नीचरत आदि का वर्णन सुनना	३८२ ४०४	७१-८१
मुन्दरसेन ने हारलता के साथ षेड वर्ष तक सुखपूर्वक समय व्यतीत किया	४०५	८२
मित्र के साथ उद्यान में घूमते हुए मुन्दरसेन ने एक दिन पिता के पास से आये हनुमत नामक लेखवाइक को देखा ✓	४०६ ४०६	८२
सदाचार को छोड़कर कुलित वेश्या सगम में क्या पँस गये, तुम्हारे ऊपर कुटुम्ब का भार सौंप कर मैं परलाक साधन में इच्छा रखता हूँ, इसलिये घर चले आओ, यह सदेश पाया	४१० ४२४	८२-८४
इस समय प्रसंगवश किसी से पड़ी आया को “अज्ञानवश कुमार्ग में गिरे पुरुषों के लिये गुरुजनों के उपदेशानुसार कार्य करना ही हितकारी है” सुना	४१५ ४१७	८४
इसी समय गुणपालित ने अपने मित्र को उपदेश देने के लिये विषयासक्त मनुष्यों की निन्दा, सज्जन पुरुषों की श्लाघा और कुलागनाओं की स्तुति	४२८ ४४५	८४-८८
पिता का आज्ञा अनुल्लंघनाय, हारलता का वियोग जीवन नाशक, इस प्रकार वर्त्तन्यमूढ़ बने मुन्दरसेन का गुणपालित को कहना	४४६ ४४८	८८
पिता के आदेश से जाने का निश्चय करके हारलता का मुन्दरसेन के साथ जाने का निश्चय	४४९	८८
नगर के बाहर स्थित वटवृक्ष के नीचे आकर अश्रुभरी आँखों से मुन्दरसेन का अपनी प्रिया हारलता को कहना ‘मुझे भूलना मत कहकर उसके गुणों का कहना	४५० ४५६	८८-८९

	आर्याङ्क	पृष्ठाङ्क
सुन्दर सेन के गुणों का वर्णन करके हल्केपन या प्रणयवश जो अनुचित या प्रतिकूल किया हो, उसने लिये हारलता का सुन्दरसेन से क्षमा मागना	४५७-४६४	८८-९१
एक दूसरे के प्रेमपाश में बद्ध मनुष्यों में वियोग होने से मृत्यु होती है या शान होता है—इस अभिप्राय की आर्या किसीने पढ़ी	४६५-४६६	९१-९२
इस आर्या को सुनकर—‘प्रिये ! मैं जाता हूँ, सुली रहो’ यह कहकर सुन्दरसेन के जाने पर हारलता का घटवृक्ष के नीचे प्राण त्याग करना	४६७-४७२	९२-९३
पीछे से आने वाले पथिकों से हारलता के स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रश्न का सुन्दरसेन द्वारा पूछा जाना	४७३	९३
पथिक ने हारलता की मृत्यु का संदेश दिया	४७४	९३
हारलता की मृत्यु का समाद सुनकर उसके गुणों का वर्णन करते हुए सुन्दरसेन का विलाप	४७५-४८६	९३-९७
गुणपालित द्वारा चिता बनाकर हारलता का दाह-संस्कार करना	४९०	९७
चिता में जलने का निश्चय करके सुन्दर सेन ने प्रसंगवश किसीसे कही इस आर्या को सुना ‘वियेकी पुरुष को चाहिये स्त्री धर्म में मरने की बुद्धि न करे, किन्तु संसार के मोक्ष का उपाय संन्यास लेना चाहिये	४९१-४९२	९७
आर्या को सुनकर सुन्दर सेन ने संन्यास लेने का निश्चय किया	४९३-४९५	९७-९८
गुणपालित के साथ संन्यास लेकर सुन्दरसेन का वन में जाना	४९६-४९७	९८
इस प्रकार हारलता का आख्यान कहकर नायक का विश्वास दृढ़ करने के लिये विक्रमाला का मालती की उपदेश देना	४९८-५११	९८-१०२

फिर भी विश्वास को दृढ़ करने के लिये प्रातः काल उठते समय नायक का आलिंगन बातचीत आदि का विकराला द्वारा उपदेश	५१२-५१८	१०२ १०३
इस प्रकार से विश्वास हो जाने पर नायक में अनुराग बढ़ाने के लिये और धन प्राप्त करने के लिये विकराला का मालती को ईश्या के बढाने का उपदेश	५१९-५२६	१०३ १०४
फिर भी नायक का अनुराग बढ़ाने के लिये और उसका धन लेने के लिये मालती का अपनी माता के साथ नायक को सुनाते हुए मिथ्या वाक्फुलह ✓	५२७-५२८	१०४ १०५
मालती की माता का वचन	५२९-५४५	१०५ ११०
मालती का प्रत्युत्तर	५४६-५५६	
मालती का वचन सुनने के पीछे मालती के गुणगौरव वर्णन में विवाहित पत्नी से भी अधिक श्रेष्ठता का विचार ✓	५५७-५८४	१११ ११५
यदि इस युक्ति से भी नायक से धन न मिले तो रात्रि में अभिसरण करके, मालती के आभूषण चोरी ने ले लिया, यह सवाद नायक को दे-ऐसा उपदेश विकराला ने दिया, यह युक्ति भी व्यर्थ जाये तो पहिले से सिखाया वणिक् नायक के सामने अपना कर्जा माँगने आये-यह उपदेश विकराला ने दिया	५८५-६०४	११६ ११८
यह भी युक्ति व्यर्थ जाये तब मेरे प्राणप्रिय आपके आरोग्य के लिए अपने वाञ्छित फल की सिद्धि के लिए मैं देवी की बलि-उपहार से पूजा करूँगा, यह सकल्प किया था, परन्तु सामग्री के लिए सम्पूर्ण धन न मिलने से वह पूजा अभी तक नहीं हो सकी, इसलिये देवी के कोप की शान्ति के लिए धन चाहिए, ऐसा नायक को कहे—	६०५-६१०	११९
	६११-६१३	११९ १२०

	आयंक	पृष्ठांक
यह पुत्ति भी व्यर्थ जाये तो घर को खाली करके घर में आग लगा दे और दिखाना चाहिए सर्वनाश हो गया	६१४-६१५	१२०
इस प्रकार नायक का सब धन लेकर पृथक् आसन, प्रत्युत्थान आदि में उदासीनता बरतकर उसे निराल देना चाहिये	६१६-६२५	१२० १२१
यदि इन सब उपायों से मूढ़ कानुक घर में जाने से न रुके तब, दासी द्वारा उसको चुमने वाले वाक्यों से भर्त्सना करनी चाहिये	६२६-६६०	१२१ १२६
दत्तना करने पर भी यदि मूढ़ कानुक न समझे तब उससे कहे कि मेरा हृदय तो तुममें पँसा है, परन्तु माता के कहने से तेरा साथ छोड़ना आवश्यक है; इसलिये कुछ दिनों के लिये आना छोड़ दो—यह अन्तिम उपदेश	६६१-६६३	१२६ १३०
इस प्रकार से प्रकृत कानुक के निरालने पर पहिले सेरित एवं परित्यक्त प्रेमी के पुनः धन प्राप्त कर लेने पर उससे प्रेम करने तथा उसका धन लेने का ठपाय विकराना ने मालतीको कहा	६६४-६६५	१३०
इसमें इस प्रकार के प्रेमी के प्रथम दीप्तने पर मालती का उससे माय पूर्व अनुभूतसमोगविहा यदि क्रीडाओं का वर्णन करने का उपदेश देना	६६५-६७१	१३० १३१
इसने पीछे उसके सामने उसके साथ बैठकर आनन्द के बर्चि पहले मुने दिनामोत्पादक, कामोत्पन्न वचनों को कहने का उपदेश	६७२-६८४	१३२-१३४
कानुक की मालती के साथ मीठा का वर्णन करना	६८५-६८९	१३४ १३५
सुदिलट, दार गिरि-काम से अन्धम शरीर के अर्गों का लम्भाई आदि द्वारा दिग्याना, गूढ़ स्थान आदि को दिग्यावर करना प्रेम दिग्याना-कानुक को घर में करने के उपाय	६८९-६९३	१३५



इसने पाछे तुम्हारे वियांग म मेरा दोष नहा,  
तुम ही दूसरी स्त्री में आसक्त हो गये, यह बात  
दूसरे ने कहकर हम दोनों म मेद उत्पन्न कर  
दिया, इस प्रकार से दुर्जन साधु पुरुषों को  
बलाते हैं, अब तो दुरा से मरे सत्र अग बल  
रहे हैं, अब मैं तुम्हारे घर में दासी बनकर  
रहूँगी—कामुक को वश में करने का यह  
उपदेश

६६४ ७३१

१३६ १४२

इस प्रकार के उपायों से कामुक को फिर वश में  
करने धन लेकर उसे निकालने का उपदेश  
मालती को दिय उपदेश को हठ करने व लिये  
बिनराला द्राघ मञ्जरी का दण्ड कथा रूप म  
कहना

७३२ ७३५

१४३

७३६

१४३

### मञ्जरी का आख्यान

सिंहभट्ट नामक राजा का पुत्र समरभट्ट था, वह  
कभी थोड़े से सम्बन्धी जनों व साथ काशी  
विश्वनाथ व दर्शन व लिये देवमन्दिर में  
गया

७३७ ७३८

१४४

समरभट्ट का वयन

७३९ ७४२

१४४ १४५

देवमन्दिर स्थित मित्र चण्डिका आदि का संलाप  
वयन—

७४३ ७४५

१४५ १४७

राजपुत्र समरभट्ट देवमन्दिर में बैठकर यहाँ व  
पण्डित, नर्तक आदि व कुशल मंगल का पूछने  
लगा

७४६ ७६०

१४७ १४८

पैतालिक द्वारा समरभट्ट का श्लेष रूप में  
प्रभाव, शत्रु विनाश, मौभाग्य आदि का स्तुति  
करना

७६१ ७८६

१४८ १५३

समरभट्ट ने पैतालिक का सतुष्ट करण, कभी  
पदल पड़ी दो आपाआ का फिर पढ़ने व लिये  
कहा

७८७ ७८८

१५४

	आर्याङ्क	प्रधाङ्क
परनारी वृत शोक एव कामुक को उपालम्भ	८४४-८५५	१६६ १६८
इस प्रकार से कुलगा सग के सुख वशन में	}	
समरभट के मंत्री द्वारा कुलगा सम्भोग को वेश्या		
सम्भोग से उत्तम बताना	८५६-८६१	१६८ १६९
समरभट के मंत्री द्वारा की हुई वेश्यावृत्ति की		
निन्दा का निराकरण करके, अपने पक्ष के सम		
र्थन में मजरी की माता का किया भाषण	८६२-८७४	१७० १७२
समरभट सचिव का निन्दा	८६३	१७०
ग्राम्य रत वशन	८९४-८९५	१७०
ग्राम्य विट वशन	८९६-८९८	१७० १७१
ग्राम्य दूती वचन प्रकार वशन	८९९-९०४	१७१ १७२
इस प्रकार से कहती हुई मजरी के माता को		
रोककर नाट्याचार्य ने समरभट की संगीतशास्त्र		
में प्रवीणता की प्रशंसा की, एवं अपनी सिराई		
मटिया द्वारा खेले हुए रत्नावली नाटिका को		
देखने के लिये प्रार्थना करी—समरभट के आशा		
से श्रक का प्रयोग आरम्भ	९०५-९१०	१७२ १७३
गीत-वाद्य के साथ में रत्नावली के श्रक का		
प्रारम्भ, सूत्रधार और नटी का प्रवश—सलाप—		
पान के आने की सूचना देकर निकलना	९११-९१४	१७३ १७४
कथोद्घात का आश्रय लेकर अमात्य योगधरा		
यण का उदयन को प्रासाद पर चढ़कर वसन्तो		
त्सव देखने की सूचना देना और अपना काय		
करने के लिये बाहर जाना	९१५-९१६	१७५
प्रासाद पर चढ़े वसन्त उदयन का मञ्च पर		
आकर अपनी आँखों देखे पोरबनों की नृत्य		
आदि क्रीडा का वशन—अपने मित्र विदूषक से		
सुनना	९१७-९१८	१७५ १७६
उदयन की महाराणी वासवदत्ता से मेजी चैनियों		
का रगमच पर प्रवश	९१९-९२०	१७६

	आर्याङ्क	पृष्ठाङ्क
इस प्रकार से गृहार रस में डूबे उदयन के लिए वैतालिक ने नेपथ्य में कहा है कि राजा लोग उदयन का दर्शन करने के लिए सायंकाल के समय सभा मण्डप में आ गये हैं	६२०-६२१	१८०
वैतालिक द्वारा 'उदयन' यह वत्सराज का नामांतर है, यह सुनकर सागरिका आश्चर्य से सोचने लगी कि क्या यह वही उदयन है, जिसने लिये मिता ने मुझे दिया था—मुझे कोई देखे नहीं ऐसा सोचकर मंच से निकल गई	६२२-६२४	१८१
संध्याकाल आ गया ऐसा भिन्न को कहकर सरके साथ उदयन भी निकल गया	६२५-६२८	१८१

### रत्नावली नाटिकाङ्ग प्रयोग समाप्ति

अरु प्रयोग के समाप्त होने पर विशाला मञ्जरी कथानक में समरभट्ट द्वारा किये अरु प्रयोग के गुण वर्णन विषयक भाषण को दोहराती है	६२९-६४७	१८२-१८५
समरभट्ट ने अपने नाट्य प्रयोगगत गुण दाप के कहने में नम्रता का प्रदर्शन	६३०	१८७
समुष्ट-समरभट्ट का नाट्याचार्य को पारितोषिक आदि देना	६३१	१८२
बाता बातों में ही नीकरों का पेट भरने वाले स्वामियों द्वारा घन न देकर केवल मिथ्या सान्त्वना से पेट भरने का वर्णन	६३२	१८२
समरभट्ट द्वारा रत्नावली के अरु प्रयोगगत नाट्य गीत, वाद्य की गुण विवेचना	६३६-६४७	१८३-१८५
इसी प्रसंग में किसी ने राजपुत्रों की परम्परागत रणशौर्य, नाटक देखना, काव्य रस का ज्ञान, मृगया इन कुल विद्याओं सम्बन्धी आर्या को गाथा	६४८-६४९	१८६
इस आर्या को सुनकर समरभट्ट ने भवानरु रस वाली मृगया का वर्णन किया	६५०-६५७	१८६-१८७

	आर्याङ्क	पृष्ठाङ्क
विर प्रसंगवश किसी से गाई मृगया की कथा सुनने में आसक्त व्यक्ति भोजन करना भी भूल जाते हैं, इस आर्या को समरभट ने सुना	६५८-६५९	१८८
आर्या को मुनकर मंजरी को प्रेमदृष्टि से देखते हुए समरभट का अपने घर में जाना	६६०	१८८
घर में जाकर भोजन करने के पीछे मंजरी में आसक्त मन से अपने सचिव के आगे मंजरी के लावण्य आदि की प्रशंसा करना	६६१-६८८	१८८ १६४
मंजरी के गुणों के कहते हुए मंजरी से भर्जा दूती का समरभट के पास आकर मंजरी की विरहावस्था का वर्णन करना और उसे स्वीकार करने के लिए कहना	६८९-१०४१	१६४ २०४
मंजरी दूती कृत मंजरी के निप्रलम्भ शृंगार का वर्णन	६९१-१०३०	१६४-२०२
मंजरी के अनुपम वर्णन प्रसंग में समरभट के हृदय में अनुकम्पा उत्पन्न करने के लिये दूती द्वारा सज्जन पुरुषों के स्वभाव की स्तुति	१०३१-१०३०	२०२
आपके कारण ही मंजरी की यह विरहपीडा है, इसलिये आप ही उसके शरण है, इसको दृढान्त द्वारा सिद्ध करके दूती द्वारा मंजरी को स्वीकार करने की प्रार्थना	१०३३-१०४१	२०३-२०४
दूती की बात समाप्त होने पर किसी से गाई हुई आर्या की गाढ़ प्रेमियों के लिये थोड़ा सा भी समय का वीतना जिम्नकारी है मुनकर समरभट ने दूती के वचन का समर्थन किया	१०४२-१०४५	२०४ २०५
दूती का घर जाकर मंजरी को साथ में लेकर समरभट के पास आना, समरभट के पास मंजरी को बिठाकर अपने आप यह कहते हुए चले जाना कि एकान्त में बैठे छी पुरुष के पास दूसरे को नहीं रहना चाहिये	१०४६-१०५२	२०५-२०६

समरभट्ट और मजरी का सम्भोग वर्णन	१०५३-१०५५	२०७
मजरी ने नाना प्रकार के सम्भोग मुख से समर- भट्ट को प्रसन्न करके थोड़े समय में ही उसका सर्वस्व ले लिया और केवल चमड़ा मात्र उसने शरीर पर छोड़ा—इस प्रकार से विकराला ने मजरी उपाख्यान को समाप्त किया	१०५४	२०७
इस प्रकार मेरे दिये उपदेश के अनुसार चल- कर कामुक जनां से बहुत अधिक धन प्राप्त कर सकेगी—यह कहकर विकराला ने अपने उप- देश को समाप्त किया—	१०५७	२०८
विकराला का उपदेश सुनकर मालती का मोह चला गया, मालती विकराला के पैरों पर मिर से प्रणाम करने अपने घर चली गई—	१०५८	२०८
इस काव्य के सुनने का पल—काव्यकला दामो दर कृत काव्य का उपसंहार	१०५९	२०८



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

# कुट्टनीमतं काव्यम् ।



स जयति संकल्पभवो रतिमुखरातपत्रचुम्बनभ्रमरः ।

यस्यानुरक्तललनानयनान्तर्विलोकितं वसति ॥ १ ॥

मंगलाचरण—

संकल्प [ मनोनिर्धार ] से उत्पन्न, रति के कमल रूपी मुख का चुम्बन करने में भ्रमर, अनुरक्त ललनाग्रों के चंचल कण्ठ निक्षेपों में रहने वाले [ वहाँ से उत्पन्न होने वाले ] प्रसिद्ध कामदेव<sup>१</sup> की जरूरत हो ॥ १ ॥

अवधीर्य द्योपनिचय गुणलेशो संनिवेरय मतिमार्या

कुट्टन्या मतमेतदामोदरगुणविरचितं शृणुत ॥ २ ॥

दोषों की ओर ध्यान न देकर, गुणों में बुद्धि को लगाकर बुद्धिमान् मतुष्य दामोदर गुण के उपाए कुट्टनी<sup>२</sup> मत में सुनें ॥ २ ॥

१. गीता में कहा भी है काम-संकल्प से उत्पन्न होता है [ संकल्पमनवान् कामान्—६।२४ ] कामनायें सब संकल्प से होती हैं, संकल्प करना मनका विषय है—“चिन्त्यं विचार्यमूढां च ध्येयं संकल्पमेव च ।

यत्किञ्चिन्मनसो ज्ञानं तत्सर्वं धार्यसंज्ञकम् ॥ चरक. शा १।२०

२. कुट्टनी—कुट्टनी, स्त्रियों के शील को नाश करनेवाली [ कुट्टयति—क्षिनोति—नारायण स्त्रीणां शीलमिति कुट्टनी ] चरया के लिये कुट्टनी आवश्यक है, जैसा कि क्षेमेन्द्र ने बताया है—

( क ) श्याम्रीव कुट्टनी यत्र रक्षयानामिषैपिणी ।

नास्ते सत्र प्रगल्भन्ते जम्बूका इव कामुकाः ॥

यत्र तत्र निमग्नानां वेश्यानां जननीं विना ।

सत्ययोर्दिवसस्यापि सुहृत्तांघ्रस्य न क्षणः ॥

न भवत्येव धूर्तस्य वेश्यावेशमन्यमानुके ।

सुखी सुष्टय हेमन्ते मार्जारस्येव निर्गमः ॥

अस्ति खलु निखिलभूतलभूषणभूता विभूतिगुणयुक्ता ।  
 मुक्ताभियुक्तजनता नगरी वाराणसी नाम ॥ ३ ॥  
 अनुभवतामपि यस्यामुपभोगान्कामत शरीरवताम् ।  
 शशधरखण्डविभूषितदेहलय किल न दुष्प्राप ॥ ४ ॥  
 चन्द्रविभूषितदेहा भूतिरता सद्भुजङ्गपरिवारा ।  
 वारध्वियोऽपि यस्या पशुपतितनुतुल्यता याता ॥ ५ ॥

वाराणसी का वर्णन—

सम्पूर्ण पृथ्वी को भूषण ऐश्वर्य गुणा से सम्पन्न मुक्त [ जीव-मुक्त ]  
 और विद्वानों से भरी वाराणसी नगरी है । जिन नगरों में शरीरधारी मनुष्य  
 स्वेच्छापूर्वक माला चन्दन आदि उपभोगों का अनुभव करते हुए भी शिव  
 महादेव में लय होने पर इनका लिए सत्र कुछ प्राप्य रहता है । अर्थात् कोई भी  
 वस्तु अप्राप्य नहीं रहती । यहाँ की वारवनितायें भी महादेव का शरीर की दत्तता  
 (समानता) प्राप्त करती हैं इनका शरीर चन्द्र [कपूर] से सुन्दर बना रहता है ।  
 [ शिव के शरीर पर चन्द्रमा शोभित है ], वर्याय ऐश्वर्य में मग्न हैं [ शिवजी  
 भस्म में रत हैं ], वारवनितायें भुजङ्ग ( विटो ) से घिरी हैं, [ शिवजी सोंभों से  
 घिरे हैं ], इस प्रकार से वाराणसी की वारवधू महादेव की समानता करती  
 हैं ॥ ३-५ ॥

अतितुङ्गसुरनिषेत्तनशिखरसमुत्तिष्ठपवनचलिताभि ।

मञ्जरितमिव विराजति यत्र नभो वैजयन्तीभि ॥ ६ ॥

वाराणसी के ऊँचे ऊँचे मन्दिरों में भी लगी पताकायें ध्वजाय वायु से हिलने  
 व मञ्जरी के समान शोभित होती हैं—( मञ्जरी के समान शब्द करता है ) ॥ ६ ॥

प्रविष्टा कुट्टनीहीनगृह क्षीणपदा विष्टा ।

गाथा पठन्ति गायन्ति श्वयद्विषमर्थितः ॥

उरकण्टका पुष्पमही वेश्यापिदमातृका ।

मन्त्रिहीना च राज्यभीर्मुज्यते विटचेष्टकैः ॥

( क ) जयराजस्य जनवृक्षपात्रिणी, प्रष्टुमापात्रिणी च कुट्टनी ।

देशोपदेश १ । २

समयमातृका-१ । ४१-४५

( ग ) कुट्टनी—आयु में पकी स्त्री ही होती है—

पूर्वं चेष्टी ततो चेष्टी पश्चाद् भवति कुट्टनी ।

सर्वोपापपरिहारीणा वृक्षा वरया वपस्विनी ॥ गणिकावृत्तसंग्रह-१०१

अविरतसंचरद्वलाचरणतलालकुरुवागणितम् ।

स्थलरुमलवतीलक्ष्मी विमर्ति वसुधातलं यत्र ॥ ७ ॥

यहाँ की पृथ्वी भी निरन्तर चरती हुई स्त्रियों के पैरों में लगे मरापर से ताल घनर स्थलरुमलिनी<sup>१</sup> की शोभा को धारण करती है ॥ ७ ॥

यत्र च रमणीभूषणरवधिरितसरुलदिङ्मनोभागे ।

शिष्याणामाचार्यैर्नान्यमधधार्थते पठताम् ॥ ८ ॥

जिस बाराणसी में स्त्रियों के आभूषणों की आराज में तन शिष्यों के अधिर हो जाने पर, शिष्यों के अशुद्ध पाठ को पढ़ने हुए भी, आचार्य शुद्ध नहीं कर पाते ॥ ८ ॥

विन्ध्यधराधरभूरिव या राजति मत्तवागणोपेता ।

बहुलनिशीधर्तीध प्रोन्जलधिष्ण्योपशोभिता या च ॥ ९ ॥

विन्ध्याचल भूमि के समान बाराणसी उड़े-बटे वारणों से युक्त है (बाराणसी में मरानों के चारों ओर बड़े-बड़े उगभदे हैं, विन्ध्याचल में बड़े मराने हाथी हैं) । कृष्ण पक्ष की रात्रि के समान बाराणसी उज्ज्वल बिम्बों में शोभित है । (बाराणसी के पत्र में—विष्णु-ग्रामाद मराने में शोभित है । रात्रि के पक्ष में—विष्णु का अर्थ नक्षत्र, से शोभित है) ॥ ९ ॥

यतिगणगुणसमुपेता या नित्यं छन्दमामिव प्रचितिः ।

वनपंक्तिारव सराला तुम्फसेनेव बहुलगन्धर्या ॥ १० ॥

जिम प्रकार छन्द-रान्न याति (पाठनिष्ठेय स्थल), गण (मण्णादि) के गुणों से (ठाक स्थान पर रहने के गुणों से) शोभित होता है, उसी प्रकार से बाराणसी भी यतिगणों (ब्रह्मामी समूहों) के गुण से शोभित है । जिस प्रकार से जंगल में शाल-वृक्ष होने हैं, उसी प्रकार वहा पर शालाओं की पंक्ति है; जिस प्रकार से तुरुष्क देश की रावसेना में बहुत से गायक (या घोड़े) होते हैं, उसी प्रकार यहाँ पर उत्तम घोड़े और गायक हैं । (तुरुष्क-तुर्किस्तान रका) ॥ १० ॥

१—स्थलरुमलिनी—बड़े प्रकार की हत्ती हैं । सब में प्रायः दो रंग होते हैं, किनारोंपर पृक् रङ्ग और बीच में दूसरा रङ्ग, किनारों पर छाल गुहारी-पीध में पीछा या श्वेत । परन्तु छात्र रंगका निवेश अविद्यतः भिद्यता है, इसीसे यहाँ पर महापर के साथ स्थलरुमलिनी की उपमा दी है । परवी में हमको 'छात्र वेगाना' कहते हैं ।



तारागणोऽकुलीन प्रियदोषा यत्र कोशिका सततम् ।

गद्ये घृतच्यवन परगृहरोधस्तथाऽक्षेपु ॥ ११ ॥

जिस प्रकार तारा समूह अकुलीन हैं ( पृथ्वी में लीन नहीं होते ) उसी प्रकार से वाराणसी में भी कोई अकुलीन ( अस्तित्व में उत्पन्न ) नहीं है । उल्लू को दोषा ( रात्रि ) प्रिय है, यहाँ पर किमी को दोष ( दुर्गुण ) प्रिय नही । गद्य में घृतच्यवन ( छंद का नियम न होना ) होता है, परन्तु वाराणसी में घृतच्यवन ( सदाचार का भंग ) नहीं होता । जुये मन्थाशा खेलने में दूसरे घर का रोकना होता है, यहाँ पर विरोध आदि से दूसरे घर का प्रतिबंध नहीं होता ॥ ११ ॥

शूलभृतो व्यालस्था पदवेदिषु यत्र धातुवादित्वम् ।

सुरतेष्वगलाक्रमण दानच्छेदो मदच्युतो करिणाम् ॥ १२ ॥

ध्यानस्थ ( क्षणिक आदि ), शूल त्रिशूल को धारण करते हैं, परन्तु कोई शूल रोग से पीड़ित नहीं है । पदवेदियों में वैवाकरण म ही भू आदि धातु का विचार है कोई किमियागिरी से झूठे धातु बनाकर यहाँ ठगता नहीं । सम्भोग में ही स्त्रियों पर आत्ममग्न-यशोकरण होता है, जैसे कोई स्त्रियों पर आत्ममग्न नहीं करता । हाथियों में मदच्युति होने पर ही मदजल पड़ता है, यहाँ पर ब्राह्मणादि को दिये दान का कोई भंग नहीं करता—उनकी वृत्ति का उच्छेद कोई नहीं करता है ॥ १२ ॥

सीघ्रकरत्वं भानोरविवेको यत्र मित्रहृदयानाम् ।

योगिषु दण्डग्रहण सधिच्छेद प्रगृह्येषु ॥ १३ ॥

एत्यों की विरणों में ही तीव्रता रहती है, राज्यकर मन्त्राध्यक्षभाग में तीव्रता नही, मित्रों के परस्पर व्यवहार में ही भेद शून्यता रहती है, परन्तु किसी दूसरे में अविशेष प्रमाद नहीं मिलता । योगी लोग ही दण्ड ग्रहण करते हैं किसी अपराधी को दण्ड नहीं दिया जाता, व्याकरण प्रसिद्ध प्रगृह्य सत्रका में ही सधि तोड़ी जाती है, किमी के घर आदि में चोर सन्धि संध नहीं तोड़ते । ( न किसी की मैत्री का भंग किया जाता है ) ॥ १३ ॥

छन्द प्रस्तारविधौ शुखो यस्यामनार्जवस्थितय ।

वीणाया परिवादो द्विजनिलयेष्वप्रसन्नत्यम् ॥ १४ ॥

छन्दों में शुद्ध-लघु वर्ण ने ज्ञापन के लिए शुद्ध वर्ण के लिए ही वक्र रेखा की स्थिति है, परन्तु वाराणसी में शुद्ध लोग अयापक कभी भी वक्र नहीं होते ।

वीणा में परिवाद (वज्राना) होता है, आस में परिवाद (निन्दा-अपमान) नहीं है। ब्राह्मणों के घरों में अप्रसन्नत्व मिलता है (प्रसन्ना-मुरा नहीं मिलती) ॥ १४ ॥

अनुरूपवृत्तवदना सत्कविदृतरूपनेषु लोके च ।

रमणीयवचने यस्यां माधुर्य्यं काव्यग्रन्थे च ॥ १५ ॥

सदसियों के ज्ञाने नाटकों में श्रीर लोक में वृत्त-चरित्र और वर्तन के अनुरूप ही चित्रण और वर्तन मिलता है। काव्य-रचना में श्रीर स्त्रियों के वचनों में माधुर्य (आह्लाद चित्त को द्रवीभूत ज्ञाने वाला भाव) है ॥ १५ ॥

यस्यामुपजननीया तमालपत्राणि युगतिवदने च ।

नलप्रहाररणित सत्रीराद्येषु मुरतकलहेषु ॥ १६ ॥

जिम बाराणसी के उपजन में (इजिम स्त्रीयों में) तमाल के वृक्ष हैं, तथा युगतियों के कपोलों पर मरिका आदि चित्रण हैं। नरका के प्रहार से वृजन या तो तनी वीणा में होता है, अथवा फिर मुरत कलह में होता है ॥ १६ ॥

नन्दनरनाभिरामा विबुधवती नाकराहिनीजुष्टा ।

अमरावतीय यान्या विरजसृजा निर्मिता जगति ॥ १७ ॥

बाराणसी ब्रह्मा से बनाई दूसरी अमरावती है, इसमें नन्दनरन है (मुन्दर नाग-शरीर है, अमरावती में नन्दनरन है) यहा पर बड़े-बड़े विबुध विद्वान हैं, (स्वर्ग में देवता हैं), बाराणसी में नागराहिनी गया है (अन्तारती में देव-सेना है), इस प्रकार से यह दूसरी अमरावती जनी हुई है ॥ १७ ॥

तस्यां रत्नपतितनुरिष विलासिना हृदयशोकसंजननी ।

आरुण्येश्वरहृदया प्राप्तेयनगाधिराजतनयेव ॥ १८ ॥

मालती का वर्णन—

इस बाराणसी में गगननि-गरुड के शरीर की मूर्ति दिनामिषी के (भोगी-पक्ष में मायों के) लिये हृदय शोक को उत्पन्न करने वाला (जिसने देगने मात्र से चिन्तन करने पर उद्भग उत्पन्न होने लगता है, अन्यत्र भय उत्पन्न करने वाला), ईश्वर (पत्नियों के-पक्ष में महादेव के) के हृदय को ग्राहने वाली प्राप्तेयनगाधिराज-जनश की मूर्ति (दिमाचलमुखा-पारंगनी) मालती रहती है ॥ १८ ॥

समस्तभोगिनेत्रा मन्दरधरणीभृतो यथा मूर्ति ।

उपरि गता शूलानामन्धामुरग्याग्रनेत्रे ॥ १९ ॥

जिस मालती में भोगियों ने ( कामिया ने ) नेत्र लगे हुए हैं ( गङ्ग में समुद्र मंथन के समय वासुकिस्पर्ष रूप नेत्र-नेत्र मन्थन-रस्सी लगी है ), जिस प्रकार से महादेव जी के त्रिशूल ने ऊपर ग्रन्थामुर का शरीर पहुँचा है, उसी प्रकार यह सत्रने ऊपर पहुँची है—सत्रसे उड़ी है ॥ १६ ॥

समुवास वाररामा मानसवसते शरीरिणी शक्ति ।

नि शेषवेशयोपिद्विभूषण मालती नाम ॥ २० ॥ ( विशेषकम् )

काम की शारीरिक शक्ति ने रूप में सम्पूर्ण वेश्याओं की नाक नीचे उसमें स्त्री-वेश्या मालती वहाँ रहती थी ॥ २० ॥

पेशलवचसा वसतिर्लीलानामालय स्थिति प्रेम्ण ।

भूमि परिहासानामावसयो वक्ररुधितानाम् ॥ २१ ॥

मालतीपेशल-कोमल मुदर वचना ने बोलने में प्रवीण, लीलाओं का निवास स्थान, प्रेम की स्थिति रहने का स्थान, हास्य विनोद की भूमि, वक्रोक्ति का आवास निवास है ॥ २१ ॥

सा शुश्राव कदाचिद्धवलालयपृष्ठदेशमधिरूढाम् ।

केनापि गीयमाना प्रसङ्गपतितामिमामार्याम् ॥ २२ ॥

कथा का प्रारम्भ—

कभी उसने धवल माल<sup>१</sup> के ऊपर के भाग पर चढ़े हुए—किसी से प्रसङ्गवश गाई हुई नीचे की आवा की सुना ॥ २२ ॥

‘यौवनसौन्दर्यमद् दूरेण्पास्य वारवनिताभि ।

यत्नेन वेदितव्या कामुकन्दयार्जनोपाया ’ ॥ २३ ॥

वेश्याओं को चाहिये कि अपने यौवन के सौन्दर्य का अहकार भुला कर कामी जनो के हृदय को जीतने का उपाय किसी से सीखें—किसी को गुरु बनायें [ वेश्याओं का गुरु कुटनी है ] ॥ २३ ॥

श्रुत्वाथ विपुलजघना मनसीद् मालती चकार चिरम् ।

अतिसाम्प्रतमुपदिष्ट मुहदेवानेन साधुना पठता ॥ २४ ॥

इसको सुनकर विपुलजघनो वाली मालती ने देर तक मन में सोचा कि इस ने मित्र की मौलि बहुत ही उचित सामयिक बात कही है ॥ २४ ॥

१—धवलगृह—[ घौराहर-घराहरा ]—रात्रकुल के भीतर रात्रा और महादेवी के निवास का मुख्य महल धवलगृह कहलाता था। इयं चरित का सांस्कृतिक अभ्ययन, पृष्ठ-२१ पर ढा० वापदेव शरण जी अमरावत ने इसकी विस्तृत जानकारी दी है ।

तद्वत्त्वा वृन्द्यामो विहरालां कलितसकलसंसाराम् ।

यम्याः कामिजनौघो दिवानिशं द्वारमध्यास्ते ॥ २५ ॥

दसलिये सपूरा ससार को निगले हुए—विहराला कुट्टनी के पास जाकर  
पूछती हैं—गुरु मनाती हैं । जिस विहराला के दरवाजे पर रात दिन कामिजनों  
का झुंड़ बैठा रहता है ॥ २५ ॥

इति मनसि सा निवेग्य ह्रस्ततरमथतीर्य वैरमन शिरसरात् ।

विहरालाभयनवरं परिजनपरिवारिता प्रययौ ॥ २६ ॥

मन में गह सोच कर, झट्टी से मनान से उत्तरकर, सम्बन्धी जनों के साथ  
विहराला के घर की ओर चली ॥ २६ ॥

अथ विरलोलन्नतदशाना निम्नहनुं स्थूलचिपिटनासाग्राम् ।

उन्वणच वुन्लजिनशुष्कमुचस्थानशिथिलकृत्तितनुम् ॥ २७ ॥

विहराला का वर्णन—

विरल-दूर दूर आगे निरल उठे दान्ती वाली, नीचे री चिपुफ, नासा  
का अगला भाग मोटा और चपटा, उल्लवण [ अतिशय अधिक काले या  
सामने निरले ] चूचुन ढाले-मृगे स्तनों, शरीर की रचना शिथिल होने से लटक  
गई है ॥ २७ ॥

अथलोक्य सा विधाय क्षितिमण्डललीनमौलिना प्रणतिम् ।

परिपृष्टकुशलवार्ता समनुज्ञात्तासन भेजे ॥ ३१ ॥

विकराला को देखकर मालती ने भूमि पर सिर रखकर प्रणाम किया, कुशल मगल पूछने पर आशा मिलने पर आसन पर बैठ गई ॥ ३१ ॥

अथ विरचितहस्तपुटा सप्रश्रयमासन समुत्सृज्य ।

इदमूचे विकरालामवसरमासाद्य मालती वचनम् ॥ ३२ ॥

इसने पीछे ग्रामन को छोड़कर खड़ी होकर विनय पूर्वक हाथ जोड़ कर समय पाकर मालती ने विकराला से कहा ॥ ३२ ॥

विदधासि हरिमकौमुभमहरि हरिमगजनाथममेन्द्रम् ।

अद्रविण द्रविणपति नियत मतिगोचरे पतितम् ॥ ३३ ॥

विकराला के पराक्रम का वर्णन—

आप अपना बुद्धि वैभव—चतुराई से विष्णु को कौस्तुभ मणि रहित कर सकती हैं, सूर्य को उसके घोड़ा से अलग कर सकती हैं, इंद्र से ऐरावत को छीन सकती हैं, कुबेर को निर्धन बना सकती हैं, यह सब निश्चित है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं ॥ ३३ ॥

अथमेव बुद्धिविभव हतविभवस्ते पदचरावरण ।

कामुकलोक कथयति मन्नागारेषु भुञ्जान ॥ ३४ ॥

निर्धन बने, बटे चीथड़े पहने, मन्नागारों में भोजन करते हुए कामी जन आपने इसी बुद्धि वैभव का चर्चा करते हैं ।

उपसहृतान्यकर्मा धनवर्मा नर्मदाप्रियुगलस्य ।

सकलसमर्पितसम्पद्यदुपेत पादपीठत्वम् ॥ ३५ ॥

धनवर्मा नामक कोई नौजवान दूसरे सब कामों को छोड़कर नर्मदा नामक बेश्या के चरणों में अपना सब धन समर्पित करके अब उससे पैरों की सेवा करता है ॥ ३५ ॥

यदुपनतो नयदत्त सागरदत्तस्य मध्यम पुत्र ।

प्रीणाति मदनसेना विधाय पितृमन्दिर रिक्तम् ॥ ३६ ॥

सागरदत्त का मध्यम पुत्र नयदत्त नाम बनकर घर को खाली करके मदन सेना को प्रसन्न करता है—सब धन उसको दे रहा है ॥ ३६ ॥

यल्लीलार्पितचरणौ मञ्जर्या मृदुपुनरसिद्ध ।

परितोष त्रनति पर मृदु मृदुनन् पाण्डियुगलेन ॥ ३७ ॥

इदमेव समुल्लपित लीलावति विजितपरमृतधनिसम् ।

तव नि शेषभुजगव्याकर्षणसिद्धमत्र उच्चरित ॥ ४८ ॥

हे लीलावति—तेरा वाग्विलास कोयल की कुहक की भी नीचा कर देता है । तेरा बोलना सम्पूर्ण विष्णु को राचने के लिए सिद्ध मन्त्र है । [ पक्ष म—भुजङ्ग सपा को राचने के लिए सिद्ध मन्त्र है ] ॥ ४८ ॥

इदमेव मन्त्रकेतननिकेतन स्तनयुग तवाभोगि ।

भोगवति भोगसाधनमपरोपायप्रदो न्यर्थ ॥ ४९ ॥

हे भोगवति । तरे ये विशाल स्तन कामदेव का घर है, इनके होते हुए दूसरे योग साधन के उपायों को ढूँढना न्यर्थ है ॥ ४९ ॥<sup>१</sup>

इदमेव धातुयुगल मृणालपरिकोमल तव वरोरु ।

कस्य न जनयति मदन वरकटकभूषित सुतनु ॥ ५० ॥

हे उत्तम ऊँखवाली ! मृणाल न समान कोमल सुन्दर कण्ठ शोभित तेरे ये बाहु युगल किस में चाह उत्पन्न न नष्ट कर देते ? ( सखी तो चाह उत्पन्न कर देते हैं ) ॥ ५० ॥

अयमेव मध्यदेश कन्दर्पादेशकरणचतुरस्ते ।

प्रकृतोऽपि शरीरवती दशर्माप्रापयति मन्मथावस्थाम् ॥ ५१ ॥

कामदेव की श्रावण मानने में चतुर यह तरा मध्य भाग अतिरुचि होने पर भी मनुष्यों को कामदेव की दसवीं<sup>२</sup> अवस्था (मृदु) में पहुँचा देता है—मार देता है ॥ ५१ ॥

इयमेव रोमराजि सकल्पजचापयस्त्रिगुणशोभाम् ।

धधती विदधाति तव स्मरसायकशल्यविस्लवान् यूत ॥ ५२ ॥

तेरी यह रोमराजि कामदेव के धनुष की डोरी से समान सुन्दर है, जो कि युवकों का कामदेव के आँखों के अधीन बना देती है ॥ ५२ ॥

१—कुचक्रीडासीध स्मरवसतिहेतो विरक्ति ।

कुलाभा रोदार्थ वलिकपटनिलेखिसरणि ॥

सुबुबंका स्तनस्तदुपरि करालम्बन कृते ।

निमेषेण शङ्कामुख्य तदा लोमलविका ॥

कामिनीस्तनकातारे वसति स्मरतस्कर ।

मनो मा गद्य विवस्त्र स दिवाऽपि कुरुते जगत् ॥

२—काम की दस दशायें—

अभिज्ञापयिन्वास्मृतिगुणकयनोद्भूतप्रलापाश्च ।

वन्मादाऽप्यव्याधिर्नैवता मृतिरिति दशात्र कामदशा ॥ साक्षिपदपण्य

इदमेव च पृथुलजघन कलधौतशिलातलाभिरमणीयम् ।

तव तरुणवशीकरणं यतिसगतिनाशकारि करभोरु ॥ ५३ ॥

हे करभोरु—स्वल्प के समान चिकना-सुंदर तेरा यह पृथुल जघन<sup>१</sup> तरुणा को वश में करने वाला एवं स यासियों की समाधि को तोड़ने वाला है ॥ ५३ ॥

इदमेव तवोरयुग रम्भास्तम्भोपम मनोहारि ।

यद्य सुन्दरि नाभिमत मदनज्वरतापशान्तये कस्य ॥ ५४ ॥

हे सुन्दरी ! येले के तने के समान सुंदर तेरे ये दोनों ऊरु किसके काम जय ज्वर को शांत करने के लिए पयास नहा—सब के ही काम कर को शान्त कर सकते हैं ॥ ५४ ॥

यौघनफलपतरोस्ते कनकलताविभ्रम सुवृत्तमिदम् ।

जघायुगल नेच्छति कामफलप्राप्तये क इह ॥ ५५ ॥

तेरे ये सुंदर गोल जघा युगल कल्पवृक्ष पर चढ़ा स्वल्पलता का भ्रम किसम उपभोग नहीं कर देते—[ सब में ही भ्रम हो जाता है ] । इच्छित फल की चाह के लिए कान इनको नहीं चाहता, सब चाहते हैं ॥ ५५ ॥

निर्जितदाडिमराग विजितस्थलकमलिनीविलासमिदम् ।

तव तरुणि चरणयुगल कस्य न मानसमलकुरुते ॥ ५६ ॥

अनार की लाली को भी जड़ होने तिरस्कृत कर दिया जिन्होंने स्थल कमलनी की शोभा को जीत लिया है ऐसे तारे चरण युगल किसके मन का शोभित नहा करते—सबको ही पसंद हैं ॥ ५६ ॥

ह्येपयति वारणेन्द्र हस हसति प्रयातमिदमेव ।

तव लीलायति ललित यूना हृदयानि मथ्नाति ॥ ५७ ॥

तेरा चलना हाथी को भी नीचा पिटाता है हस की चाल पर हसता है हे लीलायति ! तरा मिलास युवका के हृदय को वेचैन कर देता है ॥ ५७ ॥<sup>२</sup>

१—जघन—जड़ों पर लगड़ी बांधी जाते हैं, ऊरु जानु से ऊपर का भाग, जघा जानु से निचला भाग, चरण गुल्फ से निचला भाग पैर । का यों में स्त्री शरीर के वर्णन में—नाभि वल्लिग्रय, रामावलि, जघन मदनमंदिर, ऊरु, जानु, जघा, गुल्फ चरण, पार्दागुली, और नख इस क्रम से वर्णन किया जाता है ।

२—विद्यास—यानस्यानासनादीना मुखनेत्रादिकमयाम् ।

विशेषस्तु विद्यास स्यादिप्स दशनादिना ॥ साहित्यदर्पण १।१९

तदपि यदि तेकुतूहलमस्त्यवधानं सविधायं तनुमध्ये ।

आकर्ण्य कथयामि स्तनुद्विविभवानुसारेण ॥ ५८ ॥

हे सुंदरि ! यदि इस पर भी तुझे सुनने का शौक है, तो अपनी बुद्धि के अनुसार जो कहती हूँ—उसको ध्यान से सुनो ॥ ५८ ॥

स्थीकुरु तान्त्रयम नृपसेचकभट्टसनुमतिव्रजान् ।

स्वाधीनामतिप्रिपुला यदि सपदमीदृशे सुतनु ॥ ५९ ॥

यदि तुम अति विपुल धन को अपना नाना चाहती हो, तो सनते प्रथम बहुत प्रयत्न करके राजसेनक भट्ट व पुत्र को अपना ज्ञात्री ॥ ५९ ॥

प्रत्यासन्नग्रामे स्वयं प्रभु पितरि नित्यकटस्थे ।

भट्टसुतश्चिन्तामणिराकृष्टो भवति पुत्रि नियमेन ॥ ६० ॥

पिता उसका सग सैन्य व साथ रहता है इसलिय, स्वयं स्वामी बना भट्टपुत्र चिन्तामणि यश नगर व पास रहता है हे पुत्रि । वं जन्म तुम्हारी आर प्रियेगा ॥ ६० ॥

शृणु तस्य चाम्हासिनि वेषप्रहणं च चेष्टितं चैव ।

निपतति तथा च तूर्णं प्रियसुरभिशरासनप्रसरे ॥ ६१ ॥

हे चाम्हासिनि ! भट्टपुत्र के वेष आर चणग्रो को सुनो—[ इनको जानकर उसी प्रकार परतना ] । जिससे नि काम व वश म होकर चली ही गिर पड़ेगा, तुम्हारे वश म हो जायेगा ॥ ६१ ॥<sup>१</sup>

स्थूलस्थापितचूडं पचागुलमात्रकेशप्रिन्यास ।

लन्यश्चरणनिवेशितपरपत्रकषटितदन्तपस्त्रिच ॥ ६२ ॥

परशार्यार्पितमुद्रिकचामीकरकण्ठसूत्रिनाभरण ।

परिमृग्गात्रकुङ्कुमकिंचित्पिञ्जरितचसनसवीत ॥ ६३ ॥

प्रविलम्बितुमुमदामकगलमण्डनजातरूपकृतशोभ ।

अन्तर्निप्रिप्रसिक्थकतौरिप्तिस्त्रुम्भिरादिचरणत्र ॥ ६४ ॥

नानावर्णनिवेशितगहलन्शपाशवद्धततेश ।

एकस्मिन्लवीटकमपरस्मिन्सांसपत्रक कर्णे ॥ ६५ ॥

उच्चलकनकपूर्णभक्तं कुङ्कुमपिचरितचसनपरिधान ।

स्थूलतरकाचवर्त्तकमाला च गले दधानेन ॥ ६६ ॥

धृष्टिचपरजितसररुद्धवरमूलनिन्दशालचनेण ।

प्रथमवयस्त्व भजता ताम्बूलकरकजाहिनानुगत ॥ ६७ ॥



## भट्टपुत्र के वेप का वर्णन—

लम्बी-मोटी चोटी रखने; शिर के बाल पाँच अंगुल छोड़े; कानों में कणपत्र के आकार का हाथी दाँत से बना विशेष आभूषण पहिने; हाथ की अँगुली में सोने की अँगूठी, गले में सुत में गूँथा आभूषण धारण किये; रागीर पर केसर का लेप लगाये; कुंडल विभूषित [ पीला-लाल ] वस्त्र पहने हुए; गले में सोने के बनी सुन्दर लम्बी लटकनी माला धारण किए; मोम एवं शिल्पक<sup>१</sup> में चिकना और सुगन्धित बना, नाल लगा, जूता पहने; निनारों पर से उल्लङ्घल; नाना प्रकार के मूत्रों में लम्बे बालों को बाँधे; एक कान में दलपट्टक और दूसरे कान में आभूषण धारण<sup>२</sup> किए; साफ दिगानेवाले सोने के धागों से निजला —केशर के रंग से रंगा वस्त्र पहने; गले में बड़े बड़े काचमनको को धारण किये; लाल पुनर्नवा के रम से नगनों को रंगे; कलई में शंख और चक्र को बाँधे हुए; यौवनायमथा में पहुँचे; माथ में ताम्बूलकरंक्वाहिनी को लिये भट्टपुत्र को तुम देखोगी ॥ ६२-६७ ॥<sup>३</sup>

१—सुरक-शिल्पक-शिलारस—सुगन्धित द्रव्य, जिससे धूप बनती है। सिक्क मोम जूते के अन्दर पतावे पर तथा अन्दर की ओर मोम और शिलारस छगाने से पैरों में चिकाई तथा धूल-रेव से कटार आदि रोग नहीं होते-पैर नरम रहते हैं।

२—दलपट्टक—पक्षोंमें छिपटा पान या इस प्रकार का कोई आभूषण, सोसपत्रक भूषण विशेष, अथवा कान बाँधने पर तुरन्त सोसक या रांग का छल्ला बनाकर छाछ देते हैं, ये दोनों धातुयें नरम होती हैं, इसीसे बाँधने के पीछे कष्ट नहीं होता—साथ ही छेद भी बंद नहीं होता। जब कान इनका अभ्यस्त हो जाता है, तब चाँदी या सोना का आभूषण पहनाते हैं।

३—सोने के तारों से निकले वस्त्रों का उल्लेख अग्यत्र भी है—

‘सतलविधिधलेखा चौमवस्त्रावुताङ्गैः ॥’ हृदय ७। ७८,

वृद्धिक—पुनर्नवा एवं सुरक-सिण्डी दोनों अर्थ हैं, सम्भवतः इनमें छाछ पुनर्नवा और छाछ फूसकी सिण्डी नखोंके रंगने के काम आती हो। देखिये प्राचीन भारत के प्रसाधन—अत्रिदेव विद्यालंकार। कलई में धातु भी गेंडे के चर्म का बना कड़ा हीन दृष्टि आदि को दूर करने के लिये पहनते हैं, ताम्बूल करंक्वाहिनी का उल्लेख संस्कृत ग्रन्थों में प्रायः मिलता है, यथा कादम्बरी में पत्रलेखा का वर्णन।

श्रेष्ठिविगिगिटन्त्रितप्रधानरंगस्य सुमहतो मध्ये ।  
 श्लापालस्थापितकृतिपद्यद्वोरुपीठिकासीन ॥ ६८ ॥  
 उत्सगापितलङ्गैरयथातथभापिभिर्मदोद्धृत्यम् ।  
 विभ्राणैरनुजीविभिरधिष्ठित पचपै पुनपै ॥ ६९ ॥  
 चतुरतरसेवमपितप्रष्टपरिचिप्रपूर्वदेहाध्व ।  
 अन्तर्धृततान्मूलप्रोन्दनकपोलरलितरूपण ॥ ७० ॥  
 अन्नपेक्षितप्रसङ्ग पुन पुन पठति सोन्नतध्रुक् ।  
 गाथाश्लोकप्राय भावितचेता दयातयाऽधातम् ॥ ७१ ॥  
 त्रिमयलोलितमौलि पादगतास्ताडयन रसावेगान् ।  
 हा मृदु साध्विति वाद्रेन्तग्यति परसुभापितश्रवणम् ॥ ७२ ॥  
 इदमुक्तो रहसि रूपा तातेन नृपो, नृपेण तातोऽपि ।  
 इति पितुराधिष्ठुक्तं महीभृत् प्रणयविज्ञासौ ॥ ७३ ॥  
 पत्रच्छेदमजानन् जानन् वा कीशल कलारिपये ।  
 प्रन्दयति जनसमाने विभ्राण पत्रकर्तरी सत्तम् ॥ ७४ ॥

भट्टपुत्रकी चेष्टाओं का वर्णन—

धनिक, धनिष्, धिन्, कितध, प्रवान रगशाला नृत्यशाला ने मय्य म  
 यशना नक्त द्वारा लाभ हुए, ने-तान तरुना से उना रनी निशाल आत्तन चौकी  
 पर गैरा हुआ, शरान व न्यो में पागल हान व कारण अमगत नीलने हुए,  
 गोल स तलवार रखने, पोंच छु सेवनों व साव, चतुर सेवन द्वारा दिय हुए  
 तन्मिय का सहारा लकर आधा लट हुए, मुन र अन्तर पान का गडा रखने  
 से फूल हुए गाला की हाथ से छूते हुए, विना प्रमय व ही भुना का ऊँचा  
 टढा करन, श्लोकमयी गाथा को अशुद्ध रूप में पढकर प्रसन्न होते हुए,  
 प्राश्न्य से शिर की हिलात हुए, रम आनन्द र अतिरक्त म पास म गैठ हुआ की  
 धन्यपाते हुए, दूसरे से सुनाय सुभाषिता की अन्ध-सुरा कहकर राकते हुए, पुन  
 ने पिता की आर पिता ने पुन की वाय से एकान्त म यह कहा था' यह कहकर  
 पिता पुन ने ऊपर राता अतिशय प्रीति आर निश्वास को रताते हुए, पत्रच्छेद  
 पत्रमग को न जानते हुए, या थागा रहत जानते हुए—जन समान म कला  
 सग्न की अपना कीशल दिखाने व लिए सग पत्रकर्तरी साथ म लिये  
 भट्टपुन को तुम देखोगी ॥ ६८-७४ ॥<sup>१</sup>

१—वट्ट—रामल व कला काविद, अथवा नायक और नायिका का सन्देश  
 एक-दूसरे व पहुँचाने वाला, कितव—धूर्त या उधारी, रग ( रग्यते  
 जनो सिम् ) रगशाला-नृत्यशाला-श्लेषाला-रस्याप्यक्ष ।

“ब्रह्मोत्तनाश्रयशारे गीते मुख्यादिवादने चैव ।

अभिभवति नारदादीन् प्रावीण्य भट्टपुत्रस्य ॥ ७५ ॥

भट्टपुत्र की मिथ्या स्तुति—

ब्रह्मा से कहे नाथ्यशास्त्र में, गायन में, मुख आदि [ मृदंग आदि ]  
यज्ञाने में भट्टपुत्र की प्रवीणता नारद आदि को भी नीचा दिलाती है ॥ ७५ ॥

यसुनन्दचित्रदण्डकमुक्तायुधखड्गधेनुबन्धेषु ।

त्यजति पुरतोऽस्य नियत मार्गवता परशुरामोऽपि ॥ ७६ ॥

यसु, नन्द, चित्र, दण्ड<sup>१</sup>, मुक्तायुध [ चक्र आदि अस्त्र ], तलवार, धेनु  
[ ह्वरी ] आदि शास्त्रा के प्रयोग में इसके आगे परशुराम भी अपनी चतुराई  
को निश्चित भूल जाता है ॥ ७६ ॥

वात्स्यायनमयमधुध वाह्यान्दूरेण दत्तकाचार्यान् ।

गणयति मन्मथतन्त्रे पशुतुल्य राजपुत्र च ॥ ७७ ॥

इसने वात्स्यायन को भी नहीं पढ़ा, यह दत्तकाचार्य से बनाये वैशिक सत्तक  
छूटे अधिकरण के पास भी नहीं गया, मन्मथ तन्त्र में राजपुत्र को पशु तुल्य  
समझता है ॥ ७७ ॥<sup>२</sup>

य प्राथितोऽपि यत्नात् कवच राधासुतो ददातिस्म ।

अविचिन्तितवमुषर्पस्त्यागगुण हसति तस्यायम् ॥ ७८ ॥

जिस कर्ण ने बहुत बार प्रयत्न पूर्वक मागने पर अपना कवच दिया था,  
उसके इस त्याग पर, बिना सोचे समझे अपना धन खर्चने वाला यह भट्टपुत्र,  
हँसता है ॥ ७८ ॥

प्रपलायनैकहृदये यो विक्रममातनोति हरिणेऽपि ।

सिंहस्य तस्य शौर्यं त्रपाकर भवति भट्टपुत्रस्य ॥ ७९ ॥

भागने में मन लगाये हरिण के शिकार में जो पराक्रम करता है, ऐसे  
भट्टपुत्र के शौर्य के आगे सिंह का पराक्रम भी पानी भरता है ॥ ७९ ॥

आघेटकेऽपि कीतुकमस्त्येव जयश्च चचले हृदये ।

भट्टभयेन न खेलति भट्टसुत किंत्वतिप्रकटम् ॥ ८० ॥

१—यसु, नन्द, चित्र—ये गति भेद हैं, दण्ड से दण्डक व्यूह विशेष, मुक्तायुधो  
जो अस्त्र हाथ से फेंक कर चलाये जाने हैं ।

२—दत्तकाचार्य—पाटली पुत्र की वेश्याओं के कहने से इसने कामशास्त्र के  
अगम्य वैशिक अधिकरण को पृथक् बनाया था ।

राजपुत्र—कोई पुराना कामशास्त्र का आचार्य, पालकप्यय हरतायुर्वेद  
में ( ३ । ८ । ०० ) इसका नाम है ।

भट्टपुत्र को शिकार का शौक है, अस्तिर लक्ष्य के जीतने में निपुण है, भट्ट पुत्र पिता के डर से खुलकर अपना शौक पूरा नहीं करता ॥ ८० ॥

इति निजसेवकनिर्गदितरामणिक्यवचनजनितपरितुष्ट्या ।

अन्तर्मुदितो ब्रूते मामेप खलीकरोतीति ॥८१॥

इस प्रकार अपने नौकर चाकरों से की हुई अपनी प्रशंसा को मुन कर—  
आनन्द से अन्दर ही अन्दर प्रसन्न होकर उनसे कहता है कि ये सब तो मुझे  
बनाते हैं, झूठी प्रशंसा करता है ॥ ८१ ॥

“कृतमत् कृतमल्लग्न प्रस्थानं, का च नर्तकी भट्टा ।

चिदरसटके का नृत्यति कोहलमस्तोन्नितत्रियया ॥८२॥

नाच्यदि शास्त्र का दुर्गम नियम कौन-कौन सा जाना हुआ है, कौन सी  
भेद्य नर्तकी है, कोहल और भरत के कहे हुए अनुसार निर्गों के सन्तुष्टों में कौन  
नाचती है? ॥ ८२ ॥

कीटस्त्वं न (ल ?) यमार्गे वेनुकरचिते च तालके कीटकू ।

प्रेक्ष्यकादावेवं पृच्छति नृत्योपदेशकं यत्नात् ॥८३॥

तुम्हारा लय ज्ञान वैसा है, वेनुक से बनाये ताल को किन्ना जानते हो,

१—नर्तकी छद्म—यौवनादिगुणोन्मत्ता मुच्यन्तीति विचक्षणः ।

सदा प्रगल्भा च तथा स्पष्टालस्या त्रितयमा ॥

समागतास्तु नारीषु रूपयौवनकान्तिषु ।

न द्रव्यते गुणैस्तुल्या नर्तको सा प्रकीर्तिता य

विद्वद्भ्यः—नेत्योपचाराकुशलो मधुरो दक्षिणः कविः ।

कदापोहस्यमो धाम्नी चतुरश्र वितो भवेत् ॥ १४ । १०४

विद्वत्के—वितो के धांकड़ा चाह विद्वत्के के स्पष्टर—  
शृंगार के का नृत्यति भी पाठ है, शृंगारक चौराहा सुद्धा स्थान । त्रिपाटी  
जोने शिगट के पाठ छेक माना है—मराठी में हीन्दी के छिमे शिगा छट्टों  
आता है—

शिग का छद्मण—सख्याः समक्षं पत्युयंदुद्वतं वृचमुच्यते ।

मखुर्णं च कचिद् भूत्तं चरित शिगट कस्तु साः ॥

कोहल—भरत पुत्र, भरत—ये दोनों नाट्यगार्थ हैं ।

मंत्रलखक-उपरूपक में तुम्हारा कितना प्रवेश है, इस प्रकार नृत्य उपदेशक-नृत्य के आचार्य से पहले पूछता है<sup>१</sup> ॥ ८३ ॥

सुमनोमाला कण्ठात् सादरचेता ददाति नर्तक्यै ।

अपनीय सताम्बुलामनवसरे साधुवाद च ॥ ८४ ॥

भट्टपुत्र घड़े सम्मान के साथ अपने गले की फूलों की माला को उतार कर ( पिता की आँख उचाकर ) ताम्बूल के साथ नर्तकी को देता है, बिना समझे ही बीच-बीच में वाह-वाह करता है ॥ ८४ ॥

भुजयलनगात्रसस्थितिलालित्योद्बहनपार्श्ववलितानि ।

अनयैव निर्मितानि स्थानरशुद्धिरच चातुरस्य च ॥ ८५ ॥

ऐसा भास होता है कि हाथों भुजाओं का चलाना, मोड़ना, शरीर को स्थिर करना, लालित्य पाश्र्वों में झुकना, कौशल प्रदर्शन, चातुरस्य-आदि भाव विशेष इसी ने बनाये हैं, इनको अच्छी प्रकार जानता है ॥ ८५ ॥

प्रतिभक्तैर्भावरसैरभिनयभङ्ग्या परिक्रमैश्चित्रै ।

रम्भामप्यसिरोते विमुतेतरनर्तकीलोकम् ॥ ८६ ॥

रति आदि भावों<sup>२</sup> की पृथक् पृथक् अभिव्यक्ति, शृंगार आदि रसों की नई नई रचना से, नाना प्रकार की परिक्रमाओं से, नृत्य में घूमने से रम्भा को मी लजाता है, मनुष्य लोक की दूसरी नर्तकियों की बात ही क्या ? उनको तो अवश्य ही भेँसा देगा ॥ ८६ ॥

इत्यपसारकविरतायविरतमुच्छलितकण्ठमत्युच्चै ।

वर्णयति भावितात्मा ललितपदमात्रया पात्रम् ॥ ८७ ॥

नृत्य बन्द करते हुए नर्तकी के निर्गमन सूचक गीत वादन की समाप्ति पर नृत्य में प्रसन्न हुआ यह ऊँचे स्वर में कुछ चुने हुए थोड़े ही शब्दों में नर्तकी की प्रशंसा करता है ॥ ८७ ॥

१—लय—नृत्य, गीत और वाद्य की समता का नाम लय है, अथवा तालों के बीच का समय लय कहलता है ।

तालकालान्तरस्यायी दुतमप्यविलम्बित ।

त्रिधा लय इति प्रोक्तो बदशामलविरचवत् ॥

धेनुक—बन्वादि विशेषकी धेनुक सज्ञा है, अथवा धेनुक नाम के किस गायक से बनाये गीत की सज्ञा है ।

मेहुलखक—उपरूपक, गमसन्धि और अवमर्श सन्धि रहित ।

२—भाव—निविकाररूपक चित्ते भाव यद्यभावक्रिया—साहित्यदुपण्य १ ( ३७ )

प्रायेण भट्टतनयो भवतोदशवेपचेष्टितो भट्टे ।

तं मदनवागुरान्तः पातयसि यथा तथा त्रमः ॥ ८८ ॥

हे भट्टे ! अधिकतर इस प्रकार के वेश और चेष्टावाले भट्टतनय को कामदेव के जाल में जिस प्रकार से पँसा सकोगी उसी को कहती हूँ ॥ ८८ ॥

दूती का चुनाव—सबसे पहले दूती को मैबना चाहिए—

चतुरा प्रागल्भ्यवती परचित्तज्ञानकौशलोपेता ।

योज्या तस्मिन्दूती शक्रोक्तिविभूषिता प्रयत्नेन ॥ ८९ ॥

चतुर; खूब बात-चीत करने वाली, दूसरे के मन को समझने में कुशल, श्लेषात्मक बात करने में निपुण दूती को कोशिश से उसके पात पहुँचाना चाहिये ॥ ८९ ॥

समुपेत्य तयाऽवसरे ताम्बूलं सुमनसश्च दत्त्वेत्थम् ।

अभिधातव्यं सुन्दरि मकरभ्यजदीपकैर्वचनैः ॥ ९० ॥

हे सुन्दरि ! दूती भट्टतनय के पाम जाकर समय को देखकर उससे ताम्बूल और फूल भेंट करके, मौका देखकर काम को बढ़ाने वाले वचनों से बात करना प्रारम्भ करे ॥ ९० ॥

जन्मसहस्रोपचितैः पुण्यचयैरद्य फलिसमस्माकम् ।

यत्त्वं नयनानन्दन नयनापसरं समेतोऽसि ॥ ९१ ॥

हजारों हजारों जन्म-जन्मान्तरों के पुण्यों का फल आज सामने आया है, जो आँखों को मुग्न देने वाला आपका दर्शन आज मिला ॥ ९१ ॥

१. दूती—“दूत्याः सखी नटी दाम्नी धात्रेयी प्रतिवेशिनी ।

बाळा प्रमजिता कारुः शिषिपन्यासा स्वर्ष तथा ॥

दूती के गुण—कलाकौशल्यमुसाहो भक्तिश्रित्तज्ञता स्मृतिः ।

माधुर्यं नर्मविज्ञान वाग्मिता चेति तद्गुणाः ॥

साहित्यदर्पण ३-१२८।१२९.

धर्मगारंग में—“माळाकारवधूः सखी च विधवा धात्री नट्ये शिषिपनी

सेरन्ध्री प्रतिगोदिकाऽथ रजकी दासो च सम्बन्धिनी ।

बाळा प्रमजिता च मिश्रवनिता तदस्य विकेयिका

मान्धा कारुवधूर्विदग्धपुखैः प्रेम्णा इमा दूतिकाः ॥ ८।१६.

पत्रच्छेद—अपना अनिष्टाव बताने के लिये मूर्खपत्र आदि पत्रों पर चतुराई

से कटाव करना, पत्रकच्छी-पत्रों को काटने के लिये कैंची,

या पत्रों के साथ कैंची लिये ।

चाटुक्रममनुरागं प्रणयरूपं विरहजनितशोकार्तिम् ।

प्रकटयति चाररमणी नटीव शिक्षाभियोगेन ॥ ६२ ॥

सिताने से वेश्या भी नटी के समान प्रिया प्रशसा; स्नेह, प्रणय मिला मोध, विरह जनित शोक को दिखाने लगती है ॥ ६२ ॥

प्रवयसि यौवनशालिनि हीनकुले सत्कुलप्रसूते च ।

रोगवति दृढशरीरे समचित्ता योगिनश्च गणिकाश्च ॥ ६३ ॥

बड़ी आयुवाले वृद्ध और युवक में, हीन कुल में उत्पन्न और उत्तम कुल में उत्पन्न, रोगी एवं स्वस्थ शरीरवाले में, योगी और वेश्याओं का एक समान भाव रहता है ॥ ६३ ॥

उपचरिताप्यतिमात्रं पण्यवधू क्षीणसम्पदं पुंस ।

पातयति दृशं व्रजत स्पृहया परिधानमात्रेऽपि ॥ ६४ ॥

बड़े परिश्रम के साथ सेवा को हुई भी वेश्या निर्धन व्यक्ति के पक्षे हुए वहाँ पर भी अपनी लालच भरी दृष्टि गड़ाये रहती है ॥ ६४ ॥

इत्थं दृढतरवासितमनसा पुंसामसाम्प्रतं पुरत ।

वेशविलासवतीनामशरीरशरव्ययाकथनम् ॥ ६५ ॥ (कुलफम्)

ऊपर के तीन श्लोकों में कहे हुए विचारों से युक्त चित्त वाले पुरुषों के सामने वेश्याओं के कामनाओं की बात करना व्यर्थ है ॥ ६५ ॥

केवलमगणितलाघवदूरपरित्यक्तधीरताभरणा ।

मुखरयति मा दुराशादग्धसखी तेन कथयामि ॥ ६६ ॥

तुच्छता हीनता का विचार न करके, धीरता को दूर छोड़कर, यह जलमुही-दुराशा ही मुझे कहने के लिये प्रेरित कर रही है, इसीसे कहती हूँ ॥ ६६ ॥

हृदयमधिष्ठितमादौ मालत्या कुसुमचापयोगेन ।

चरमं रमणीवल्लभ लोचनविषयं त्वया भजता ॥ ६७ ॥

हे रमणीवल्लभ ! तुमको देखकर ही मालती का हृदय कामदेव के बाण से पूरे रूप में विष गया है—वह तुम्हारी ही उन गई है ॥ ६७ ॥

नीचे आठ श्लोकों में मालती की विपुल अवस्था का वर्णन—

क्षणमुत्पट्टकिताङ्गी क्षणमुल्लङ्घनाहवेदनावस्था ।

क्षणमुपजातोत्कम्पा स्वेदार्द्रवपु क्षणं भवति ॥ ६८ ॥

क्षण भर में मालती को रोमाच हो जाता है, थोड़ी देर में तीव्र दाह होने लगता है; तुरन्त ही कंपकंपी आ जाती है, और थोड़ी देर बाद ही सारा शरीर पसीने में नहा जाता है ॥ ६८ ॥

मुहुरविभावितहास्या मुहुरग्मितधीरभावमत्युच्चैः ।

रोदिति गायति च पुनः पुनश्च गौनावलम्बिनी भवति ॥६६॥

क्षण भर में अपने आप हँसने लगती है, फिर तुरन्त ही ध्वराकर जोर-जोर से रोती है, कभी गाती है और तुरन्त ही मौन धारण कर लेती है ॥६६॥

पतति मुहुः पर्यङ्के मुहुरंके परिजनस्य मुहुरवनी ।

किसलयकल्पिततल्पे मुहुरम्मास मुहुरनद्गसंतप्रा ॥ १०० ॥

कामाग्नि से सन्तप्त मालती-कभी मिस्तर पर लेटती है, कभी सम्बन्धी जन की गोद में पड़ जाती है और कभी भूमिपर; कभी पत्तों की जनी शय्या पर और कभी जल में लेटती है ॥१००॥

महिषीष पङ्कदिग्धा हंसीष मृणालजलयपरिवारा ।

सुभग मयूरीवासी भुजंगनिद्वेपिणी जाता ॥ १०१ ॥

सताप को दूर करने के लिये मालती ने शरीर पर कर्पूर चन्दन आदि का लेप किया है; जिससे वह कीचड़ से लिपटी भैंस के समान दीप्तती है; सताप को दूर करने के लिये उसने कमल नाल के कड़ा (आभूषण) पहने हुए हैं; इससे वह मृणाल समूह से त्रिरी हँसो के समान दोखती है। हे सुभग! इस समय वह मयूरी की भाँति भुजंगों से द्वेप करने लग गई है (भुजग-सौंप से, स्या-भुजग-निदों से) मयूरी जैसे सौंपों से द्वेप करती है, उसी प्रकार मालती भी अत्र विदों से द्वेप करने लगी है ॥१०१॥

कदलीचन्दनपंरुपंकेरुहनीरहारघनसारम् ।

सुन्दरशराधरकान्तं नो शान्त्यै मदनद्रुतभुजस्तस्याः ॥ १०२ ॥

कामाग्नि में बनती मालती को नेत्रों की शीतलता, चन्दन का लेप, कमल, पानी, फूलों का दार, कर्पूर और चन्द्रकान्त मणि भी शान्ति नहीं दे पाते ॥१०२॥

अपसारय घनसारं कुरु हारं दूर एव किं कमलैः ।

अलमलमालि मृणालैरिति वदति दिवानिशं वाला ॥ १०३ ॥

हे सलि ! 'कर्पूर को दूर ले जा, हार को हटा दे, कमलों से क्या लाम, कमल नालों की कोई बख्तर नह', इस प्रकार से गला रात दिन कड़ती रहती है ॥१०३॥

संरुलपेम्पनीतं त्वामन्तिरुमुल्लसन्मनोवृत्तिः ।

दृढमालिगति पश्चात्स्वमुजापीडेन याति, वैलक्ष्यम् ॥ १०४ ॥

संरुल-ध्यानावस्था से तुम्हको समीप में लाकर-थसत्र होकर दृढ आलिगन



करती है—और पीछे अपनी ही भुजाओं को दगाने पर आश्रय करने लगती है ॥१०४॥

कुसुमामोदी पवन पिन्मृजितभृङ्गसार्थरसितानि ।

इयमियती सामग्री घटिता विधिनैव तद्विनाशाय ॥ १०५ ॥

सुगन्ध से भरी वायु, कीकल का कुहकना, अभिप्राय भरा भ्रमरों का गुजन, यह सब सामग्री विधि ने उसने नाश के लिये ही बनाई है ॥१०५॥

अवला बलिना नीता दशमिमा मकरकेतुना रक्ष ।

आपत्पतितोद्भृतये भयति हि शुभजन्मना जन्म ॥ १०६ ॥

बलयान् कामदेयने उस बेचारीको इस दशा तक पहुँचा दिया है, अब उसकी रक्षा करो । भले मनुष्यों का जन्म आपत्ति में पैसे व्यक्तियों के उद्धार के लिये ही होता है ( 'आपत्तातिप्रशमनफला सग्यदो ह्युत्तमानाम्'—मेघवृत् ) ॥१०६॥

नो गृहन्ति यथार्था अर्थिजनैर्निगदिता गिर प्राय ।

मालत्या गुणलेश भृगु घृष्टया तथापि कथयामि ॥ १०७ ॥

अर्थियों द्वारा की गई गुणों की प्रशंसा को प्राय लोग यथार्थ होने पर भी नहीं मानते । तथापि मालती के थोड़े से गुणों की घृष्टतावश कहती हूँ ॥ १०७ ॥

आस्फलयतो नून धनुरतनो कौसुम रज पतितम् ।

संगृह्य सा मुगात्री विश्वसृजा निर्मिता तेन ॥ १०८ ॥

कामदेय के धनुष तानते समय जो पुष्पमय धूल गिर पड़ी थी, उसी धूल को इकट्ठा करके ब्रह्मा ने उसके शरीर का निर्माण किया है ॥ १०८ ॥

उपहसति गिरिसुताया लावण्य येन सततलग्नेन ।

न द्रवतामुपनीत भोगीन्द्रविभूषणस्य देहार्धम् ॥ १०९ ॥

निरन्तर लगी हुई उस धूल के कारण वह पार्वती के लावण्य को भी हसती है । क्योंकि पार्वती के लावण्य से महादेव का आधा शरीर भी द्रव नहीं बन सका ॥ १०९ ॥

शशधरविम्बार्धगता छायामिव सैहिकेयवदनस्य ।

अलिपटलनीलकुटिलामलनावलिमलिकसनिधौ वहति ॥ ११० ॥

१. मेघवृत् में इससे मिश्रता जुड़ता वचन आया है—

मामाकाशप्रविहितमुज निदंयारलेपदेवो

लब्धावास्ते क्यमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु । मेघवृत् उत्तर ४९ ।

२. मुक्ताफलेषु छायावास्तरत्नत्वमिवान्तरा ।

प्रतिभाति यद्गुण तत्त्वावप्यमिदोऽन्यत्वे ॥ दशरूपक ।

राहु के मुख में पहुँचे चन्द्रमा की काली छाया के समान भ्रमरों के समूह  
जैसी काली कुटिल केशराशि उसके खलाट के पास में है ॥ ११० ॥

सरसिजमस्थिरशोभं विभ्रमररहितं च मण्डलं शशिनः ।

केन समेतु समत्वं हृदयप्रियं मालतीवदनम् ॥ १११ ॥

मन को लुमाने वाले मालती के मुख की तुलना जिससे करें, क्योंकि कमल  
की कान्ति अस्थिर है, चन्द्रमा का मण्डल विभ्रम ( निलास ) रहित है, इसलिये  
इनसे तो तुलना हो नहीं सकती ॥ १११ ॥

अलिरुपरि तदीक्षणयोर्भ्रान्त्वा सौगन्ध्यसूचितविशेषः ।

निपतति कर्णाम्बुरुहे निर्गुणताप्यवसरे साञ्जो ॥ ११२ ॥

विशेष सुगन्ध से सिँचा भ्रमर भी में उसकी श्रोंश्रों पर आकृष्ट होकर  
कानों में गिर पड़ता है, मौके पर निर्गुणता भी मली होती है ( भ्रमर गुणहीन  
न होता तो उसकी श्रोंश्रों की दुर्गति कर डालता ) ॥ ११२ ॥

विभ्राणोऽरुणिमानं सहजं नित्यन्युजीवरुचिमधरे ।

यदलक्षकविन्यसनं तत्तस्या मण्डनक्रीडा ॥ ११३ ॥

स्वामात्रिक लाली लिये हुए-दुपहरिया पुष्प की शोभा को भी तिरस्कृत  
करने वाले होठों पर ओ लाल रंग लगाया है, वह तो केवल अलंकार करने  
का लिलवाड ही है ॥ ११३ ॥

चित्रमिदं यत् कृशता तस्या बलिपरिगृहीतमध्यस्य ।

अथवा नो विधिविहिता महताप्यपनीयते तनुता ॥ ११४ ॥

त्रिवली वाले उसके या बलवान मज्जभाग में जो कृशता ब्रह्मा ने बनाई है,  
यह पतलापन बहुत कोशिश करने पर भी दूर नहीं किया जा सकता, यह आश्चर्य  
है ( बली का अर्थ बली और बलवान है । ) ॥ ११४ ॥

आस्तामपरस्तावत्तस्याः स्मरवसतिपृथुतरनितम्बः ।

श्लथयति कपिलमुनेरपि दृक्पथपतिनः समाधानम् ॥ ११५ ॥

श्रौर तत्र बातों को छोड़ो, काम का वास स्थान-उसका जो विशाल  
नितम्ब है, उसको देखकर कपिल मुनि भी समाधि लगाना भूल जाते हैं ॥ ११५ ॥  
तस्या रम्भावपुपो रम्भोपममूढ्युगलमवलोक्य ।

मकरध्वजोऽपि सहसा निजसायकलक्ष्यतां याति ॥ ११६ ॥

१. ऐसा भाव काबिदाम ने भी वर्णन किया है—

तस्याः सुजातोत्पलपत्रकान्तेः प्रसाधिकाभिर्नन्दने निरोद्धर ।

॥ चक्षुषीः कान्तिविशेषमुद्भवा कालाञ्जन मंगलनिस्तुपापम् ॥

कामदेयको चाहिये कि वह फूलों के धनुष को रक्त दे और बाणों को तरकस में पेंक दे । क्योंकि उसका काम करने के लिये अकेली मालती पर्याप्त है ॥ १२२ ॥

वात्स्यायनमदनोदयदत्तकविटपुत्रराजपुत्राद्यैः ।

उल्लापितं यत्किञ्चित्तत्तस्या हृदयदेशमध्यास्ते ॥ १२३ ॥

वात्स्यायन [ कामशास्त्र का कर्त्ता ]; मदनोदय; दत्तक [ वेश्याधिकरण का कर्त्ता ]; विटपुत्र, राजपुत्र आदि ने जो कुछ भी कहा है; वह सब उसके हृदय में स्थित है—यह सब अच्छी प्रकार जानती है ॥ १२३ ॥

मरतविशाखिलदंतिलवृत्तायुर्वेदचित्रसूत्रेषु ।

पत्रच्छेदविधाने भ्रमकर्मणि पुस्तसूदरास्त्रेषु ॥ १२४ ॥

आतोद्यवादनविधौ नृत्ते गीते च कौशलं तस्याः ।

अभिधातुं यदि शक्नो वदनसहस्रेण भोगिनामोशः ॥ १२५ ॥

भरत [ नाट्यशास्त्र कर्त्ता ]; विशाखिल [ कलाशास्त्र कर्त्ता ]; दन्तिल [ कोहल का शिष्य - संगीताचार्य ] के बनाये शालों में; आयुर्वेद, चित्रकर्म [ आलेखकर्म ]; सूत्रकर्म ( जीवन-कर्म या अगुली में धागा डालकर नाना प्रकार के रूप बनाने में ); पत्रच्छेदन; भ्रमकर्म ( पेन्द्र जालिक ), पुस्त ( मिट्टी आदि के मोड़ल ); सूदशास्त्र ( रसोई ); आतोद्य ( वीणा, मुरज, बंसी, कात्यक ) के बजाने में; नृत्त ( ताल और लय के साथ नाचने ) में; गाने में मालती के कौशल को शेषनाग ही अपने हजारों मुरों से कहने में समर्थ हो सकेगा ॥ १२४-१२५ ॥

परिगलदालोलांशुकमपयंत्रणमुरसि मालती रभसात् ।

निपतति नाऽपुण्यवतां रविलालसमानसा रहसि ॥ १२६ ॥

प्रेम से बेचैन होकर स्तनों से लिप्त होते हुए वज्र को एकान्त में छाती पर सहसा ठीक करती हुई मालती को पुण्यशाली मनुष्य ही देख सकते हैं ॥ १२६ ॥

रतिरसरभसास्फालनचलवलयनिनादमिश्रितं तस्याः ।

तत्कालोचितमणितं श्रुतिपथमुपयाति नाऽल्पपुण्यस्य ॥ १२७ ॥

१. वेरया को कामशास्त्र के साथ कलाओं में भी निपुण होना चाहिये—

आभिरम्युच्छिन्ना वेरया शीघ्ररूपगुणान्विता ।

छमते गणिकामण्डं स्थानं य जनसंसदे ॥ कामघ्न

विशाखिलः—कलाशास्त्रकर्त्ता—विशाखिलवादिप्रखीतानिकलाशास्त्राणि-कान्या-  
लंकारवृत्ति [ १।३।७ ]; पत्रच्छेद-पत्रभंग-मकरिका आदि; कपोल आदि  
पर चित्रकर्म-प्रसाधन; पुस्त-सूदा वा दास्य बाध्य वरत्रेणाप्यय धर्मणा ।  
ओदरतनैः कृतं वाऽपि पुस्तमित्यभिधीयते ॥

रतिरस के वेग से परस्पर सम्मोग में हिलते हुए बलयों से मिश्रित उस समय का उसका रतिकृञ्जन (रतिसमय का शब्दविशेष) थोड़े पुण्यशालियों के मुनने में नहीं आ सकता, इसे तो बड़े पुण्यशाली ही मुनते हैं ॥१२७॥

इत्थमभिधीयमानः शुभमध्ये यदि भवेदुदासीनः ।

एव ततोऽभिधेयः सदर्शितकोपया दूत्या ॥ १२८ ॥

हे शुभमध्ये ! इतना मुनने के पीछे भी यदि भट्टनायक उपेक्षा ही दिखाये, तब दूती को चाहिये कि क्रोध दिखाकर इस प्रकार से कहना प्रारम्भ करे ॥१२८॥

किं सौभाग्यमदोऽथ यौवनलीलाभिरूपतादर्पः ।

सहजप्रेमोपनता मालतिका न बहु मन्यसे येन ॥ १२९ ॥

तुमको क्या अपने सौभाग्य का गव है, अथवा जवानी की सुन्दरताका अभिमान है, जिससे तुम स्वाभाविक प्रेम से आई मालती को कुछ नहा समझते हो ॥१२९॥

न गणयति या कुलीनान्द्रविणवत् शास्त्रवेदिनः प्रणतान् ।

सा भयदर्शे शुष्यति कुर्यान्निवेशित धिगनुरागम् ॥ १३० ॥

मालती तुम्हारे लिये कुलीन पुरुषों को, धनिकों, विद्वानों, नम्र बने पुरुषों को भी नहीं पूछती, तुम्हारे लिये सुखकर कौन बन रही है, (अयोग्य स्थान में) किये प्रेम को बिककार है ॥१३०॥

कमलवनी तीव्ररुची बहुभस्मनि शम्भुरिरसि शरिलेखा ।

सा च त्वयि पशुकल्पे यदभिरता तेन मे कृशता ॥ १३१ ॥

जिस प्रकार स कोमल कमलिनी-तीक्ष्ण किरणों वाले सूर्य पर और शरीर पर भस्म लपेटे महादेव के शिर पर चन्द्रमा की चोंदनी आसक्त है, उसी प्रकार पशु समान तुम पर वह जान देती है, इसी की मुझे चिन्ता है—दुःख है ॥१३१॥

असरलमरस कठिन दुर्ग्रहमस्त्रिधमाश्रिता खदिरम् ।

यदुपैति वाच्यपदवी मालतिका तत्किमाश्चर्यम् ॥ १३२ ॥

जिस प्रकार टेढ़े, सूखे, कठोर, पकड़ने में कठिन, स्नेह रहित-सूखे रौर के वृक्ष पर मालती चमेली चढ़ जाये—उससे लिपट जाये, उसी प्रकार टेढ़े, सूखे, कठोर, पकड़ने में कठिन, स्नेहरहित, सूखे तुमस मालती ने जो प्रेम किया—यह यदि निन्दा का विषय बन गया, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥१३२॥

अथवा क खलु दोषो यदतुल्यतयोपजनितवैलक्ष्यः ।

स्वाधीनामपि सरसा परिहरति सृणालिका ध्वाञ्च ॥ १३३ ॥

अथवा इसमें दोष ही क्या ? दोनों में किसी भी प्रकार की समानता न

होने पर भी वश में आई हुई रसवाली कमलिनी को कौआ एकदम से छोड़ देता है ( इसी प्रकार स्वतन्त्र-स्नेह शील मालती को तुम छोड़ रहे हो ) ॥१३३॥

माऽत्र करिष्यसि रोद निष्ठुरमुक्तोऽसि यन्मया सुभग ।

यूना हि रक्ततरुणीमुद्गदभिहितपत्पमाभरणम् ॥ १३४ ॥

हे सुभग । मैंने जो भी कच्चा बात कही हो उसके लिये दुःख न करना । अनुरक्त तरुणी की सती का कठोर वचन युवाओं के लिये ग्राह्य ही होता है ॥१३४॥

चन्द्रमसेव ज्योत्स्ना, कसामुरवैरिणेव वनमाला ।

कुसुमरारासनलतिरा कुसुमाकरवल्लभेनेव ॥ १३५ ॥

मदलीला हलिनेव, स्वनयुगलेनेव हारलता ।

रम्यापि सा सुगात्री रम्यतरा भवतु सगता भवता ॥ १३६ ॥

( युगलकम् )

जिस प्रकार चन्द्रमासे चोदनी श्रीकृष्णके गलेसे वनमाला, कामदेव से फूलों व धनुष की शय्या ( खोरी ) नलराम से मदलीला स्वनयुगल से हारलता अधिक सुन्दर जनी हैं उसी प्रकार यह सुगात्री सुन्दर होनेपर भी आपके साथ मिलकर श्रीर भी अधिक सुन्दर बने ॥ १३५ १३६ ॥

किं बहुना, यदि यूनामुपरि विधातु समीहसे चरणम् ।

तत्कुरु रमणीरत्न प्रेमोऽज्ज्वलमकतस्तूर्णम् ॥ १३७ ॥

अधिक कहने से क्या लाभ यदि सब युवाओं के सिर पर पैर रतना चाहते हो तो जल्दी ही प्रेम से उज्ज्वल ( स्नेह करनेवाली ) रमणी रत्न मालती को स्वीकार करो ॥ १३७ ॥

१ वनमाला—आपादपत्र या माला वनमालेति सा मता अथवा पुत्रपुत्र मयी माला वनमाला प्रकाशिता ।

२ रमणीरत्न—रत्न का लक्षण—“आतो नातो यदुत्कृष्टं तद् रत्नमभिधीयते” अथवा रमणीयतर यस्माद् रमन्तेऽस्मच्छतीव वा । तस्माद् रत्नमिदं कथ्यते शब्दशास्त्र विचारदे ॥ खोरत्न—खोर्णा गुणा यौवनरूपवेशदाक्षिण्य विज्ञानविज्ञासूक्ता । खीरत्न—खी च गुणान्वितासु खी० वाचयाऽन्यारचतु रस्य पुंस ॥ वृद्धसंहिता [ ७३११३ ]

अत्रिपुत्र ने भी कहा है—

इष्टा शकैश्चोऽप्यर्था पर प्रीतिकरा स्मृता ।

किं पुन खीररीरे ये सबातेन प्रीतिक्षिन्ना ॥

सचातो हीद्विद्यार्पणा खीषु नापत्र विद्यते ॥

चरक० चि० अ० २।१।५

अथ तद्वचनश्रवणप्रविजृम्भितमदनमट्टदायादः ।

उपचरणीय सुन्दरि निजवसतिमुपागतस्त्वयाऽप्येवम् ॥ १३८ ॥

दूती के वचन को सुनकर भट्टपुत्र में जब काम उद्दीत हो जाये, और वह तुम्हारे घर में आये, तब तुमको भी उसकी इसप्रकार सेवा करनी चाहिये<sup>१</sup> ॥ १३८ ॥

दूरादभ्युत्थानं, प्रणमनभात्मासनप्रदानं च ।

प्रविधेयमंचलेन प्रफोटनमङ्घ्रियुगलस्य ॥ १३९ ॥

उसे दूर से आता देखकर तुमको खड़ा हो जाना चाहिये, नमस्कार करना चाहिये, अपना आसन उसको देना चाहिये, अपने आँचल से उसके पैरों को पोछना साफ करना चाहिये ॥ १३९ ॥

ईपद्वयप्रफटितकक्षोदरबाहुमूलकुचयुगलम् ।

सदरयं भटिति यास्यसि नायकदृग्गोचरात्तूर्णम् ॥ १४० ॥

अनजाने ही कक्षा, उदर, बाहुमूल, स्तनों को थोड़ा सा दिखाकर तुरन्त जल्दी से उसकी आँखों के सामने से हट जाना<sup>२</sup> ॥ १४० ॥

अथ पर्यंकसनाथं दीपोज्ज्वलकुसुमधूपगन्धाढ्यम् ।

विततवित्तानकरम्यं प्रवेशितो वासकागारम् ॥ १४१ ॥

दीप से प्रकाशमान, कुसुम और धूप से महकने वाले, पलंग बिछे, चौड़े चँदोचे से सुन्दर रतिगृह में उसे ले जाना चाहिये<sup>३</sup> ॥ १४१ ॥

मात्रा ते गुरुजघने सादरमवतारणादिकं कृत्वा ।

अभिनन्दनीय एभिर्वचनविशेषैः प्रयत्नेन ॥ १४२ ॥ ( युगलकम् )

हे विशाल अग्रनों वाली ! तेरी माता ( समयमातृका ) को चाहिये, वह

१. दायाद--'दाय पैतृक धन आदत्ते इति दायादः ।'

२. साहित्यदर्पण तथा अन्य ग्रन्थों में नायिका के अमुराग के लक्षण दिये हैं। यथा--

कापि कुन्तलसम्यानसवमन्यपदेशतः ।

बाहुमूलस्तनौ नाभिःपङ्कजदशंयेरस्फुटम् ॥ साहित्यदर्पण ३।१।२

३. रतिगृह--"स्फुर्जहीपशिलोज्ज्वले सुचञ्चिते रम्याश्च ते विस्तरे

धूपोदगारमनोदरे कुसुमसद्गामोपशोभाश्रिते ।

वीथ्यालालरवाङ्गले मनसिजप्रस्तावनानन्दिते

सम्भोगः कुशलैः स्पर्शकीयमवने कार्यो यथा कदम्बया ॥

पद्यसायक ४।१८.

आदर के साथ दृष्टि-दोष को दूर करने के लिए अवतारणक आदि क्रियाएँ करें।  
फिर इन सुन्दर वचनों से उसका स्वागत करना चाहिये ॥ १४२ ॥

अद्याशिषः समृद्धाः, परितुष्टा इष्टदेवता अद्य ।

कल्याणालंकारो यदलंकृतवानिदं वेश्म ॥ १४३ ॥

आज हमारा भाग्य खुल गया; देवता आज प्रसन्न हो गये, आप भाग्यमान  
जो हमारे घर पधारे—घर की शोभा बढ़ाई ॥ १४३ ॥

अनुरूपपात्रपटन कुर्वाणस्याद्य कुसुमबाणस्य ।

सुचिराद् यत् संजातं शरासनाकर्पणश्रमः सफलः ॥ १४४ ॥

आज कामदेव का भी देर तक ननुप खींचने का फल सफल हो गया, जो  
उसने आप की यह सुन्दर मूर्ति उनाई ॥ १४४ ॥

धिन्यस्य शिरसि चरणं सुमगा गणिकाजनस्य सकलस्य ।

सौभाग्यवैजयन्ती सम्प्रति वत्सा समुत्तिष्ठतु ॥ १४५ ॥

सौभाग्यवती यह मालती; सम्पूर्ण वेश्याओं को तिरस्कृत करके अब समेत  
अधिक सौभाग्यवती बनें ॥ १४५ ॥

दुहितर एव रत्नाध्या, धिग्लोकं पुत्रजन्मसंतुष्टम् ।

जामातर आप्यन्ते भवादृशा यदभिसम्बन्धात् ॥ १४६ ॥

कन्याओं का उत्पन्न होना ही उत्तम है, पुनोत्पत्ति से प्रसन्न होना निन्दनीय है,  
क्योंकि कन्या के जन्म के कारण आप जैसे योग्य जामाता मिल जाते हैं ॥ १४६ ॥

दृढपरिचया गुणज्ञा भवद्विधा मानदा यदपि ।

तदपि हृदयामिनन्दनं दुहितस्नेहादहं बन्धि ॥ १४७ ॥

आप जैसी का परिचय स्थायी है, आप स्वयं गुणों को जानने वाले, गुणों  
का सम्मान करने वाले हैं, हे हृदय को प्रसन्न करने वाले ! तथापि कन्या के स्नेह  
से कुछ कहती हूँ ॥ १४७ ॥

१. अवतारणक—उतारना; दूषित दृष्टि आदि को दूर करना; जैसा कादम्बरी में—‘स्वयमेव कृतावतरणक’—[ चन्द्रापीडका माता-पिता का दर्शन ]; विद्यासवती ने चन्द्रापीड के ऊपर अवतरण किया; इसका स्पष्टीकरण डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल ने कादम्बरी एक अध्यायर अनुच्छेद-६१; पृष्ठ ७४) में दिया है। स्त्रियों की धार्मिक क्रियाओं में उतारा का बहुत महत्व है। उतारे कई प्रकार के होते हैं, भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के उतारे बरते जाते हैं। कुछ उतारे मांगलिक और कुछ अशुभ फल वाले धार्मिक होते हैं। कादम्बरी में—‘सखिजाज्ञाभिर्वाचारकुशलेनान्तरपुरजगतीवनेन क्रियमावावतरणकमंगलम् ।’ (गर्भवती विद्यासवती)।

सहजप्रेमोपनता न्यस्ता त्वयि भालती, तथा कार्यम् ।

न यथा भवति घराकी त्वद्विप्रियजन्मनां शुचां वसतिः ॥ १४८ ॥

नैसर्गिक स्नेह से पाली यह भालती तुमको सोंप दी गई; अब ऐसा करना कि इस बेचारी का कुछ बुरा न हो—भूल होने पर दया ही दिलाना, जिससे इसको दुःख न हो ॥ १४८ ॥

मृदुधीतधूपिताम्बरमग्राभ्यं मण्डनं च विभाणा ।

परिपीतधूपवर्तिः स्वास्यति रमणान्तिके सुतनुः ॥ १४९ ॥

महीन-धुला-धूपित ( मुगंधित ) बर्र एवं घारीक चतुरई से बनाया प्रसाधन धारण किये; धूपवर्ति को पीवर यह कोमलांगी आप के पास आयेगी ॥ १४९ ॥

सन्नेहं सघ्रीडं ससाध्वसं सस्पृहं च पर्यन्ती ।

किंचिद्दृश्यशरीरा प्रचिरलपरिहासपेशलालापा ॥ १५० ॥ ( युग्मम् )

अनुराग-लज्जा-भय और प्यासी आँखों से आपको देखती हुई, शरीर का थोड़ा सा भाग सामने पड़ने पर थोड़ी-मुन्दर, कोमल बातचीत करता हुई आप के पास आयेगी—हँसी मजाक करती आयेगी ॥ १५० ॥

मातरि निर्यातायां, परिजनगुक्ते च वासकस्थाने ।

अभियुज्जाने रमणे, यामाचरणां क्षणं कार्यम् ॥ १५१ ॥

माता के चले जाने पर; सम्बन्धियों के घर खाली कर देने पर; विलास का प्रारम्भ करने पर थोड़ी देर के लिये विरुद्ध आचरण करना चाहिये—रौकना चाहिये [ देर तक ह्मकार नहीं करना चाहिये ] ॥ १५१ ॥

रतिसंगरनिहितमतावाकर्षति रमसतः पुरस्तस्मिन् ।

कुट्टमितमाचरन्ती जनयिष्यति किंचिदंगसंकोचम् ॥ १५२ ॥

( अब नायिका को उपदेश है ) सम्भोग में दत्तचित्त होने पर इसको और भी आगे बढ़ावा देते हुए, कुट्टमितशृंगारचेष्टा को करके अंगों को थोड़ा सा सिकोड़ना चाहिये ॥ १५२ ॥

१. धूपवर्ति—कपूरागुरुचन्दनमुस्तकपूतिप्रिचंगुवालं च ।

मांसी चेति धृपाष्ठा योग्या हतिनाथधूपवर्तिरिवम् ॥

२. साथ बैठकर हँसी-मजाक करना बुद्धिमान पसन्द करते हैं ( 'सदास्यवचन-प्रायं नमोऽस्तु मनीषिणः ॥' )

३. कुट्टमित—'केशस्तनाधरादीनां ग्रहे हर्षेऽपि संभ्रमात् ।

आहुः कुट्टमितं नाम शिरःवरविधूतनम् ॥'



प्रारब्धे सुरतविधौ क्रमदर्शितचित्तयोनिसवेगा ।

अपशक्मर्पयिष्यसि निर्व्याज पुत्रि गात्राणि ॥ १५३ ॥

हे पुत्रि ! सम्भोग प्रारम्भ करने पर क्रमशः काम का उद्वेग प्रकट होने पर बिना शोक और छुन के अपने अंगों को निखाओ । [ चित्तयाने - कामर, अथवा चित्त और योनि इन्द्र समास-क्रमशः चित्त और योनि में उद्वेग टाखने पर ] ॥ १५३ ॥

यद्यद्याद्धति हन्तु यद्दृष्टु यच्च विलिखितु गात्रम् ।

तत्तदपसारणीय सावेग ढीरनीय च ॥ १५४ ॥

नायक जिस जिस अंग को पान्ति करना चाहे देखना चाह नलों से अंग पर चूत करना चाहे उन उन अंगों को जल्पा से बर्चने के साथ हटा लना चाहिये और ढाँपना चाहिये ॥ १५४ ॥

दगे सज्यथहुहृतिमामर्दे त्रिभिधकण्ठरसितानि ।

नलविलिखने च सीत्कृतिमाघातेपूत्वेण क्वणितम् ॥ १५५ ॥

नायक के कानों पर पाडा के नाथ हुरार करना, लन आदि क जोर से दबाने पर गले से नाना प्रकार के शब्द करना, नलचूत करने पर सात्कार स्तब्ध, ज़रन आदि पर आगत करने पर नूपरों का ध्वनि का याँति शब्द करना चाहिये<sup>१</sup> ॥ १५५ ॥

१ वृत्त स्थान — कक्षाश्रस्तनयुग च कषाक्षभागी

कण्ठ च दन्तपरिपीडनमप्यदानि ॥ शृ गारदीपिका २।७३ ॥

हिंकारलोकारनिघोष ढको दन्तापने कामकक्षाविश्रुम्भे ।

रामरश्मि स्निग्धतरा समात। घन। सुख। सगितासमान ॥

दन्ता प्रसस्ता भयसर्वरक्षा कषाक्षबाह्या मखिनारपालन्या ॥

॥ अमरग १।३१ ॥

दन्तसम्पर्क—कायपसहिता एव चरकप्रहिता में भी वर्णित है ।

नैपथ्य में—आलोच पर्य प्रतिपेक्षतीय कपोतहुकारमिता वनाली ॥ ३।१३॥

सीत्कार—धूनो प्रदूरयात्रावपीडान्यच्छिदृते भवेत् ।

गच्छाविजातो यः शब्दविशेषस्ताद सीत्कृतम् ॥

हात रत्नदीपिका ॥

नक्षत्रत स्थान—प्रीवाकरोरुजघनस्तनपृष्ठकक्षाद्विपातवर्गपदविषये नक्षरा

चरा स्यु । माने नयोनिसुरते विरहे प्रयासे द्रव्यक्षयेऽथ

विरतौ च मदे प्रयोज्य ॥ अमरग १।२२ ॥

आघात स्थान—स्फुटौ गिरस्तनात्तरं पृष्ठं जघन पार्श्वे

असमंजसमरलीलं दूरोन्मिदधैर्यमविनयप्रसरम् ।

व्यवहारमाचरिष्यसि वृद्धिमुपेते स्वावेगे ॥ १६० ॥

नायक में रति वेग के बढ़ने पर असंजत; अश्लील, धैर्य का परित्याग और अविनय-धृष्टता आदि का व्यवहार करना चाहिये<sup>१</sup> ॥ १६० ॥

अविचेतितनसरत्तुतिरामीलितलोचना निरुत्साहा ।

नायकरुकार्यसमाप्तौ स्वस्यसि शिथिलीकृताश्रयवा ॥ १६१ ॥

सम्भोग की समाप्ति पर शरीर को ढीला करके, नखच्चतों के कट का कुछ भी विचार न करते हुए, आँखें बन्द किये, उत्साहहीन बन जाना चाहिये<sup>२</sup> ॥ १६१ ॥

मदिति नितम्बावरणं, नि.सहृदनुतां, स्मिर्तं सबैलक्ष्यम् ।

खेदालसां च दृष्टिं, जनयिष्यसि मोहनच्छेदे ॥ १६२ ॥

सम्भोग को समाप्ति पर जल्दी से नितम्ब-गुह्य भाग को ढाँप लेना; आँखों

१. रतिवेग बढ़ने पर शास्त्र या कर्म-कर्मपाठसंघ का विचार नहीं रहता—

शास्त्राणां विषयस्त्वावद् यत्नन्मन्दुरसं वराः ।

रतिचक्रे मदुत्ते तु नैव शास्त्रं न च कर्म ॥ कामसूत्र ४

अश्लीलता भी कहीं गुण होती है—

अन्यदा भूपयं पुंसः क्षमा क्षमेव योयितः ।

पराक्रमाः परिमये वैवाच्य सुरतेष्विव ॥ भाष २।४२ ॥

(ख) 'अविनय एव विभूषणमरलीलाचरणमेव बहुमानः' ।

निःशंकैव सौष्टवमनवस्थितिरेव गौरवाधानम् ॥ कुट्टनीमतं ३७९ ॥

(ग) 'हृदयै पदैः पिशुनमेव रहस्यवस्तु ॥'

२. सम्भोग के पीछे की अवस्था—

नारी विषुष्टकृष्णमेपुत्रजा रतान्ते

नृपं करोति बहुवचनं रोदने च ।

वैकल्पमेति मुकुलीकृतचारुनेत्रा

नक्तोति नो किमपि सोढुमतिप्रयासान् ॥ अन्नतरंग ३।११४ ॥

(ख) समादिष्टं शिष्टैरसमागिह यन्निर्वृतिपदं;

पुनर्दग्धोऽप्याशु प्रभवति यतो मन्मथतरुः ।

धृते यस्मिन्कामो भवति कृतकृत्यो रतिमुत्ते,

स सील्यतः पायादमृतविजयो मुन्दरदशम् ॥

(ग) अस्तवा वपुषि मोलने दारोः,

मूर्धना च रतिमानवक्ष्यम् ॥ रतिरहस्य १०।४२ ॥

मे खिन्नता-लानि; लज्जा युक्त मुसकान; मुकुलित दृष्टि ( अर्ध विकसित दृष्टि )  
उत्पन्न करेगी ॥ १६२ ॥

वृत्ते रताभियोगे, स्पृष्ट्वा सलिलं विविक्तभूभागे ।  
प्रक्षाल्य पाणिपादं, स्थित्वा क्षणमासने, समूहकचान् ॥ १६३ ॥  
उपयुक्तवेदनवासा शय्यामारुह्य दर्शितप्रणया ।  
इति वदयसि तं रमणं दृढतरमालिङ्ग्य रमसतः कण्ठम् ॥ १६४ ॥ (युग्मम्)

सम्भोग समाप्त होने पर एकान्त स्थान में जाकर पानी से अंगों को तथा  
हाथ-पैर को धोकर, बालों को बाँध ले । फिर आसन पर थोड़ी देर बैठ कर, पान  
आदि से मुँह को सुवासित करके, शय्या पर बैठे, प्रेम का प्रदर्शन करते हुए,  
नायक के गले में बलपूर्वक एष हर्ष से आलिङ्गन करके इस प्रकार से  
कहे ॥ १६३-१६४ ॥

भट्टसुत नूनमिष्टा तव जाया यदनुरक्तहृदयस्य ।  
जनयति परितुष्टिमलं, नापररामापरिष्वङ्गः ॥ १६५ ॥  
सफलं तस्या जन्म, स्पृहणीया सैव सकलललनानाम् ।  
गौरी तयैव महिता, सुभगंकरणं तपस्तया चरितम् ॥ १६६ ॥  
सैवैका गुणवसतिस्तस्या एवान्वयः सदा श्लाघ्यः ।  
यस्याः शुभशतभाजः पाणिग्रहणं त्वया विहितम् ॥ १६७ ॥ (युग्मम्)

हे भट्टपुत्र ! स्नेहशील हृदय के लिये, आर की परनी ही मन्तोप के लिये  
पर्याप्त है; दूसरी स्त्रियों में आसक्ति अच्छी नहीं । उसका जन्म सफल है, सब  
स्त्रियों के लिये यह ईर्ष्या की वस्तु है, गौरी की महिमा उसी से है, उसका  
आचरण सौभाग्यजनक है, वही अकेली गुणों का वास स्थान है, उसी का धरा  
पूजनीय है, जिस बहुत पुण्यशालिनी का विवाह तुमसे हुआ है ॥ १६५-१६७ ॥

तिष्ठतु सा पुण्यवती वंशद्वयभूषणं वरारोहा ।  
या नापयाति भवतो लक्ष्मीरिध नरकवैरिणो हृदयात् ॥ १६८ ॥

१. "रतामं च श्रमे चैव सुखसंभोगमावने ।

गन्धे स्पर्शे च हर्षे ॥ मुकुला दृष्टिर्प्यते ॥" भरत नाट्यशास्त्र ॥

२. चरक में अग्निपुत्र ने भी कहा है —

"पर्याप्ते चैवा शीतोदकेन पशेति श्रेष्ठम् ।" शा० अ० ८१६

विस्तार के लिये अग्निदेव विष्णुलंकार को संस्कारविधिविशेष में पृ० ४२;

संप्र३ में भी पानी से प्रक्षालन सुरुत करने को कहा है—

'न क्षुण्णं मिथुनीभूष शीचं प्रति विक्षम्यनस् ॥'

दोनों कुलों को शोभित करनेवाली श्रेष्ठ पुण्यशाली वह उनी रहे, लक्ष्मी जैसे विष्णु के हृदय से पगळ नहीं होती, उसी प्रकार यह भी आप के हृदय से कभी अलग नहीं हो ॥ १६८ ॥

पातयसि फुल्लयनिभे कौतुकमात्रेण लोचने यासु ।

ता अपि सत्यं सुन्दर हर्षोच्छ्वलिता न भान्ति मात्रेण ॥ १६९ ॥

(संदानितकम्)

कमल के समान उसकी आँखों की कौतूहल भरी निगाह जिन पर पड़ जाती है, उनमें भी प्रसन्नता फूटकर शरीर से बाहर आने लगती है, है सुन्दर ! यह सत्य है ॥ १६९ ॥

तनुरपि नाथप्रणय. प्रायो मुखरीरुरोति लघुमनसः ।

स्वार्थनिवेशितचित्ता करोमि तेऽभ्यर्थना तेन ॥ १७० ॥

प्रेमी का थोड़ा सा भी प्रेम छोटे मनवालों को मुखर-सीट बना देता है, इसीसे स्वार्थवश कुछ प्रार्थना करती हूँ ॥ १७० ॥

तीव्रस्मरतादृष्ट्याद्यापलव. कौतुकेन घृणया वा ।

मदभाग्यसंपदा वा दूत्या वा कौशलात् स्वभावाद्वा ॥ १७१ ॥

योऽयं प्रेमलवांशः प्रदर्शितोऽस्मासु जीवनोपायः ।

धाधा नात्र विधेया गणिकाजनभावमन्यथानुद्धवा ॥ १७२ ॥ (युग्मम्)

प्रवल कामवाली जजानी की चपलता से, कुतूहल से या दया से, अथवा मेरे सौभाग्य से, या बूती की चतुराई से, अथवा स्वभाव से, जीवन का साधन रूप जो प्रेमरस आपने मुझे दिया है, वेश्याओं के स्वभाव को विपरीत समझ कर इसमें किसी प्रकार की कमी या ग़ाधा नहीं लाना ॥ १७१-१७२ ॥

येन स्नेहः क्रोधः शाठ्यं दाक्षिण्यमार्जवं व्रीडा ।

एतानि सन्ति तास्वपि जीवद्धर्मापनीतानि ॥ १७३ ॥

प्राणियों का नैसर्गिक धर्म से, स्वभाव से वेश्याओं में भी स्नेह प्रीति, क्रोध, शठता धूर्तता, दाक्षिण्य चतुराई, आर्जव नम्रता, व्रीडा लजा, ये सब रहते हैं ॥ १७३ ॥

निर्व्याजसमुत्पन्नप्रवलप्रेमाभिभूतहृदयानाम् ।

दयितविरहाक्षमाणां गणिकानां तृणसमाः प्राणाः ॥ १७४ ॥

बिना कष्ट के उत्पन्न प्रवल प्रेम से भरी हृदय वाली, प्रेमी के विरह को न सहन करने वाली वेश्याओं प्राणों को तृण के समान मानती हैं ॥ १७४ ॥

अत्रानर्ण्य साद्रुतमाख्यान वर्णयामि यद्वृत्तम् ।

अद्यापि विमर्ति वटीविरोपणं यदमिसम्बन्धात् ॥ १७५ ॥

इस विषय में एक आश्चर्य वृत्तान्त कहती हैं जिसके कारण आज भी वह बट वेश्यावट के नाम से प्रसिद्ध है ॥१७५॥

पाटलिपुत्र का वर्णन—

अस्ति महीतलतिलक सरस्वतीकुलगृह महानगरम् ।

नाम्ना पाटलिपुत्र परिभूतपुरन्दरस्थानम् ॥ १७६ ॥

पृथ्वी का तिलक बना, विद्या का निय स्थान, अमरावती को तिरस्कृत करने वाला, पाटलिपुत्र नामक बड़ा नगर है ॥१७६॥

त्रिभुवनपुरनिष्पादनकौशलमिध पृच्छतो विरिचस्य ।

दर्शयितुं निजशिल्पं वर्णकमिव विश्वकर्मणा विहितम् ॥ १७७ ॥

ऐसा मालूम होता है कि ब्रह्मा के तीनों भुवना के नगरों के निमाण में कौशल पृच्छने पर विश्वकर्मा ने अपना शिल्प दिखाने के लिए पाटलिपुत्र को नमूने के रूप में बनाया है ॥१७७॥

अभेयोभिरनाभितमभिभूत नाभिभूतिदोषेण ।

न स्वीकृतमुपसर्गे कलिकालमलैरनालीढम् ॥ १७८ ॥

अमगलों से अनाभित, पराभव के दोष से बचा, उपद्रवों से अलग, कलिकाल के दोषों से रहित, पाटलिपुत्र है ॥१७८॥

पातालतल भोगिभिरम्भोधिर्विविधरत्नसघातैः ।

सुरसदनं विधुधगणैर्द्रविणोपचयैः पुर कुबेरस्य ॥ १७९ ॥

जिस प्रकार भोगी ( सोंप ) पाताल में रहते हैं, उसी प्रकार भोगी ( प्रेक्ष्य शाली ) यहाँ पर रहते हैं । जिस प्रकार समुद्र में रत्न हैं, उसी प्रकार पाटलि पुत्र में बहुत रत्न हैं । जिस प्रकार अमरावती में विबुध देवता समूह हैं, उसी प्रकार यहाँ पण्डित समूह है, जिस प्रकार कुबेर के पास धन राशि है, उसी प्रकार यहाँ भी धन राशि है ॥१७९॥

महिलाभिरसुरविवरकटक हि हिमाचलस्य गन्धर्वैः ।

हरिनगरं प्रतुयूषैः शमविभवैर्मुनिजनस्थानम् ॥ १८० ॥

जिस प्रकार से असुरविवर<sup>१</sup> महिलाओं से व्याप्त है, उसी प्रकार पाटलि

१—असुरविवर का वर्णन हर्षचरित में कई विभागों में है, यथा—बाण की मिथमण्डली के विषय में—असुरविवरभसनी छोदिताक्ष, चीये उद्युप्त में—असुरविवरणीव अपासृत्तानि, छठे उद्युप्त में—असुरविवरभसनिन्; तीसरे उद्युप्त में—असुरविवरमिति वातिकैः—इन्द्रादयः अपराज ने हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन [ पृष्ठ १८ ] में इस सम्बन्ध में लिखा है कि यह

पुत्र भी स्त्रियों में मरा है। जिस प्रकार हिमालय का मध्य भाग ग वनों से भरा है, उसी प्रकार यहाँ भी गर्व-नायक हैं। जिस प्रकार हरिणगर (हरिद्वार) यशपूर्ण से पूर्ण है उसी प्रकार पाटलिपुत्र भी। मुनि का स्थान बदरिकाश्रम जैसे शान्ति धनवाले मुनियों से पूर्ण है, यहाँ भी शान्तिवाले मनुष्य हैं ॥१८०॥

तिष्ठन्तु सकलशास्त्रव्यालोकनविमलपुण्ड्रयो विप्रा ।

सदसद्गणनिर्णीतौ ललना अपि निरुपभूमयो यत्र ॥ १८१ ॥

पाटलिपुत्र में सम्पूर्ण शास्त्रों के पढ़ने से विमल बुद्धि वाले ब्राह्मण रहे तो रहे, स्त्रियों भी सत् और असत् को पहचानने में कसौटी रूप हैं ॥१ ८१॥

कलिकालोदितभीत्या ऋतुदुत्तवहधूमकम्बलाचरण ।

तिष्ठन्तिभूतोऽपि वृषश्चरितैरनुमीयते यत्र ॥ १८२ ॥

कलियुग के आने के भय से यज्ञोप बहि धूम का काला आवरण ओढ़कर एकान्त में बैठी है, बहुत यश होते हैं इसका अनुमान घमाचरण से हाता है, ( यहाँ पर घमात्मा ही रहते हैं ) ॥१८२॥

अपहरति पिधातुमिव स्वकलक शशधर प्रसार्य करान् ।

रात्रौ यत्र बधूना लावण्य वदनकोशेभ्य ॥ १८३ ॥

जहाँ पर चन्द्रमा अपने कलक का दूर करने के लिए अपनी किरणों को फैलाकर स्त्रियों के मुखों से लावण्य का हरण करना चाहता है ॥१८३॥

तिमिरपटलासिताम्बरमपहरदभिसारिकाजनौषस्य ।

निजतनुकान्तिवितान वल्लभसमोगविहितये यत्र ॥ १८४ ॥

जहाँ पर अपने प्रेमी से मिलने के लिए अभिसारिकायें अपने शरीर की कान्ति द्वारा काले वस्त्र को दूर करती हैं ॥१८४॥

तांत्रिक प्रयोग है—जिसमें आदमी को गहरे गड्ढे में डूता जाया था। यह कोई तांत्रिक प्रयोग था।

असुरविवरम् भर्त्स—अतल आदि सातपातालों में असुरबगवसि भूगर्भ भाग है, वहाँ पर मदिषाओं की अधिकता है। मदिषा [ मल्लन्ते पूज्यन्ते कामिजनेन इति महेष्वा—यह धर्म या श्री त्रिपाठी जी ने टीका में दिया है। ] भागवत में कहा है कि अतल में मयपुत्र बल असुर रहता है, उसके मुक्त से स्त्रियों, कामिनी और पुण्डरी तीन स्त्रोगण उत्पन्न ॥ ५ ॥

१—छावण्य—मुक्ताफलेषु छावायास्त्रलत्वमिवान्तरा । प्रतिभाति यदङ्गुल छावण्य यदिहोष्यते ॥

२—अभिसारिका—अभिसारयते कान्तं या मन्मथवत्तद्वत् । स्वयं वामिसारत्वेवा धीरैश्चामिसारिका ॥ सा०द० ३१७९

[स] दहाममन्मथमहाज्वरवेपमाना, रोमाञ्चकण्टकितगात्रच्छतां वहन्ती ।

निःशङ्किनी वज्रति या मियस्तमाय सा नाविका निगदिता त्वमिसारिकेति ॥

यत्र नितम्बवर्तिना विचलन्नयनान्तशितशरैर्वर्णित ।

शिथिलयति पथिकलोक स्वकलत्रसमागमोत्कण्ठाम् ॥ १८५ ॥

जहाँ पर स्त्रियों के नयनों के तीक्ष्ण कणों की चोट खाया पथिक—अपनी स्त्री के समागम की उत्कण्ठा को भूल जाता है (अर्थात् जून्हा से फँस जाता है) ॥ १८५ ॥

यत्र च कुलमहिलानामल्पत्व वचसि पाणिपादे च ।

स्वच्छत्वमाशयेषु व्यालोलविशालनेत्रे च ॥ १८६ ॥

जहाँ पर कुलान ललनाओं व वचनों में, हाथ पैरों में प्रपत्ता, हृदयों में निर्मलता और विशाल नेत्रों में चञ्चलता है ॥ १८६ ॥

स्तनजघनचिबुरभारे घनता जीवेशसहनरागे च ।

कुलदेवतार्चनविधौ बलिशोभा मध्यभागे च ॥ १८७ ॥

स्तन-जघन और नेत्रों में भारीपन, जीवेश प्रमी की नैसर्गिक प्रीति में घनता स्थिरता, कुलदेवता की पूजाविधि में तथा मध्यभाग में बलिनैबद्ध भोग की शोभा है ( मध्यभाग में—बलियों हैं ) ॥ १८७ ॥

गम्भीरता स्वभावे चेतोभववाणतूष्णनाभौ च ।

विस्तीर्णता नितम्बे गुरुजनपूनानुरक्तचित्ते च ॥ १८८ ॥

स्वभाव में और कामदेव के धनुष के मध्य भाग में गम्भीरता है। नितम्बों में तथा गुरुजनों की पूजा में अनुरक्त मन में विस्तार है ॥ १८८ ॥

हरिणायतेक्षणाना विन्धित्ति, कोशहरणमस्त्रेषु ।

कुटिलत्वमलकपर्कौ, बालाना कामचेष्टित यत्र ॥ १८९ ॥

हरिण ने समान शीलों वाली स्त्रियों की श्रेष्ठता में ही शोभा है, कश का हरण (खोल का निकालना) अन्ना में है (कोई किसी का कोश घन नहीं लेता)। बालों में ही कुटिलता मिलता है ( मनुष्या में कुटिलता नहीं ), धर्मों में ही कामरथा ( ईच्छित चय ) है, ( दूसरा में कामचेष्टा नहीं है । ) ॥ १८९ ॥

सयमनमिन्द्रियाणामिनोपघातग्रहस्तमिष्यस्य ।

स्तब्धत्व तालतारौ, हारलतास्तरलसगता यस्मिन् ॥ १९० ॥

इन्द्रियों का ही नियमन किया जाता है ( किसी अपराधी का नहीं ), राहु ही सूर्य को ग्रहण करता है, (कई अपराधी पकड़ा नहीं जाता—अपराधी ही ही नहीं ) । ताड़ के बन्ध में ही लग्नता-जन्ता है, (भय विषाद से किसी व्यक्ति में बड़ता नहीं) तरल (मध्यमस्थि) हारलता में ही रहती है (किसी मनुष्य के स्वभाव में चञ्चलता नहीं ) ॥ १९० ॥

१ 'तरलता हारलता' हारलता । मध्यम म—मध्यमतास्तरलगुटकाकोटिग शब्दार्थ—दू मेघ ।

भुजगा पररन्ध्रदृश, सख्यन्ते प्रियतमाधरा यत्र ।

सूची व्यथानुमूर्तिर्नृत्याभ्यास-प्रवृत्तानाम् ॥ १६१ ॥

जहाँ पर सौँ ही दूसरे के छिद्रों को छूँते हैं (पायलिपुत्र में कोई निर्मा के दोनों का नहीं देखता है), प्रियतमाओं के अंग ही काटे जाते हैं (किसा का अपमान नहीं होता), रुच्य के संखने के आरम्भ में ही आह्निक अभिनय में पाया होता है (सह सुभाकर निसा 'को व्यथा नहीं पहुँचाइ जातो') ॥१६१॥

नतवपुरण्यतिसरला, मन्यरगमनाऽपि नर्मदा यस्मिन् ।

गुरुजनशास्त्ररताऽपि स्वभावमुग्धागनाजनता ॥ १६२ ॥

शरीर के झुके होने पर भी जहाँ पर स्त्रियाँ अतिशय सरल (साधा) हैं, नर्मदा (परिहास में-प्रसीण) होने पर भी न यरगामी हैं, जहाँ पर स्त्रियाँ गुरुजन (श्वशुर आदि) एवं शास्त्र (शासन आशा) में रत होने पर भी स्वभाव से मुग्धा (मंली और मोहग्रस्त) हैं ॥१६२॥

तस्मिन्मत्परावपूतं पुरन्दरं इव द्विजन्मना प्रवरं ।

गुरुरिव विद्यावसतिर्वसति स्म पुरन्दरो नाम्ना ॥ १६३ ॥

ऐसे पायलिपुत्र में इन्द्र के समान सैकड़ों यत्नों से पवित्र, वहस्पति का मौति विद्या का स्थान ब्राह्मणों में श्रेष्ठ पुरन्दर नाम का ब्राह्मण रहता था ॥१६३॥

धर्मात्मजस्य सत्यं, त्रिपुरारिपोरिजितकुमुदचापत्वम् ।

इरिनामिपक्वजमुषो नियतेन्द्रियता जहास य सत्ततम् ॥ १६४ ॥

मुनिष्ठिर की सत्यता को, महादेव की काम विजय को, ब्रह्मा की जितेन्द्रियता को भी जो हँसता था—इनसे भी अधिक सत्यवादी, काम विजया, जितेन्द्रिय था ॥१६४॥

न्यस्तुतवृष इति शर्वे, याचक इति कौस्तुभाभरणे ।

पीडितवसुधामुव इति कपिले, न धभूय यस्य बहुमान ॥ १६५ ॥

महादेव वृष [ नन्दी ] पर चढ़ने के लिये उसे नीचे गिराते हैं, परन्तु उसने वृष [ धर्म ] को नीचा नहीं किया, त्रिपुत्र नन्दि से याचना करने करने को याचक बनाया—इसने किसी के आग्रह हाथ नहीं धस रा, करिब रह्यो ने

१ - 'छा सूची नृत्यभेदे च व्यपनोति सधोरपि'—मेदिना, 'वत्तरा सा मवेसुचो भाविवाक्योपजीवनात्'—समीकरणाकर ।

२—मुग्धा—प्रथमावतीर्णयौवनामदनविकारा रतो वामा ।

कथिता मृदुय माने समधिकृज्जवावता मुग्धा ॥ सा द ३।१०



पृथ्वी और सगर के पुत्रों को पीड़ित किया था, इसने पृथ्वी और पुत्रों को कभी पीड़ित नहीं किया इससे भी उसको कभी अहंकार नहीं हुआ ॥१६५॥

मार्गानुगतौ लुब्धो यः प्राणिवपुर्विनाशविमुखोऽपि ।

परिहृतपरदारोऽपि स्वाकाक्षितगुरुजनप्रमद ॥ १६६ ॥

मृगों के पीछा करने में शिकारी ( पक्ष में मार्ग सदाचार के पालन में सदा लगा ) प्राणियों की हिंसा से विमुख पराई स्त्रियों का त्याग करने पर जिसने गुरुजनों की प्रसन्नता प्राप्त कर ली है ( यहा मार्ग, लुब्ध, प्रमद शब्द दो अर्थ रखते हैं । अतः विरोधाभासालंकार है ) ॥१६६॥

यस्यान्धमे महीयसि सरसीय समस्तसत्त्वनिजवसतौ ।

सञ्चरितजन्मभूमौ, विनिवारितकलिमलप्रसरे ॥ १६७ ॥

जिस प्रकार बड़े भारी तालाब में जलचर प्राणी बसते हैं उसी प्रकार इसके विपुल वश में समस्त सत्त्व गुणों का वास है, सदाचरण का जन्मस्थान है कलियुग का मल इस वश को छुआ भी नहीं है ॥१६७॥

पितृतर्पणप्रसंगे खड्गग्रहणं न शौर्यदर्पेण ।

श्रुटनमेखलिकाना बटुकजने, नो रताभिसमर्दे ॥ १६८ ॥

पितरों के तर्पण करने में गेंडे के सींग का बना पात्र हाथ में लिया जाता है (हत्या के लिये नहीं) । शौर्य के अभिमान से कोई तलवार नहीं पकड़ता । बटुकों की भेदलायें दूटती हैं, सम्भोग में मेखला ( रशना ) नहीं दूटती ॥१६८॥

अतिभेदेषु विवादो, नो रिक्थविभागमन्युना कलित ।

तेजस्विता हविर्भुजि, न शमेकरतेषु भूमिदेवेषु ॥ १६९ ॥

भुतिभेद शास्त्र विचार में ही भेद (शास्त्रार्थ) होता है, धन के बन्धार में कोई झगडा नहीं करता । अग्नि में ही तेजस्विता है, विनय प्रधान ब्राह्मणों में तेजस्विता क्रोध नहीं है ॥१६९॥

जरतामेव सखलन, जपतामेवाधरस्फुरणम् ।

यजतामेव समिदुचिरेणाजिन एव कृष्णसपर्क ॥२००॥

शुद्धापे के कारण ही लटखडाना होता है, ( शास्त्र या धर्म में च्युति नहीं होती ), जप करने में ही अक्षर आठ हिलते हैं ( क्रोध से होठ नहीं हिलते ) ध्वन करने में ही समिधात्रा की इच्छा होती है ( समित्-युद्ध में किसी की रुचि नहीं ), मृग चर्म में ही कालापन रहता है ( मनुष्यों के मन में कालापन नहीं है ) ॥२००॥

तस्याभूत् सकलकलोद्भासितपक्षद्वयस्य सुत एक ।

नाम्ना सुन्दरसेन कच इव वचसामधीशस्य ॥२०१॥

उस पुरंदर को अपनी सम्पूर्ण बलाआ से ( विद्याओं से ६४ बलाओं से ) माता

एव पिता के दोनों कुलों को प्रकाशित करने वाला, सुन्दरसेन नाम का एक लड़का था, जिस प्रकार कि बृहस्पति का अनेला कच था ॥२०१॥

पशुपतिनयनहुताशनमस्मितमवधार्य यं वपुष्मन्तम् ।

अपरमिव कुसुमचार्पं रतिरतये निर्ममे धाता ॥ २०२ ॥

महादेव की श्रौंखली ज्वला से मस्मीभूत कामदेव को जानकर विधाता ने कामदेव की पत्नी-रति के विलास के लिये मानों दूसरा देहधारी कामदेव ही बनाया था ॥२०२॥

तिष्ठन्तु तावदन्याः कुलललना यस्य रूपमवलोक्य ।

साऽपि महामुनिदयिता कृच्छ्रेण ररक्ष चारित्रम् ॥ २०३ ॥

जिसके रूप को देखकर यशिष्ठ की पत्नी अकम्प्यती, अत्रि की पत्नी अनुसूया भी कठिनाई से अपने चरित्र को रक्षा कर पाती हैं, दूसरी कुल ललनाओं की तो बात ही क्या है ॥२०३॥

कलपौतकलकशोभां विभ्राणं यस्य। पृथुतरं बहः ।

दृष्ट्वा, चिराय लक्ष्मीर्हरिहृदये दुःस्थितिं मेने ॥ २०४ ॥

जिसके स्वर्ण पट के समान सुन्दर यक्षत्पल की देखकर लक्ष्मी भी विष्णु के हृदय में अपना रहना दुर्गति ही मानती है ॥२०४॥

कथमीहयदि न कृतः शरिशकलैरयः कृतं कथं व्ययकः ।

इत्य यमीक्षमाणो निर्णयमगमन्न कामिनीसार्थः ॥ २०५ ॥

ब्रह्मा ने इसका शरीर चद्रमा के टुकड़ों से बनाया है, यदि उनसे बनाया है, तो यह कैसे पीड़ा बनक है ( मदन पीड़ा बनक है ), उसको देखकर स्त्रियाँ इस विषय में कोई निर्णय नहीं कर पाती ॥२०५॥

यो जप्ताह हिमांशोः प्रसन्नमूर्तित्वमचलतः स्थैर्यम् ।

जलधरत उन्नतत्वं, गाम्भीर्यं वादसां पत्युः ॥ २०६ ॥

उसने! चन्द्रमा से माधुर्य, पर्यंत से स्थिरता, मेघ से उन्नतत्व, समुद्र से गम्भीरता प्राप्त की थी ॥२०६॥

यो विनयस्य निवासो, वेदाध्यस्याश्रयः स्थितेः स्थानम् ।

प्रियवाचामायतनं, निवेतनं साधुचरितस्य ॥ २०७ ॥

१- स्थिरता- जो दुःख-सुख में, शोक-दर्द में समान बुद्धि रहना, जैसा कि गीता में कहा है- दुःखेष्वनुद्विग्नमना सुखेषु विमग्नस्थितः ।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ गीता २।१६

धर्माय कामसंयुताः पुण्याः कामसमुत्पिपासाः ।

व्यवसायाद्वचनं स्वैर्यमित्यभिसंज्ञितम् ॥ भरतनाट्य० २२।३५

आमृण्यथ तमूचे वचनमिदं सुन्दरः सुहृन्मुख्यम् ।

शोभनमेतद्गीतं गुणपालित साधुनानेन ॥ २१३ ॥

इस आर्ग्य को सुन्दर ने अपने प्रधान मित्र को कहा—“हे गुणपालित !  
इस भले आदमी ने अच्छा ही कहा” ॥२१३॥

साधूनामाचरितं सलचेष्टां विविधलोकहेवाकान् ।

नर्मचिदग्नैर्विहितं कुलटाजनवक्रकथितानि ॥ २१४ ॥

गुरगूढशास्त्रतत्त्वं विटवृत्तं धूर्तवचनोपायान् ।

वारिधिपरित्तां पृथ्वीं जानाति परिभ्रमन् पुरुष ॥ २१५ ॥

( युगलकम् )

सजनों का आचरण, दुष्टा का व्यवहार, मनुष्यों की भिन्न भिन्न रुचि,  
चतुर पुरुषों से किया परिहास, कुलटाओं के मुत से निरुले व्यंग, गुरु गम्भीर  
शास्त्र विषय, कामशास्त्र के जानने वालों का चरित, धूर्तों के ठगने के उपाय, ये  
सब बातें समुद्र से गिरी सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूम कर ही मनुष्य जान सकता  
है ॥२१४-२१५॥

अत उज्जित्य गृहस्थितिसुरलेशं विविधलाभपरिणामे ।

स्थापय गमनारम्भे वयस्य हृदयं मया सहितः ॥ २१६ ॥

इसलिये हे मित्र ! घर के मुल को छोड़कर नाना प्रकार के लाभ को देने  
वाली यात्रा पर मेरे साथ चलने के लिये तैय्यार हो आओ ॥२१६॥

इत्थं निगदितवन्तं सुहृदुत्तरलाभलालासहमानम् ।

ऊचे सुन्दरसेनं लज्जित इव सहचरो वचनम् ॥ २१७ ॥

ऐसा कहने पर मित्र के उत्तर की प्रतीक्षा करनेवाले सुन्दरसेन को मानो  
लज्जित होते हुए गुणपालित ने कहा ॥२१७॥

अभ्यर्थनानुबन्धो लज्जाकर एव मादृशा किन्तु ।

आकर्ण्य कथयाम. पयिकानां यानि दुःखानि ॥ २१८ ॥

तुम मेरे जैसे लोगों से प्रार्थना कर रहे हो यह मेरे लिये शर्म की वस्तु है ।  
किर मी यात्रिया को जो कष्ट होते हैं, उनको तुम्हें सुनाता हूँ ॥२१८॥

कर्पटकाधृतमूर्तिर्दूराध्वपरिश्रमावसितशक्तिः ।

पांसूत्करधूसरितो दिनावसाने प्रतिभ्रयाकांक्षी ॥ २१९ ॥

मातर्भगिनि दयां कुरु, मामैवं निष्ठुराभव, तवापि ।

कार्यवशेन गृहेभ्यो निर्यान्ति भ्रातरश्च पुत्राश्च ॥ २२० ॥

किं वयमुत्पाठ्य गृहं प्रातर्गन्तार ईदृगेव सताम् ।

भवति निवासो यस्मिन्निज इव पयिका. प्रयान्ति विश्रामम् ॥२२१॥

चियडो में लिपटा, मुसाफरी के कारण सारी शक्ति नष्ट होने से थका, धूल के ढेर से भरा, सायकाल में आश्रय की चाह से ( घर के द्वार पर जा कर कहता है ), हे माता, या हे बहिन ! इस प्रकार से कठोर न पनी । तुम्हारे भी भाई लडके कार्य के कारण घर से बाहर जाते हैं । क्या हम घर उठाकर सबेरे भाग जायेंगे ? सज्जनों के घर तो ऐसे होते हैं, जिनको यानी अपना ही घर मानकर विभाम करते हैं ॥२१६-२२१॥

अत्र रजनीं नयामो यथाकथंचित् तवाश्रमे मात ।

अस्त गतो विवस्वान्, वद सप्रति कुत्र गच्छाम ॥ २२२ ॥

हे माता ! तुम्हारे घर में जैसे तैसे एक रात काट लेंगे, सूर्य छिप गया है, बोल, अब कहाँ जायें ? ॥२२२॥

इति बहुविधदीनवचा प्रतिगेहद्वारदेशमधितिष्ठन् ।

निर्मत्स्यते घराको गृहिणीभिरिव यदन्तीभि ॥ २२३ ॥

( कुलकम् )

इस प्रकार नाना प्रकार की दीनता के साथ प्रत्येक दरवाजे पर मौख मोंगते हुए विचारे को गृहणियों यह कहते हुए अपमानित करती हैं ॥२२३॥

“न स्थित इह गेहपति”, किं रटसि धृया, प्रयाहि देवकुलम् ।

कथितेऽपि नापगच्छति, पश्य मनुष्यस्य निर्वन्धम्” ॥ २२४ ॥

“घर का स्वामी यहाँ नहीं है, ध्यर्थ मैं क्यों चिन्ता रहे हो, मन्दिर में जाओ । कहने पर भी नहीं जाता, देखो तो कितना जिद्दी है” ॥२२४॥

अथ यदि कथंचिदपरं पुन पुनर्याचितो गृहस्यामी ।

निदिशति सावधीरणमत्र स्वपिहीति जीर्णगृहकोणे ॥ २२५ ॥

तत्र कलहायमाना तिष्ठति गृहिणी विभावरी सकलाम् ।

अज्ञाताय किमर्थं वासो दत्तस्त्वयेति सह भर्त्रा ॥ २२६ ॥

यदि किसी प्रकार बार-बार प्रार्थना करने पर दूसरा गृहस्यामी अपमान के साथ कह देता है कि इस पुराने छप्पर के एक कोने में पड़े रहो, तब उनकी स्त्री सारी रात उनसे झगडा करती रहती है, कहती है कि बिना जाने हुए को तुमने क्यों टिका लिया ॥२२५-२२६॥

ईदृगय सरलात्मा किं कुरुषे भगिनि तावको भर्ता ।

स्थास्यसि गेहेऽवहिता, भ्रमन्ति खलु वचका एवम् ॥ २२७ ॥

इति भाजनादियाच्या बुद्धौ विनिघाय निकटवर्तिनो गेहात् ।

नारीजन समेत्य ब्रूते तामाप्तभावेन ॥ २२८ ॥ ( युग्मम् )

पास वाले घरों से बर्त्तन आदि मोंगने के विचार से जब बह जाती है, तब

स्त्रियों इकट्ठी होकर बड़े विश्वास के साथ उससे कहती हैं, हे नहिन ! तुम्हारा पति बहुत सीधा आदमी है, तू क्या करेगी—घर में साथपान होकर रहना, इसी रूप में दग घूमते हैं ॥२२७-२२८॥

गृहशतमधिकमदित्वा कलमकुलत्यागुचणमसूरादि ।

एकोभूतं भोक्ता क्षुधीपतप्तोऽध्वगो भैक्षम् ॥ २२९ ॥

भूल से बेचैन बना यात्री बहुत से घरों से मोंगफर कलम ( शाली धान्य), कुलथी, कगनी, चना, मसूर इकट्ठा करके खाता है ॥२२९॥

परचरामशानं, वसुधा शयनीयं, सुरनिकेतनं सद्यः ।

पथिकस्य विधिः कृतवानुपधानकमिष्टकारणदम् ॥ २३० ॥

मात्री का भोजन दूसरे के अर्चन रहता है, सोने के लिये पृथ्वी, मन्दिर पर होता है, सिपहने का काम इंट से चलता है ॥२३०॥

इति निगदितवति तस्मिन्सुन्दरसेनस्य चोत्तरावसरे ।

इयमुपगीता गीतिः केनापि कथाप्रसङ्गेन ॥ २३१ ॥

गुणपालक के इतना कहने पर सुन्दरसेन के उत्तर देने के समय किसी ने इस प्रसंग में यह गीति गाई ॥२३१॥

“निजवरमयनं सुरगृहमुर्वातलमविमनोहरं शयनम् ।

कदशनममृतमभीप्सितकार्यरुनिविष्टचेतसा पुंस्वाम्” ॥ २३२ ॥

“अभिलषित कार्यों में चित्त लगाये हुए पुरुषों के लिये देवालय में रहना अपने घर से अच्छा है, पृथ्वी पर सोना उत्तम है, कुत्सित भोजन भी अमृत होता है” ॥२३२॥

तां च श्रुत्वा सुहृदं पौरन्दरिरिदमुवाच प्रतुष्टः ।

अम हृदयगतं प्रकटितमेतेन, सहेव अवतु गच्छामः ॥ २३३ ॥

इसकी सुनकर प्रसन्न होकर सुन्दरसेन ने मित्र से कहा—इसने मेरे हृदय की बात कही है, साथ ही चलेंगे ॥२३३॥

अथ सहचरद्वितीयः क्लेशसमुद्रावतरणकृतचित्तः ।

निरगात्सुन्दरसेनः कुसुमपुरादविदितः पित्रा ॥ २३४ ॥

सब प्रकार के दुःखों के उठाने का निश्चय करके, पिता को बिना बताये सुन्दरसेन मित्र के साथ अकेला कुसुमपुर से निकल गया ॥२३४॥

पर्यन् विदग्धगोष्ठीरभ्यस्यन्नायुधानि विविधानि ।  
 शास्त्रार्थानधिगच्छन् विलोकयन् कौतुकान्यनेकानि ॥ २३५ ॥  
 जानन् पत्रच्छेदनमालेरय सिक्थपुस्तककर्माणि ।  
 नृत्य गीतोपचित तन्त्रीमुरजादिवाद्यभेदाश्च ॥ २३६ ॥  
 बुध्यन् वचकभगीर्विटकुलटानर्मवक्त्रकथितानि ।  
 वभ्राम सुदृत्सहित सुन्दरसनो महीमखिलाम् ॥ २३७ ॥  
 ( विशेषम् )

विद्वानों की गोष्ठी को देखते हुए, नाना प्रकार के शास्त्रों का अभ्यास करते हुए शास्त्रों के अभिप्राय को जानते हुए, बहुत से कौतुक आश्चर्यों को देखते हुए, पत्रच्छेद कला, आलेख्य चित्रकर्म, मोम के मोडल बनाना, नृत्य, गाना, तन्त्री मुरज आदि वाद्यों को बजाना, ठगों के इशारे, विट कुलटा के हास्य-परिहास-जग आदि को सीखते हुए सुन्दरसन भिन्न-रूप साथ सम्पूर्ण प्रण्वी भूमा <sup>१</sup> ॥ २३५-२३७ ॥

अथ विदितसकलशास्त्रो विज्ञाताशेषजनसमाचार ।

निजगृहगमनाकाक्षी स शिलोच्चयमर्बुद प्राप ॥ २३८ ॥

सम्पूर्ण शास्त्र जानकर सम्पूर्ण मनुष्यों के आचार-व्यवहार को समझ कर घर लौटने की इच्छा होने पर अर्बुताचल (आबू पर्वत) पर पहुँचा ॥ २३८ ॥

सत्पुष्ट्येशदर्शनलोलमति सुन्दर परिज्ञाय ।

गुणपालितो वभाषे विलोक्यतामद्रिराज इति ॥ २३९ ॥

अपने मित्र सुन्दरसेन का इच्छा आबू पर्वत को देखने की जान कर गुणपालित ने कहा—कि इस पर्वतराज को देखिये ॥ २३९ ॥

‘एष सुत सानुमत स्यन्दच्छीताच्छसलिलसपन्न ।

लोकानुरुम्पयेव प्रालेयमहीभृता मरौ न्यस्त ॥ २४० ॥

इस अर्बुताचल की मनुष्यों पर टपा करके हिमालय ने मरुभूमि में अपने पुत्र रूप में बनाया है इसमें से निमल शीतल जल के स्रोत बह रहे हैं ॥ २४० ॥

शिशिरकरकान्तमीलि कटकस्थितपवनभोजन सगुह ।

विद्याधरोपसेव्यो विभर्ति लक्ष्मीमय शम्भो ॥ २४१ ॥

यह अर्बुताचल शम्भु की कान्ति का धारण करता है जिस प्रकार महादेव जी का मस्तक चन्द्रमा से शोभित है, उसी प्रकार इसने शिखर भा चन्द्रकान्त मणिया से शोभित है । जिस प्रकार से महादेव जी सापा का कटक पहा धारण

१ पत्र-छेद, आलेख्य, सिक्थ कर्म आदि कलाएँ वास्तविक में मिली हैं ।

किये हुए हैं, उसी प्रकार इस पर्वत के मध्य भाग (कटक) में वायु का सेवन करने वाले तपस्वी रहते हैं। जिस प्रकार शिव के साथ गुह्यार्चिक हैं, उसी प्रकार इसमें गुहायें हैं, जिस प्रकार शिव विद्याधर से घिरे हैं, उसी प्रकार इसमें भी विद्याधर-देवयोनि विशेष (अथवा गुप्ति आँबन आदि से सिद्ध बने मनुष्य) रहते हैं ॥ २४१ ॥

अत्रतरुशिरसरसगतसुमनसइति जातचित्मयो मन्ये ।

अभिलषति समुच्चेतु तारा निशि मुग्धकामिनीलोक ॥ २४२ ॥

इस पर्वत के ऊँचे ऊँचे वृक्षों के शिरो भाग पर चमकते तारा को समूह देखकर मुग्ध स्त्रियों आश्चर्यपूर्ण होकर रात में उनको पूज्य समझ कर एकत्रित करना चाहती हैं ॥ २४२ ॥

आश्चर्यं यदुपान्ते तिष्ठन्त्येतस्य सप्त मुनयोऽपि ।

अथवा कस्यानर्थं न करोति समुन्नतिर्महताम् ॥ २४३ ॥

यह आश्चर्य है कि इस पर्वत के पार्श्वभाग में सप्तर्षि भी रहते हैं अथवा ठीक है, पर्वत का उन्नति निश्चय करना और नहीं चाहती ? उनको खींचती है। (अर्जुनचल के पास में ध्रुव तारे के पास रहने वाला सप्तर्षि मण्डल है) ॥ २४३ ॥

अवगम्य निरघलम्बनमम्बरमार्गं पतगतुरगाणाम् ।

अयमवनिघरो मन्ये विश्रान्त्यै वेधसा निहित ॥ २४४ ॥

सूर्य के घाड़ी के लिये आकाशमार्ग में कार्य भी आश्रय स्थान न होने से ब्रह्मा ने उनका विश्रान्ति के लिये यह पर्वत बनाया है, ऐसा मैं मानता हूँ ॥ २४४ ॥

इममाश्रित्य हिमाशोरोपधय सन्निकर्षमुपयाता ।

प्रत्यासत्तिं प्रमुणा प्रायोऽनुमाहकवशेन ॥ २४५ ॥

इस पर्वत का आश्रय करके आपधियों चंद्रमा के समीप में आ गई, प्रभु की अनुकम्पा होने से ही शान्ति मिलता है ॥ २४५ ॥

सेकुमिवाशाकरिणो विसृजत्ययमवनिघरणपरिनिघ्नान् ।

निर्भरसलिलकण्ठीधान्, भवति हि सौहार्दमेककार्याणाम् ॥ २४६ ॥

पृथ्वा उठाने के कारण से यह निर्मल होने के जल समूहों का इस पर्वत पर बरसा रहे हैं। एक समान कार्य करने वालों में मित्रता हो जाती है।

१ गीता में—पुण्यामि चौकपी सर्वा साजोभूवा रसात्मक ॥ गीता १२।१३॥

आपधयं खवदन्ते सोमेन सऽगच्छा ।

यस्मै कृणाति ब्राह्मणस्त राजन् पर्याप्तसि ॥

( यह पर्वत और विष्णु मृष्वी-के धारण करने के लिये बनाये गये हैं —दोनों में कार्य की समानता होने से मित्रता होगी ) पर्वत पर-चारों ओर भरने हैं ॥२४६॥

हारीतादितशोभो मुदितशुको व्यासरमणीय ।

विश्रान्तभरद्वाज समतामयमेति मुनिनिवासस्य ॥२४७॥

यह श्रुत्वाचल मुनियों के आश्रम के समान है, जिस प्रकार मुनि आश्रम में हारीत, शुक्रदेव, व्यास और भरद्वाज रहते हैं, उसी प्रकार यह पर्वत भी हारीत [ हरियाल हारील ], यक्षों से शोभित है तोते प्रसन्न हैं, व्यास [ क्रौञ्चों ? ] से सुन्दर बना है, भरद्वाज पक्षी इस पर विश्राम करते हैं ॥ २४७ ॥

अस्मिन्नि सगा अपि परलोकप्राप्त्युपायकृतयत्ना ।

गन्धयहभोजना अपि न हिंसका, फलमुजोऽपि न प्लवगा ॥२४८॥

वायु का भोजन करने वाले [ मुनि ] साप की भाँति हिंसक नहीं। फल का भोजन करने पर भी [ मुनि ] बन्दरों की भाँति नहीं हैं। इस पर्वत पर मुनि लोग आसक्ति रहित बन कर परलोक की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते हैं ॥ २४८ ॥

शुभकर्मकरता अपि पटकर्मण्या यता अपि स्ववशा ।

अनभिमतरीद्रचरिता शिषप्रिया अपि, वसन्ति शमनिरता ॥२४९॥

अष्ट जनक अकेले शुभकर्म में ही निरत, अध्ययन-अध्यापन यजन याजन दान प्रतिग्रह रूपी छः कर्मों में लगे, वितेन्द्रिय-सयमी, रीद्र भयानक आचरण को पसन्द न करने वाले शिष के प्रिय शम प्रधान-मुनि जहाँ रहते हैं ॥२४९॥

मूर्तिरिव शिशिररश्मेर्हरिणवती, सप्तपत्रकृतशोभा ।

सरणिरिव चण्डभास, पलाशिनी यातुधानजायेव ॥ २५० ॥

जिस प्रकार चन्द्रमा हरिण वाला है, उसी प्रकार यहाँ पर भी हरिण समूह है, जिस प्रकार सूर्य की शोभा सात घोड़ों से है, उसी प्रकार आबू पर सतवन के वृक्ष हैं। जिस प्रकार सूर्य का मार्ग है, उसी प्रकार यहाँ पर भी मार्ग धने हुए हैं, जिस प्रकार राजसों की पत्नी मास खाती है, उसी प्रकार से यहाँ पर पलाश-दाक के वृक्ष और मासपणा है ॥ २५० ॥

सोत्कण्ठेव समदना, वासकसज्जेव कृततिलकशोभा ।

बहुहरिपीलुसनाथा नरनाथद्वारभूमिरिव ॥ २५१ ॥

उत्कण्ठा नायिका की भाँति यहाँ पर भवन है [ उत्कण्ठा नायिका के काम और यहाँ पर भूत हैं ], जिस प्रकार से वासकसज्जा नायिका माये पर तिलक रचती है, उसी प्रकार तिलक वृक्षा से आबू शोभित है। जिस प्रकार राजा की द्वार भूमि बहुत से हरि ( घोड़ों ) से सजाय-रहती है, उसी प्रकार यहाँ भी



बहुत से हरि ( सिंह या क्रन्दर ) और भील ( मनोय ) के वृक्ष हैं । जिस प्रकार राजद्वार में हाथी रहते हैं, वैसे वृक्ष पर भी हाथी हैं ॥ २५१ ॥

अर्जुनवाणप्रातः कुरुनाथवरुयिनीव सन्ध्या ॥

अक्षतहस्रोपचिता लक्ष्मीरिव गगनदेशस्थ ॥ २५२ ॥

जिस प्रकार अर्जुन के वाण समूहों से दुर्योधन की सेना द्रव गई थी, उसी प्रकार यह पर्वत भी अर्जुन वृक्ष, वाण ( भिखारी ) वृक्षों से ढँपा है । आकाश की लक्ष्मी जैसे हजारों ऋक्षों से ( नक्षत्रों से ) भरी रहती है, उसी प्रकार आबू हजारों ऋक्षों से ( भालुओं से ) भरा है ॥ २५२ ॥

ध्यजिनीव दानयानां मिष्टसमधिष्ठिता, त्रियामेव ।

उद्यातरोहिणीका, रम्येयमुपत्यजा भाति ॥ २५३ ॥

( संशानितम् )

जिसप्रकार से राजसों की सेना में मिष्ट-राक्षस है, उसी प्रकार यहाँ पर मिष्टक ( आम के वृक्ष ) हैं, जिस प्रकार रात्रि में रोहिणी नक्षत्र निरलता है उसीप्रकार यहाँ पर रोहिणी (मासरोहिणी श्रोत्रिणी) उत्पन्न हुई है, यह उपत्यका; [ पर्वत के पास की भूमि ] अति सुन्दर है ॥ २५३ ॥

इति दर्शयति वयस्ये, सुन्दरसेने च पश्यति प्रीत्या ।

स्वप्रस्तावोपगता गीतिरियं केनचिद्वीता ॥ २५४ ॥

इस प्रकार मिन के दिखाने पर एव सुन्दरसेन के प्रीति से उपत्यका को देखते हुए—प्रसंग वश निरसी ने स्वयं ही यह गीति गाई ॥ २५४ ॥

“अतिशयितनाकष्टं पृष्ठ ये नार्युदस्य पश्यन्ति ।

पहुयिषयपरिभ्रमणं मन्ये क्लेशाय केवलं तेषाम्” ॥ २५५ ॥

१—वल्कण्डिता — विविचकुमुममाध्यामपिठात्री मनोज्ञा,

सुस्तरसविबोला सानुरागा स्वकान्ते ।

निवसति चटुब्बाशा वामगेहे चिरं या,

वरकविभिरिहोक्ता सा क्लिष्टोक्कण्डितेति ॥ अनंगरंग १०।१९

(ख) श्रामन्तुकृताचिच्छोऽपि देवान्नायाति यत्प्रिया ।

वृद्धनागमद्रु सार्चा विरहोक्कण्डिता तु सा ॥ सा. द. ३।८६

पासकसज्जा—वनिता शुभवासवेशमनि मृदुशय्यामविजासनी निशि ।

पतिमार्गचिरार्पितेक्ष्णा कथिता चापकसज्जिता कुवेः ॥

(ग) कुस्ने मण्डनं वस्था. सन्निधेने वासवेशमनि ।

सा तु चापकसज्जा स्याद्विदितप्रियसज्जिता ॥ सा. द. ३।८६

स्वर्ग की भूमि को भी तिरस्कृत करने वाले अर्बुदाचल के उपरी भाग को जो नहीं देखते, उनका बहुत से देशों में घूमना केवल कष्ट ने लिये ही है ॥२५५॥

आकर्ण्य च स वभाषे, महात्मनाऽनेन युक्तमुपगोतम् ।

शिखरिशिर पश्यामो वयस्य रम्य समास्त्र ॥ २५६ ॥

इसको सुनकर सुन्दरसेन ने कहा कि “इम महात्मा ने ठीक ही कहा है, हे मित्र ! पर्वत के शिखर पर चढ़कर इसकी सुन्दरता को देखें” ॥२५६॥

अथ गिरिधरमारूढो विलोकयन् विविधविवुधभयनानि ।

धापीरुद्यानभुज सरासि सरितश्चाराविस्मेर ॥ २५७ ॥

इसने पीछे पर्वत पर चढ़कर बहुत से देवमंदिरों को बापी ( बावड़ी ), उद्यान, तालाब और नदिया को आश्चर्य से देखते हुए घूमने लगा ॥२५७॥

अचिराभामिव विषना, ज्योत्स्नामिव कुमुदबन्धुना विरुलाम् ।

रतिमिव मन्मथरहिता, श्रियमिव हरिवदस पतिताम् ॥ २५८ ॥

हस्तोच्चय विधातु, सार सकलस्य जन्तुजातस्य ।

दृष्टान्त रम्याणां, शस्त्र सकल्पजन्मनो जैत्रम् ॥ २५९ ॥

विकसितकुमुदसमृद्धि, शृगाररसापर्णककलहसीम् ।

लोलापल्लववल्ली, प्रतिनामवधानवर्मणा भल्लीम् ॥ २६० ॥

विचरन्तुपवनमण्डपपुष्पप्रकराभिरामभूपृष्ठे ।

रममाणा सह सरया ललनामालोकयामास ॥ २६१ ॥ (कुलकम्)

निगाह के सामने पड़ी नायिका का वर्णन—मेघ रहित अचिराभा ( विद्युत् ) के समान, चंद्रमा से बिजुड़ी ज्योत्स्ना के समान, कामदेव से प्रथक् हुई रति के समान, विष्णु के वक्ष से गिरी लक्ष्मी की भाँति, ब्रह्मा के हस्त कौशल का नमूना, सम्पूर्ण प्राणियों की सार भूत, सुन्दरता का उदाहरण, कामदेव का विजय प्राप्त करने का शस्त्र, खिले फूलों की समृद्धि-वसन्त ऋतु, शृगाररस रूपी नदी की कलहसी, नाना प्रकार के पल्लवों वाली लीलावती लता, तपस्वियों के समाधि रूपी कवच को तोड़ने में भाला, फूलों से सुन्दर उपवन मण्डप में घूमती एवं सखियों के साथ खेलती ललना नायिका को देखा ॥२५८-२६१॥

अवलोकयतस्तस्य स्मरसायकवेध्यतामुपगतस्य ।

इदमभवन्मनसि चिर विम्वयमाराभिभूयमानस्य ॥ २६२ ॥

नायिका को देखते हुए कामदेव के बाण से विद्ध होने के कारण उसके मन में बहुत अधिक आश्चर्य हुआ ॥२६२॥

क्वेदं रलु विश्वसृज. कौशलमत्यद्भुतं जातम् ।

येन विरुद्धानामपि घटितैकत्र स्थितिस्तथा हीयम् ॥ २६३ ॥

ब्रह्मा का यह श्रुत कौशल कहाँसे उत्पन्न हो गया, जिसमें विरोधि वस्तुओं का भी एकत्र सकलन मुन्दस्ता उत्पन्न करता है ॥ २६३ ॥

ललितवपुर्निर्दोषा स्फुरदुज्ज्वलतारकाभिरामा च ।

निर्वाच्यवदनकमला जितवीणा कण्ठितवाणी च ॥ २६४ ॥

प्रकटितविग्रहसंस्थितिरतिशोभाघटितसन्धिवन्धा च ।

उन्नतपयोधराह्या शरदिन्दुफरावदाता च ॥ २६५ ॥

अभिमतसुगतावस्थितिरभिनन्दितचरणयुगलरचना च ।

अतिविपुलजपनवेशा विभ्यस्तशरीरविहितशोभा च ॥ २६६ ॥

सुन्दर शरीर, निर्दोष, हिलती हुई निर्मल आँखों की पुतली से मनोहर (चंचल आँखों वाली), श्रवणीय मुख शोभा, वीणा का भी जीतने वाली मधुर वाणी, उत्तम शरीर विन्यास, सुन्दर गठन, अभिराम सन्धिवन्ध (अवयव तश्लेष), भारी स्तन, शरद् शत्रु ने चन्द्रमा के समान शुभ्रता, सुन्दर चलना और खड़ा होना, अभिनन्दित चरण युगल, अति विपुल जपन प्रदेश, नष्ट शरीर [ कामदेव ] से बनाई शरीर शोभा, वाली हारलता को देखकर सुन्दरसेन में प्रथम अनुराग उत्पन्न हुआ<sup>१</sup> ॥ २६४-२६६ ॥

आविर्भवदनुरागे तस्मिन्नथ यलितलोचना सहसा ।

सापि यभूव मृगाक्षी हस्तगता कुसुमचापस्य ॥ २६७ ॥

इसके पीछे सुन्दर आँखोंवाली, मृगाक्षी हारलता भी सहसा कामदेव के बशीभूत हो गई<sup>२</sup> ॥ २६७ ॥

तरुमूलमाश्रिताया विस्मृतसकलान्यकर्मण सपदि ।

तस्या गात्रलतायामंकुरितं सात्त्विकैर्भाविः ॥ २६८ ॥

तुरन्त ही वह वृक्ष के नीचे बैठ गई, सब कार्यों का करना भूल गई, उसके शरीर में सात्त्विक भाव उत्पन्न हो गये<sup>३</sup> ॥ २६८ ॥

१. इन तीन श्लोकों में विरोधाभास अलंकार है ।

२. यहाँ पर कवि ने नायक में पहले कामवेग दिखाया है, परन्तु कश्चित्सिद्धि से प्रथम नायिका में अनुराग कहा जाता है—

एवं नारी भवेद्वक्ता पुमान् परचातुर्दिक्षितैः ॥

३. काम के सात्त्विक भाव—

रसमम स्नेहोऽयं रोमाञ्च रश्मिर्गोच्य वेपथुः ।

वैवर्ण्यमष्टु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विका मताः ॥ सा. द. ३।१३२

सत्त्व-भन में मत्त्वगुण से उत्पन्न होनेवाले विकार सात्त्विक-भाव हैं ।

सेवोपयनसमृद्धिस्तस्मिन्नेव क्षणे स्मर स्मृत्या ।

ता व्यथयितुमारेभे, प्रभोर्हि कृत्य करोति खलु सर्व ॥ २६६ ॥

यसत से उत्पन्न उपवन का ऐश्वर्य इसने शरीर में (हारलता का यौवन ही वसन्त कृत उपवन की शोभा थी), अपने प्रभु [कामदेव] को स्मरण करके उसको पीड़ित करने लगा, क्योंकि सत्र कोइ अपने स्वामी की आशा का पालन करता है ॥ २६६ ॥

गात्रशिरासन्धिभ्यः प्रस्वेदजल विनिर्ययी तस्या ।

अन्तर्ज्वलितमनोभयहृन्वभुजा दह्यमानेभ्यः ॥ २७० ॥

अदर जलती हुई कामाग्नि से जलते हुए उसने गात्र शिरा-संधियों से प्रस्वेद पसीना जल निक्कलने लगा ॥ २७० ॥

कुसुमशरजालपतिता मुहुर्मुहुर्विदधती विवृत्तानि ।

अनिमेष पश्यन्तोमस्तयधूमनुचकार सा तन्वी ॥ २७१ ॥

कामदेव के जाल में पसी हारलता मछली की भाँति करवट खलती थी, मछली के समान निरनिमेष दृष्टि अपलक आँख से वह देख रही थी ॥ २७१ ॥

स्तब्धतनु सोत्कम्पा पुलकयती स्वेदिनीं सनि श्वासाम् ।

विदधे तामसमशर, व्रीडति हि शठो त्रिशिष्टमासाद्य ॥ २७२ ॥

काम के कारण उसका शरीर ढक बन गया, उसमें उत्कण्ठा उत्पन्न हो गई, शरीर रोमाञ्चित हो गया, पसीना बहने लगा, गहरे लम्बे श्वास लेने लगी । धूर्त व्यक्ति-विशेष को प्राप्त करके इच्छानुसार खेलता है ॥ २७२ ॥

उच्छ्वासैरुल्लसन् कुचयुगले, सौष्ठवं विलासानाम् ।

अभिलपितेन, प्रेम्णा स्निग्धत्वं चक्षुषोर्मनोहारि ॥ २७३ ॥

अनुरक्त्या वदनरुचिं, वचसि च गमने च साध्यसत्प्रलनम् ।

तस्या भदनं कुर्वन्नुपनिन्ये चारुतामवधिम् ॥ २७४ ॥ (युग्मम्)

उच्छ्वासों से स्तन ऊपर उठने लगे, अभिलाषा-चाह से विलासों में सौष्ठव आगया, प्रेम के कारण आँखों में स्नेह तथा मुदरता आ गई । अनुरक्ति से चेहरे की कान्ति बढ़ गई, भय के कारण बोलने में और चलने में लड़खड़ाना प्रारम्भ हो गया, इस प्रकार से कामदेव ने उसकी मुन्दरता सीमा तक पहुँचा दी ॥ २७३-७४ ॥

१ माघ ने कहा है—'प्रभुचित्तमेव हि जनाऽनुवर्तते ।' शिशुपाजवध १५।४१

२ विलास—यानस्यानासनान्दीनो मुखनेत्रादिकर्मणाम् ।

विशेषस्तु विलास स्यादिष्टसदृशनादिना ॥ सा० दु० ३।९९९

विदधति—आकुञ्चितकपोलाक्ष सस्वनानस्वन तथा ।

प्रस्तावोत्थ सानुरागमाहुविदासत बुधा ॥

पार्वगतोऽपि प्रेयसि कामशरास्तारताडयमानोऽपि ।

न शशाङ्क साऽमिधातुं चित्तगतं प्रणयभंगतो भीता ॥ २७५ ॥

मेरे कहने से कहीं प्रणय भंग न हो जाये, इस भय से कामदेव के बाणों से पीड़ित होते हुए एव प्रेमी के पास में होने पर भी उसने अपने मन की बात नहीं कही ॥ २७५ ॥

अथ विदितचित्तवृत्तिः सक्तदृशं प्रियतमे समाकृत्य ।

मदनेन दह्यमानां विहसितविश्रवं जगाद् तामालोक्य ॥ २७६ ॥

इसने पीछे प्रियतम में निगाह लगाये; कामदेव से जलती हारलता की मनो-दशा को समझकर, ईसती हुई सखी ने हारलता को खींचकर स्पष्ट रूप में पहा ॥ २७६ ॥

अयि हारलते संहर हरहुंरुतिदग्धदेहसंज्ञोभम् ।

सद्भावजाऽनुरक्तिर्न हि पर्य्य पश्यनारीणाम् ॥ २७७ ॥

हे हारलता ! महादेव से भस्म भिने कामदेव जन्य सद्भाव-वैचैनी को रोके, वैराग्यों के लिए सद्भाव अन्य प्रेम ( अभिमान जन्य अनुराग ), अच्छा नहीं ॥ २७७ ॥

१. श्री वाद—कामना करती है परन्तु बाणी से कुछ नहीं कहती, पुरुष कामना करता है, और मुक्त से प्रेम की माँग भी कर बैठता है —( 'क्षिर्यः कामयन्ते, न तु प्रार्थयते, दुःखः कामयते-प्रार्थयते च' —वात्स्यायन ) । प्रथम समा-गम में ही श्री के करने प्राप कहने पर इच्छापन दीखता है—

सर्वा एव हि कर्त्तव्याः पुरुषेण प्रयुज्यमाना वचनं विप्रदन्ते,

न तु खण्डुमिभामपि वार्ता वदन्तीति धीटकमुलः ॥ वात्स्यायन ।

नैपथ में भी दमयन्ती के लिए कहा है—

'का नाम वाक्ता द्विवर्तपथिप्रदाभिलार्थं कथयेदुलम्बा ॥' २।५।

२. प्रीति—अनुराग चार प्रकार का है:

धन्यासादभिमागच तथा संशयवादिपि ।

विपयेभ्यश्च सन्त्राताः प्रीतिनाहुयनुर्विषाम् ॥ वात्स्यायन २।।

कर्मण्यप से, सकार से, स्वयं व से और परस्पर दात मानादि ने उत्पन्न, इसमें अभिमान अन्य प्रीति को यश कहता है, जैसा काव्यसूत्र में कहा है—

अनन्यस्तेष्वपि पुनः कर्मण्यविपयान्मिमा ।

संशयान्नापने प्रीतिर्वा सा स्वादाभिमानिनी ॥

इसी को अनन्यरग में समा कहा है—'समयोगे समा स्मृता'—४।२७ ।

अवधीरय धनविकलं, कुरु गौरवमकृशसंपदः पुंसः ।

अस्मादृशां हि मुग्धे धनसिद्धये रूपनिर्माणम् ॥ २७८ ॥

निर्धन का तिरस्कार करो; धनी पुरुष को सम्मान दो, हे मुग्धे ! हम लोगों का रूप धन प्राप्ति के लिए ही बना है<sup>१</sup> ॥ २७८ ॥

अभिरामेऽभिनिवेशं विदधाना विविधलाभनिरपेक्षा ।

उपहस्यसे मुमध्ये विदग्धवारांगनावारैः ॥ २७९ ॥

हे मुमध्वे ! नाना प्रकार के लाभों की उपेक्षा करके अभिराम ( मनोह-  
सुन्दर ) मनुष्य में अनुरक्त होने पर चतुर वेश्याओं की हँसी का पात्र बनोगी—  
वे तुम पर हँसेंगी ॥ २७९ ॥

येषां श्लाघ्यं यौवनमभिमुख्यतामुपगतो विधिर्येषाम् ।

फलितं येषां सुकृतं जीवितसुखिवार्थिता येषाम् ॥ २८० ॥

ते यस्याः स्वयमेव त्वामनुबध्नन्ति मदनशरभिन्नाः ।

न हि मधुलिहः कृशोदग्नि मृग्यन्ते चूतमञ्जर्या ॥ २८१ ॥

( युगलकम् )

जिन कामुकी का यौवन प्रशसनीय होगा, जिनका भाग्य उदय हो गया होगा,  
जिनका सुकृत फल गया होगा, जिनमें जीवन के सुख की चाह होगी, वे कामदेव  
के शरों से विधे अवश्य ही तेरे पास त्वय आयेगे, ग्राम की मजरी के पास भ्रमर  
स्वयं खिंचकर आते हैं, मंजरी उनके पीछे नहीं भागती<sup>२</sup> ॥ २८०-८१ ॥

इति गदितवतीमालीं कामशरासारभिन्नसर्वांगी ।

अव्यक्तखलिताक्षरमूचे कृच्छ्रं हारलता ॥ २८२ ॥

सखी के इस प्रकार कहने पर, कामदेव के वाशों से छिदी हारलता ने  
लड़खड़ाती एवं अस्पष्ट वाणी द्वारा कठिनार्द्र के साथ कहा ॥ २८२ ॥

१. सेमेश्व ने भी कहा है—

प्रसीणावत्तेन निरुत्तमेन किं रूपयुक्तेन करोति वेश्या ।

विच्छिन्न दुग्धा न पुनः सगर्भा सा कस्य गौत्रादुत्तयोपयुजा ॥

इत्युक्त्वा तं क्षणितविभवं कञ्चुकामं भुजगी

त्यक्त्वा गन्धेसधनमपरं वैशिकोऽयं समाप्तः ॥ समयमावृत्ता २।८१, ८१

२. धन्यत्र भी कहा है—नारीयन्ते मधुनि मधुषाः पारिजातप्रसूनैः,

नाम्यर्घ्यन्ते तुहिनरुचिना चन्द्रिकाभिश्चकोरः ।

काञ्चिदास ॥ वचन प्रसिद्ध ही है—

‘न सनमन्विच्छति मृग्यते हि सत्’—कुमार- ५।४४

सरि कुरु तावद्यज्ञं षट्तरमतिवेदनाप्रतीकारे ।

क्रोडोद्धृता विपत्त्या न भवन्त्युपदेशयोग्या हि ॥ २८२ ॥

हे सखी ! वेदना को दूर करने का कोई उत्तम उपाय शीघ्र करो, सिर पर }  
आइं विपत्तियाँ केवल उपदेश से दूर नहीं की जा सकती ॥ २८३ ॥

अस्त्रायत्तं प्रेयान् मृदुपवनं सुरभिमास ज्ञयानम् ।

इयती खलु सामग्री भवति क्षीणायुषामेव ॥ २८४ ॥

अस्वतन्त्र प्रेमी, मृदु पवन, सुरभिमास ( चैत्रमान ), उपवन, ये सब, उनके }  
मारने के लिए पर्याप्त हैं, जिनसे आयु क्षीण हो गई है ॥ २८५ ॥

मत्वा मन्दनाशी विपवेगाकुलितविग्रहामर्ताम् ।

समुपेत्य शशिप्रभया पौरन्दरिभिदधे कृतप्रणतिः ॥ २८६ ॥

सर्प नियत्री भाँति कामाग्नि से बेचैन, अपनी सखी को जानकर, चन्द्रप्रभा ने }  
सुन्दरसेन के पास जाकर, हाथ बाँटकर निवेदन किया ॥ २८७ ॥

यदि नाम कणद्वि गिरं गणिताभावापन्नितवैलक्ष्यम् ।

तदपि पथनीयमेव, क्षिण्वापदि न हि निरूप्यते युक्तम् ॥ २८८ ॥

वेश्या भाव के कारण उत्पन्न लज्जा मुझे कहने से रोकती है, तथापि }  
फटना ही होगा, क्योंकि स्नेहोजन की आपत्ति में औचित्य का विचार नहीं }  
होता ॥ २८९ ॥

एतावति संसारे परिगणिता एव ते मुजन्मानः ।

आपन्नपरिप्राणे व्याकुलमनसः स्फुरन्ति ये बुद्धौ ॥ २९० ॥

इतने बड़े संसार में उन्हीं लोगों का जन्म धन्य है, जो आपत्तियों में कैसे }  
मनुष्यों की रक्षा करते हैं; उनसे ही मनुष्य स्मरण करते हैं ॥ २९१ ॥

यस्मिमेव मुहूर्ते चतुर्विपयं गतोऽसि मे सरया ।

तत एवारभ्य गता विधेयतां दग्धमदनस्य ॥ २९२ ॥

जिस मुहूर्त में आप मेरी सरि की आँगों के सामने पड़े हैं, तब से ही वह }  
दुष्ट कामदेव के अधीन बन गई है ॥ २९३ ॥

रोमोद्गमसन्नद्धं मित्राऽन्तर्निग्रहं परापतिता ।

सत्या मानससम्भवमोदहविनिर्गता इष्यः ॥ २९४ ॥

कामदेव के धनुष से निकले हुए गण्डमने रोमाचम्पी कचका भेदन }  
करके शरीर के अन्दर अतः करण में गिरे हैं ॥ २९५ ॥

किं वा चदतुं वराकी, कुत्र समाश्वसितु, यातु कं शरणम् ।

पीडयति भृशं यस्मान्नित्यं शुचिदक्षिणो मृदुः पवनः ॥ २६० ॥

गरीब बेचारी वह क्या कहे; कहाँ सान्त्वना पावे; किसको शरण में जाये; क्योंकि निर्मल, कोमल, दक्षिण की वायु उसको निरन्तर बहुत अधिक पीड़ित कर रहा है<sup>१</sup> ॥२६०॥

वचसि गते गद्गदतामुज्जितमौनव्रताश्रिराय पिकाः ।

हृष्टा व्यथयन्ति सखीं जातावसरा निरर्गलं विरुतैः ॥ २६१ ॥

उसकी वाणी में अस्पृष्टता आजाने से, देर से धारण किये मौन व्रत को छोड़कर, अब कोयलें भी प्रसन्न होकर निरर्गल ( अण्ड-बण्ड ); वाणी में बोलकर मेरी सखि को पीड़ित कर रही हैं ॥२६१॥

स्त्रलिताकुलिते गमने तन्वग्या अगणितश्रमा हंसाः ।

सुचिराल्लब्धावसरा. कुर्वन्ति गतागतानि परितुष्टाः ॥ २६२ ॥

उस तन्वगी की चाल में वेचैनी और स्त्रलन आ जाने से अब इस भी थकान की चिन्ता न करके, देर में अक्सर मिलने के कारण प्रसन्नतापूर्वक खाना-खाना करने लगे हैं ॥२६२॥

उष्णोच्छ्वसितसमीपे विदह्यमानोऽपि मधुकरस्तथाः ।

अलककुसुमं न मुंचति, कृच्छ्रेष्वपि दुस्त्यजा विषयाः ॥ २६३ ॥

उसके गरम उच्छ्वास से जलते हुए भी भ्रमर, केशों में लगाये फूल को नहीं छोड़ते; शारीरिक कष्ट होने पर भी विषय दुस्त्याज होते हैं, कठिनाई से छोड़े जाते हैं<sup>२</sup> ॥२६३॥

नो वारयसि तथा मां साम्प्रतमिति कथयतीव मधुलेहः ।

नि.सहयपुपः पर्णे श्रुतिपूरकपुष्पसंगतो गुञ्जन् ॥ २६४ ॥

अब भ्रमर भी असहाय बनी सखी के कान में लगे फूल के सहारे गूँजते हुए, मानों यह कह रहे हैं, कि जिस प्रकार से पहले तुम मुझे हटाती थी, अब उस प्रकार से नहीं हटाती ॥२६४॥

१. यसन्ते दक्षिणः—

उद्दामं दक्षिणाधो मलितमलपत्रः सारथिर्मानकेतोः ।

प्राष्ठः सीमन्तिनीनां मधुमयमुद्गन्मानचौरः समीरः ॥ काव्यमीमांसा ॥१८॥

२. कुशों को पीड़ित करने, ओठों के काटने में औनायिका को घातक मिश्रता है ।



प्रशिथिलभुजलतिक्रियास्तस्या पतितस्य हेमन्टकस्य ।

यत्प्रापणं पृथिव्यास्तस्मिन्पलु मुचहस्तता हेतुः ॥ २६५ ॥

उसकी बाहुओं के शिथिल-कृश हो जाने के कारण स्वर्ण का बलय जो भूमि पर गिर पड़ा; वह उसकी उदारता ही समझो ॥ २६५ ॥

रशनागुणेन विगलितमेकपदं तन्नितम्बतश्चित्रम् ।

पतनाय नियतमथवा निपेयणं गुरुकलत्रस्य ॥ २६६ ॥

रशनागुण-करघनी से जिसका हुआ भी एक पैर भारी श्रेणि भाग से नहीं गिरता; वह बड़े आश्चर्य की बात है<sup>१</sup> जन जि (गुरुपत्नी पर आसक्ति करना लोक में पतन का कारण होती है, यहाँ निपरीत है) ॥ २६६ ॥

अंगीकृत्य मनोभयमुरसि तथा लालितोऽपि हतहारः ।

तापयति सर्पं तत्तण्णमन्तर्भिन्नात्कुतः कुशलम् ॥ २६७ ॥

बड़े चाव से पहना दुष्ट हार कामदेव के पक्ष की स्वीकार करके-शत्रु बनकर सर्प की दुःख दे रहा है, अन्तर से जो पूट गये-उनकी कहाँ कुशल? उनकी कहाँ भी शान्ति नहीं (हार भी अन्तर से क्षिप्त होता है) ।

धाससितं स्वेदजलं कज्जलमलिनाश्रुवारिणा मिश्रम् ।

कुचतटपतितं तस्याः प्रयागसंभेदसलिलमनुकुरुते ॥ २६८ ॥

चन्दन के लेप से मुवासित स्वेद जल, कज्जल मिश्रित आँसुओं ने साय मिलकर स्तन पर गिरकर, प्रयाग में मिली गया-यमुना के जल का अनुकरण करता है<sup>२</sup> ॥ २६८ ॥

पिकरुचमलयसमीरणमुमनस्मरभृङ्गदहनपरिफलिता ।

पञ्चतपश्चरति भयत्परिरम्भणसौरयलम्पटा चाला ॥ २६९ ॥

कीयल का कुदरना, मलयचल की वायु (शक्ति वायु), मल्लिकादि पुष्प, काम श्रीर भ्रमर ये पाँच काम से पीड़ित उसको जलाने वाली अग्निपों हैं ।

१. काकिलदास ने भी सोने के बलय के गिरने का उल्लेख किया है—

'मुहुर्मणिलघन्यवान् कनकबलयं अस्तस्रस्तं मया प्रतिसार्पते'—

शाकुन्तल-२।१३

२. गुदरानी का सेवन मिश्रित पतन का कारण है—वह दूसरा भयं है ।

३. काकिलदास ने रघुपथ में गंगा के श्वेत जल और यमुना के काले जल के मिलने का वर्णन किया है—

अपिच दृष्ट्वोरगमूपगेव भस्मांगारागात्रनुरोरवरस्य ।

परपञ्चवाहि विभाति गगा विन्नप्रवाहा यमुनातरगेः ॥ रघु० १३।५७

आपसे मिलने के सुख की खालसा में वह बाला पाँच श्रमियों का तप कर रही है<sup>१</sup> ॥२६६॥

न परा पतति वराकी दशमी यावन्मनोभवावस्थाम् ।  
त्रायस्य सुभग तावच्छरणगतस्त्वन्न व्रत महताम् ॥ ३०० ॥  
वह गरीब जब तक काम की दसरी दशा (मृत्यु) तक नहीं पहुँचा, हे सुभग ।  
उससे पहिले ही उसको बचा लो—सजनों का यही धर्म है कि शरणागत की)  
रक्षा करें<sup>२</sup> ॥३००॥

अथ तद्वचसि कृतादरमुद्भूतमनोभव समवधार्य ।  
अवगीतिभीतचेता उचे गुणपालित सुहृदम् ॥ ३०१ ॥  
शशिप्रभा के वचना का आदर करके, मनोभव काम उत्पन्न हुआ जान  
कर निन्दा क भय से अपने मित्र गुणपालित को मन में डरते हुए सुन्दरसेन  
ने कहा ॥३०१॥

यद्यपि भारप्रसरो दुर्वार प्राणिना नवे वयसि ।  
चिन्त्य तदपि विवेकिभिरवसान वारयोपिता प्रेम्ण ॥ ३०२ ॥  
यद्यपि उठती जवानी में प्राणियों के लिए काम विकार असहनीय होता है,  
तथापि बुद्धिमानों को वश्या प्रेम का परिणाम सोचना ही चाहिये ॥३०२॥

धारस्त्रीणा विभ्रमरागप्रेमाभिलापमदनरुज ।  
सहबुद्धिस्तयभाज प्रयाता सपद सुहृद ॥ ३०३ ॥  
वश्याओं का विभ्रम अनुराग-प्रीति, प्रेम, अभिलाषा-चाह, कामपीडा,  
ये सब सम्पत्ति के मित्र तुल्य हैं, सम्पत्ति के साथ ये बढ़ते हैं, और सम्पत्ति के  
घटने से घटते हैं<sup>३</sup> ॥३०३॥

---

१ पञ्चाभि तप—यज्ञियैर्वाग्नि शुष्कैश्चतुर्विंशु चतुष्कृतम् ।  
बद्धिसंस्थापन, शीघ्रमे तीर्माशुस्त्र पञ्चम ॥ काविकापुराण

२ काम की दस अवस्थायें—  
अभिज्ञापोऽय चिन्ता स्यात्स्मृतिश्च गुणकीर्तनम् ।  
उद्वेगोऽय प्रज्ञाप स्यादुन्मादो व्याधिरेव च ।  
जडतामरणे चैव दसमे जायते ध्रुवम् ॥ शृंगारविजयक १५  
साहित्यदर्पण में (३।१६०) में भी काम की ये ही दस अवस्थायें कही हैं ।

३ विभ्रम भ्रूविज्ञास—अनुर पञ्चवक्त्रिकाप्रसूनकञ्जयोगभारिय क्रमत ।  
प्रेम मान प्रणय स्नेहो रागोऽनुराग इत्युक्त ॥  
विभ्रम आदि—प्रेमाभिज्ञापो रागश्च स्नेह प्रेम रतिस्त्वया ।  
शृङ्गारवेति समोग सप्तावस्थ प्रकीर्तित ॥

ताभिरयदातजन्मा करोति संगं कथं यासाम् ।

क्षणदृष्टोऽपि प्रणयी, रूढप्रणयोऽपि जन्मनो पूर्वः ॥ ३०४ ॥

सत्कुल में उत्पन्न मनुष्य इन वेश्याओं के साथ सगति कैसे करे, जिनके लिए क्षण भर में देखने से उत्पन्न नया प्रेम तथा पुराना-भावा स्नेह भी एक ही समान होता है ॥ ३०४ ॥

प्रद्युम्नः प्रद्युम्नो विरूपकः रालु विरूपकः सततम् ।

सुस्निग्धः सुस्निग्धो रूक्षो रूक्षस्तु गणिकानाम् ॥ ३०५ ॥

वेश्याओं के लिए वनो मनुष्य ही प्रद्युम्न—कामदेन होता है, जिसके पास बहुत से रुपये होते हैं, वही विशेष रूप से रूप वाला है, द्रव्य से जो स्निग्ध-भरा होता है, वही उनसे लिये स्नेही है, धन से रूक्ष-हान व्यक्ति उनके लिए रूक्ष-कठोर होता है ॥ ३०५ ॥

यासां जघनावरण परकीर्तुमृद्धये न तु त्रपया ।

उज्ज्वलवेपा रचना कामिजनारुष्टये न तु स्थितये ॥ ३०६ ॥

वेश्याओं का-जघनों को ढाँपना लज्जा के लिए नहीं होता, अपितु दूसरों में आसक्ति उत्पन्न करने के लिये होता है । इनका उज्ज्वल वेश लोक-मर्षांदा के लिये न होकर क मित्रों के आकर्षण के लिये होता है ॥ ३०६ ॥

मांसरसाभ्यवहारः पुरुषाहतिपीडया न तु मृहया ।

आलेख्यादी व्यसनं बैदग्ध्यव्यासये न तु विनोदाय ॥ ३०७ ॥

इनका मांसरस का भोजन करना स्वाद के लिये न होकर, अनेक कामुक पुरुषों के सेवन जन्य शरीर पीडा की शान्ति के लिए होता है । इनका आलेख्य-चित्रकर्म आदि कार्य व्यसन-वचि मनो विनोद के लिए न होकर केवल चतुरस्ता दिखाने के लिये होता है ॥ ३०७ ॥

१. वित्तं वेति वेश्या स्मरसदृशं बुद्धिर्न जराजीर्णम् ।

वित्तं विनाऽपि वेति स्मरसदृशं बुद्धिर्न जराजीर्णम् ॥ क्षेमेन्द्र.

२. वेश्यायै मांसरस का सेवन करती है, यह उल्लेख मृत्पुष्पकटिक में भी आया है, मायं. मण्डली का मांस-रस सेवन करती है—

रमय च राजपुत्रम ततः खादिष्यसि मत्स्यमांसकम् ।

पुताम्पो मास्यमासाभ्यां शान्ता मृतकं न सेवन्ते ॥ १, २६

यदिष्यसि खम्बदशा विनाश माचारकं सूत्रगतैर्दि पुत्रम् ।

मांसश्च खादितुं तथा मुष्टिश्च कर्तुं पुह पुह पुक्क पुह पुह इति ॥ ८।२२

क्षेमेन्द्र ने भी लिखा है—मत्स्ययूपरसैर्दासी पृथङ्गीरपक्षापुद्गुभिः ।

मियं पराङ्मुखमिव प्रस्थानयति यौवनम् ॥

देशोपदेश—१।२२

रागोऽधरे न चेतसि, सरलत्वं भुजलतासु न प्रकृती ।

कुचभारेषु समुन्नतिराचरणे नाभिनन्दिते सद्भिः ॥ ३०८ ॥

इनके अघर में ही राग-रक्तिमा-लाली रहती है, चित्त में राग-अनुराग नहीं रहता । भुजाओं में ही सरलता-सीधापन होता है, प्रकृति में-स्वभाव में सीधा-पन नहीं होता । स्तनों में ही समुन्नति मिलती है, सजनों से अभिनन्दित आचरण में उन्नति नहीं होती ॥३०८॥

जघनस्थलेषु गौरवमाकृष्टधनेषु नो कुलीनेषु ।

अलसत्वं गमनविधौ नो मानववंचनाभियोनेषु ॥ ३०९ ॥

वेश्याओं के जघनों में गुस्ता-मारीपन या भेष्टता रहती है, जिनका धन ले लिया है, उनके लिए अथवा कुलीन पुरुषों के लिए प्रतिष्ठा नहीं रहती । इनकी चाल में ही अलसत्व मन्दगति रहती है, मनुष्यों के ठगने के आग्रह में मन्दगति-दीर्घसूत्रता नहीं रहती ॥३०९॥

वर्णविशेषापेक्षा प्रसाधने नो रतिप्रसंगेषु ।

ओष्ठे 'मदनासंगो नो पुरुषविरोपसंभोगे ॥ ३१० ॥

इनके लिये प्रसाधन में ही वर्ण-श्वेत-कृष्ण आदि का विचार है, रति क्रीड़ा में वर्ण-ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि वर्ण का विचार नहीं होता । मदन-मोम का संग-उपयांग ओष्ठ के लिए ही है, पुरुष विरोप के संभोग में मदन-काम का संग नहीं रहता ॥३१०॥

या चालेऽपि सरागा, वृद्धेष्वपि विहितमन्मवावेगा ।

क्लीबेष्वपि कान्तदृशः, साकांक्षा दीर्घरोगेऽपि ॥ ३११ ॥

वेश्यायें बालक में भी अनुराग कर सकती हैं, वृद्ध में भी कामवेग की मौंग कर सकती हैं, नपुंसक में भी प्रेमी या पति के समान वर्त्ताव कर सकती हैं, चिर-रोगी पुरुष में भी आकांक्षा-चाह कर सकती हैं ॥३११॥

स्वेदाम्युकणोपचिता अनार्द्रतानिजनिवासमनसश्च ।

आविष्कृतवेषथवो वज्रोपलसारकठिनाश्च ॥ ३१२ ॥

पसीने में स्नान किया होने पर भी इनको अपने निवास और मन में किसी प्रकार का स्नेह या प्रीति नहीं होती । कँपकँरी दीखने पर भी ये वेश्यायें हारे के सार भाग के समान [ हारे से भी अधिक ] कठोर होती हैं ॥३१२॥

जघनचपला अनार्याः, परभृतयः कृतकनेत्ररागाश्च ।

सर्वांगार्पणदक्षा असमर्पितहृदयदेशाश्च ॥ ३१३ ॥

ये जलनचपला-व्योमचारिणी होती हैं, अनार्य-दुष्ट स्वभाव की, दूसरों से पुष्ट होती हैं, इनकी आँखों में बनापट्टी प्रीति रहती है, सारे शरीर को अर्पित करने में चतुर, परन्तु हृदय को नहीं अर्पित नहीं करती ॥३१३॥

न कुलसमुत्पन्ना अपि सुजंगदशानकृतवेदनाभिज्ञा ।

कन्दर्पदीपिका अपि रहिता, स्नेहप्रसंगेन ॥ ३१४ ॥

सकुल में उत्पन्न न ( नकुल-नौले के वंश में उत्पन्न ) होने पर भी निद्रा ( भुजग-सौँपो ) के काटने की वेदना को जाननेवाली, स्नेह-तेल के बिना भी कामदेव के दीपक होती है ॥३१४॥

उज्जितवृषयोगा अपि रतिसमये नरत्रिगोपनिरपेक्षा ।

कृष्णौषाभिरता अपि हिरण्यकशिपुप्रियाः सततम् ॥ ३१५ ॥

वृष स्वभाव के पुरुष ( अथवा वृष धर्म ) के छोड़ने पर भी रति नादा में पुरुष विशेष का विचार न करने वाली होती है । कृष्ण मगरान कृष्ण ( अथवा कृष्ण-वास ) में प्रेम रखने पर भी हिरण्यकशिपु से ( हिरण्य-न्याय, कशिपु-अन्न और आच्छादन-न्याय-मान, रहन-सहन ) सदा प्रेम रखती है ॥३१५॥

मेरुमहीधरमुन इव किम्पुरुषसहस्रसेवितनितम्याः ।

नीतय इव भूमिभृतां सुपरिहृतानर्थमयोगाः ॥ ३१६ ॥

जिन प्रकार मेरु पर्वत का कटि भाग हजारों किन्नरों से सेवित है—किन्नर यहाँ रहते हैं, उसी प्रकार इनका कटि भाग भी हजारों कुलित पुरुषों से सेवित होता है । जिन प्रकार राजाग्रा की नीति उनको अनर्थों से बचाती है, उसी प्रकार वेद्यों भी अपने नाश या भयोल्लिख के अक्सर से बचाती है ॥३१६॥

बहुमित्ररविदारणलज्वाभ्युदया, सरोरहिण्य इव ।

हाकिन्य इव च रक्तव्याकर्षणकौशलोपेता ॥ ३१७ ॥

१—इसमें जलनचपला उम्ह है, इसका लक्षण—

प्राक्प्रतिपादितमर्धे प्रथमे चरमवृत्ते तु चपलायाः ।

सदमाश्रयेण मोक्षा विशुद्धजीमिजघनचपला ॥

२—वृष पुरुष का लक्षण—

(क) उगकारणो नित्ये जीवतः स्नेहप्रसक्तः ।

दशगुणशरीरश्च धीमान् धीरो वृषो मयः ॥ स्मरदीपिका ।

(ख) कृश मोक्षतमोक्षयो इवभुजाः सुषौड्वयस्यजा

कृश भूमिनिबोधद्वारश्च कश्चिनाम्पयागान्विता पीवरा ।

योगान्तः स्थिरदीर्घलोचनमृतः स्वारस्यशुतोदरा

प्यालोक्षा वृषमा नरगुणमित्रं कानांक्षुद्रं विप्रती ॥ अर्नगरंग ३।१७

जिस प्रकार से कमलिनी मित्र-सूर्य की बहुत-सी किरणों से विकसित होती है, उसी प्रकार इनका अम्बुदय भी इनके बहुत से मित्रों के नस्त्रक्षतों के कारण होता है। डाकिनी की भाँति ये स्नान चूसने में अति कुशल होती हैं ॥३१७॥

प्रतिपुरुषं सन्निहिताः कृत्यपरा विविधविकरणोपचिताः।

बहुलार्थप्राहिस्त्यः प्रकृतय इव दुर्ग्रहा गणिकाः ॥ ३१८ ॥

( अर्थचतुष्टयवाचिनीयमार्या )

वेश्यायें प्रकृति की भाँति कठिनाई से पकड़ में आती हैं। प्रकृति [ सत्व, रज और तम की साम्यावस्था-स्वभाव ] प्रत्येक मनुष्य में पृथक्-पृथक् है, साव्य मत में प्रकृति ही कार्य करने वाली कर्ता है, भिन्न भिन्न इन्द्रियों से युक्त, नाना प्रकार के अर्थ विषयों को प्रकृति ग्रहण करती है ॥३१८॥

वेश्यायें—पुरुष मात्र के प्रति निरपेक्ष होती हैं—समर पास जाती हैं, पुरुषों को मोहती हैं—अपनी ओर रसीचनी हैं, नाना प्रकार के रति ग्रन्थों को जानने वाली अत्यधिक वन का समग्र करने जाला होती हैं।

सादरमाकृष्य चिरं कुसुमस्तवकं च नरविशेषं च।

रिक्तीमर्तु निपुणा। सुद्रा। सुद्राश्च चुम्बन्ति ॥ ३१९ ॥

जिस प्रकार से सुद्रा—मधुमक्खिलयाँ फूल के गुच्छे का रस देर तक आदर के साथ लेकर उसे रिन—गाली बनाने में कुशल होती हैं, उसी प्रकार से सुद्रा—वेश्यायें भी पुरुष को आदर के साथ देर तक उसका धन लेकर उसको बगल बनाने में कुशल होती हैं ॥३१९॥

परमार्थकठोरा अपि विषयगतं लोहक मनुष्यं च।

चुम्बन्स्पायाणशिला रुपाजीवाश्च कर्पन्ति ॥ ३२० ॥

परिणाम में कष्टदायक, त्रिषयों—काम में आसक्त मनुष्य को रूप से जीरिका प्राप्त करने वाली वेश्यायें चुम्बक की भाँति रसीचती हैं। जिस प्रकार से अति-शय कठोर, पट्टुच में आये लोहे को चुम्बक पत्थर रसीचता है, उसी प्रकार वेश्यायें भी विषय में वैसे मनुष्य को रसीचती हैं ॥३२०॥

1. चुम्बक और नायिका-वेश्या में समानता है, चुम्बक लोहे को रसीचता है, वेश्यायें पुरुष को रसीचती हैं। चुम्बक चार प्रकार का है—आद्यर्पक, चुम्बक, द्रव्यक और धामक, वेश्यायें भी चार प्रकार की हैं, उनके भी यही नाम हैं—

‘प्रस्तर इव कश्चोऽमि, नचाकर्पकचुम्बकद्रव्यकधामकोऽमि परं द्रितर ॥  
पुरुषान् स्वरूपमर्दिभ्यः दूरादपि आकर्षितुं समर्था आकर्षणी । आकृष्य  
मरान् तान् स्वसंज्ञान् करोति या सा चुम्बिका । आलोकमात्रेण

पुरुषाक्रान्ताः सततं कृत्रिमशृंगाररागरमणीयाः ।

आहन्त्यमानजवनाः करेणवो वारयोपाश्र ॥ ३२१ ॥

वेश्यायें हथिनियों की भांति होती हैं। जिस प्रकार पुरुषों से अधिष्ठित, निरन्तर बनावटी शृंगार की लाली से—सिन्दूर लगाने से मुन्दर; जवन भार से चोट करने पर हथिनियों चलती है, उसी प्रकार वेश्यायें भी पुरुषों से अधिष्ठित, कृत्रिम शृंगार की लाली से मुन्दर, जवन-बटिके सामने के भाग से आगत होने पर प्रसन्न होती हैं ॥ ३२१ ॥

उचितगुणोत्तिष्ठा अपि पुरतो विनिवेशिते सुवर्णलवे ।

भ्रमिति पतन्ति मुखेन प्रकटप्रमदा यथा च तुलाः ॥ ३२२ ॥

जिस प्रकार से तण्डू मजकूत खोरिया से उपर को उठाई होने पर भी आगे के पल्ले पर थोड़ा सा सोना रखने पर तुरन्त नीचे गिर पड़ता है, उसी प्रकार वेश्यायें भी उचित योग्य सौन्दर्यादि गुणों से अपनी बनाई होने पर भी थोड़े से स्वर्ण के कारण तुरन्त नीचे गिर जाती हैं—दूसरे की बन जाती हैं ॥ ३२२ ॥

यहिरूपपादितशोभा अन्तमुल्ला स्वभावतः कठिनाः ।

वेश्याः समुद्रिग (दूग ?) का इव कणन्ति यन्त्रप्रयोगेण ॥ ३२३ ॥

वेश्यायें—जो मिट्टी सिंघियों की भांति गहर से ही देखने में मुन्दर होती है, अन्दर से लाली रहती है, स्वभाव से ही कठोर होती है, यन्त्र प्रयोग से [ सम्मोग के समय ] शब्द करती है, सिंघिया कला मीराल के प्रयोग से शब्द करती हैं ॥ ३२३ ॥

यघ्नन्ति येऽनुरागं देवहतास्तासु धारयन्तितासु ।

ते नि सरन्ति नियतं पाणिद्वयमग्रतः धृत्वा ॥ ३२४ ॥

स्पर्शमात्रेण वा तान् द्वावर्षतुं शक्यं द्वावर्षाः । मोहायत्वा समागमादानेन भ्रामयति सा भ्रामिका ॥<sup>१</sup>

पुरुष भी चार प्रकार के हैं—कामदृष्टाकीशलेन को नारीमाकर्षति स आकर्षकः । शिकीशलेन परजुम्बति स चुम्बकः । धीपथिविदोष-योगेन कुत्तमर्दनेन वा यः कठिनकामिधो द्वावर्षति स द्वावर्षकः । अन्वासक्तो योऽप्यनारीं भ्रामयति प्रतारयति स भ्रामिका ॥—धीतनुस्तराम मनमुत्तराम त्रिपत्नी ।

१. हथिनी का लक्षण—स्थूला विगलबुन्तला च बहुभुक् क्रूराप्रवावजिता  
गौराक्षी कुटिर्बाणुजीकधरणा इत्या नमस्कन्धरा ।  
विभ्रागेममदाम्बुगान्धरतित्रं धोयं मृधं मन्दगा  
दुस्ताप्या मुरतेर्गति गद्गदरवा स्थूळौटिका हस्तिनी ॥  
अनंगरंग १११४

भाग्य के मारे जो मनुष्य इन वेश्याआ में प्रेम करते हैं, वे अवश्य ही दोनों हाथों को आगे करके—मिट्टा के लिये हाथ पैलाकर घर से निकलते हैं ॥ ३२४ ॥

इदमुपदिशति वयस्ये सुन्दरसेने च मन्मथव्यथिते ।

प्रस्तावादुपगातु गीतित्रयमभ्यधायि केनापि ॥ ३२५ ॥

अपने मित्र द्वारा कामदेव से पीड़ित सुन्दरसेन को इस प्रकार का उपदेश देते हुए—प्रसंगवश किसी ने ये तीन गीतियाँ गाईं—॥ ३२५ ॥

तरुणी रमणीयाकृतिमुपनीता स्मृतिभुवा वशीकृत्य ।

परिहरति यो जडहत्मा प्रथमोऽसौनालिकोविना भ्रान्तिम् ॥ ३२६ ॥

कामदेव के यश में हुई, सुन्दर ग्राहिनि वाली तरुणी के समीप आने पर भी जो उसका परित्याग करता है, वह अभाग्य नि सन्देह प्रथम श्रेणी का बेवकूफ है ॥ ३२६ ॥

इदमेव हि जन्मफल जीवितफलमेतदेव यत् पुसाम् ।

लज्जह्नितम्बवतीजनसभोगसुरेन याति तारुण्यम् ॥ ३२७ ॥

पुरुषा के शरीर धारण का यही जीवित फल है कि सुन्दर नितम्बावाली स्त्री ने सम्भोग से उनका यौवन व्यतीत होता है ॥ ३२७ ॥

सुमनोमार्गणदहनग्यालावलिदह्यमानसर्वांग्य ।

प्रयत्नप्रेमप्रवणा प्रमदा स्पृहयन्ति नाल्पपुण्येभ्य ॥ ३२८ ॥

कामदेव के माया की आग्न से जलते हुए सम्पूर्ण अंगों वाला—काम से पीड़ित, अतिशय प्रेम करनेवाला। न्रिया भाग्य हीना से प्रेम नहीं करती ॥ ३२८ ॥

एवमुपश्रुत्य च समुवाच पुरन्दरात्मज सुहृदम् ।

मम हृदयादिष्व कृष्ट्वा गीतमिदं साधुनाऽनेन ॥ ३२९ ॥

इन वचनों को सुनकर सुन्दरसेन ने अपने मित्र को कहा—मेरे हृदय की बात चुकाकर इसने कही है ॥ ३२९ ॥

जघन के आघात—‘अथ जघनाभिघातमुख्येक्षमाणा मनश्चरन्निजवननया गत्यन्तर-  
मारुदवती’—सुदाराक्षस ।

जिस प्रकार से हस्तिनी नायिका रति में हु मात्स्य छोड़ी है, उसी प्रकार बेरवा को भी सतीत नहीं छोड़ा ।

१ बाहेति गीयते नाही वाक्च वर्षाणि षोडश । तस्मात्परं च तद्वती यात्रया  
प्रियता भवेत् ॥ तदुप्यमधिकृष्टा स्यादावस्थाशता भवत् । वृद्धा तत्परतो  
जया सुरता/सर्वश्रिणा ॥ नागरसर्वस्य

कविने ठीक ॥ कहा है—सौन्दर्यवल्लोच जिज्ञासुविज्ञा तादृग्यसपक्षमनोहरधी ।  
समागतेषां विज्ञनेप्रमिच्छापादुपेक्षते केन विषयजेन ॥



तद्वतनुसायकचिकलां हारलतां हरिणशावतरलाश्रीम् ।

आश्वासयितुं यामो, गुणपालितं किं विकल्पितैर्बहुभिः ॥ ३३० ॥

इस लिये, हे गुणपालित ! हरिण के छौने के समान सुन्दर आखों वाली, कामदेव के शरों से पीड़ित हारलता को सान्त्वना देने के लिये चलें, बहुत सोच विचार करने से क्या लाभ ? ॥ ३३० ॥

अथ तत्र काऽपि गणिका गणयन्ती परिचितं द्रष्टव्यम् ।

प्रतिशान्तमेव मन्दिरमीर्ष्याव्याजेन निररोध ॥ ३३१ ॥

वेश्याहाट में मुन्दर सेन ने जो देखा उसका वर्णन—

जिसका घन रौच लिया गया ऐसे, निर्धन परिचित व्यक्ति का कोई गणिका अनादर करती हुई, ईर्ष्या के गहाने से उसे घर में घुसने से रोक रही है ॥ ३३१ ॥

काचिद्वचनदत्तं लुण्ठोक्तजीर्णवसनमत्रलोक्य ।

वेण्या जिपीवति स्म क्षपाक्षये व्यर्थकर्तव्या ॥ ३३२ ॥

मात्र काल में कोई वेश्या किसी धूर्त श्राप छपेटकर दिये पुराने पटे वस्त्र को देखकर चिन्ता में पड़ी सोच रही है—कि सब किया व्यर्थ गया ॥ ३३२ ॥

वेवस्मृत्या पतितं दृष्टिपथं भग्नमूल्यविटमेका ।

प्रलिता रूपा भुजिष्या तन्नाह जवेन धावित्वा ॥ ३३३ ॥

पैसा न दिये हुए धूर्त को माग्य से सामने आया देखकर; कोई वेश्या क्रोध से जनती हुई जोर से दौटकर पकड़ रही है ॥ ३३३ ॥

अन्तःस्थितकामिगृहद्वारगतं लुप्तचित्तनरमन्या ।

समुयाच कुट्टनीं त्रज कल्लोलाकल्पदेहेति ॥ ३३४ ॥

श्वेत धुले वस्त्र पहने, लुप्तचित्त (निर्धन) मनुष्य के द्वार पर आने पर; कोई वेश्या उसे यह कहकर चन्मा दे रही है कि अतः तो जाओ, दूसरा आदमी अन्दर बैठा है ॥ ३३४ ॥

प्रकटितदशननखत्ततिरभिदधती राजपुररतियुद्धम् ।

अपरा पुरः सखीनां धारवधुराततान सौभाग्यम् ॥ ३३५ ॥

कोई वेश्या दूसरी सखियों के सामने राजपुर के साथ रतियुद्ध में लगे दस्त और नखों के प्रदर्शन को दिखाकर अपने सौभाग्य की प्रशंसा कर रही है ॥ ३३५ ॥

१- इसी से कहा है—अकोच-मूल, पारिषोषिक-हनाम, माट-सुभाषित माट की सद्गुणि, परार्थ-दूतों के लिये घन, चौपाय-चोरों का भाग, इनको सुगन्त हो ले लेना चाहिये, पीछे नहीं मिचते ।

अन्या कामिस्पर्धावर्धितभाटी समुत्सुका चण्डी ।

सौभाग्यगर्वदर्प समुवाह विलासिनीमध्ये ॥ ३३६ ॥

कामिजना की होड़ से बड़े मूल्य के कारण पैसा लेने में उतावली, कोई वश्या वेश्याओं के बीच में अपने सौभाग्य का घमण्ड कर रही है ॥ ३३६ ॥

एकगणिकानुचन्धक्रीबोद्यतशस्त्रकामिनो काऽपि ।

सम्भ्रमतो वावित्वा निवारयामास कुट्टनी कलहम् ॥ ३३७ ॥

एक ही वश्या में नम्बर लगा होने से (दिर होती देखकर) क्रोध के कारण पागल बनकर, शस्त्र निकाल कर, परस्पर लड़ते हुए दो कामुकों को कोई कुट्टनी भयसे दाढ़कर हटा रहा है ॥ ३३७ ॥

धनमाहृत्य बहुभ्यो भुज्यत एषेन केनचित्सार्धम् ।

इति धनघन्त कामिनमावर्जयति स्म काऽपि वारवधू ॥ ३३८ ॥

कोई वश्या बहुतों से धन लेकर [तसी एक के साथ में] जिससे मन लगा है उससे साथ में ] भोग कर रही है । कोई वश्या धनी कामी पुरुष की तुशामत कर रही है—उस अनुकूल कर रही है ॥ ३३८ ॥

गायन्मात्रागाथा द्विपत्निकया सौष्ठवेन विट एक ।

धन्नाम पुरो दास्या विवधद्विकृतीरनेकविधा ॥ ३३९ ॥

कोई विट सस्वर द्विपदिका, मात्रा गाथा (छंद विशेष) गाता हुआ, नाना प्रकार की भावभंगियों बनाते हुए, दासी के सामने घूम रहा है ॥ ३३९ ॥

कश्चित्पण्यस्त्रीणा विभवोपचितान्यपुरुषयोननया ।

विवधाति स्माराधनमधनत्वमुपागत कामा ॥ ३४० ॥

कोई निर्धन बना मनुष्य कामी एवं धनी पुरुषों को वेश्याओं के साथ मिला कर मुस्त में रति प्राप्त कर रहा है ॥ ३४० ॥

त्वयि सत्तेन मया गृहमुज्झितमधुना परेव जाताऽसि ।

इति ढौकमलभमान कश्चिद् गणिकामुपानेभे ॥ ३४१ ॥

तेरे कारण से ही तो मैंने घर छोड़ा, और तू पराई बन गई—इस प्रकार कोई पुरुष वेश्या को उपालम्भ दे रहा है ॥ ३४१ ॥

१ विट—भक्षितनिजबहुविधवा परविभवक्षपणदीक्षिता परचाट् ।

धनिता वेश्यावेश स्तुतिमुखा मुखा विटारिचन्त्या ॥

कक्षाविज्ञास धोमेन्द्र कृत ।

मात्रा द्विपदी—शुद्धा खण्डा च मात्रा च सूर्योक्त धनुविधा ।

द्विपदी करखाख्येव तत्त्वेन परगायते ॥ भरत-नाट्यशास्त्र ।

स्वभावसदृशा में द्विपदी का उल्लेख आया है ।

उपितामपरेण सम वृद्धविटाना पुर पराजित्य ।

त्याजयति स्म भुजग कश्चिद् गणिका द्विगुणभाटीम् ॥ ३४० ॥

मिसी वेश्या ने पहले एक कामी से मूल्य लेकर पीछे से दूसरे के साथ समय बिताया । इसकी शिकायत पहले कामी ने वृद्ध विगों की पचायत के सामने की । उनके निर्णयानुसार दण्ड रूप वेश्या से दुगुना मूल्य पहले कामी को मिला ॥३४०॥

दृष्ट्वा त्वया विशेषक बलयकलापी शशिप्रभाभुजयो ।

याद भण भण कीटक् कानु तर सोमया दत्त ॥ ३४३ ॥

मिसी की परस्पर बातचात—शशिप्रभा की मादुग्री में बलयकलापी—आभूषण देकर एक निट दूसरे निट से पूछ रहा है कि ऐसा आभूषण कहाँ से और फर लाकर तुमने सोमा वेश्या को दिया है, सच कहो, येलो ॥३४३॥

अथ चतुर्थो द्वित्रसञ्जीनाम्बरयुगलस्य वृत्तस्य ।

तदपि परुषाभिधाना वद मदनक किं करोम्यत्र ॥ ३४४ ॥

आज चार दिन हो गये चीनाशुक (चीन देश की रेशमी) का जोड़ा दिये, परन्तु हे मदनक ! वह निम्नुर अभी तब भी सीधी नहीं होती—अनुकूल नहीं होती, बोल क्या करूँ ॥३४४॥

स्नेहपरा मयि केली, फलहसक, निन्तु राक्षसी तस्या ।

माता नात्मीकृत् वर्षशतेनापि शम्यते वापा ॥ ३४५ ॥

हे फलहसक ! केली तो मुझे चाहती है, परन्तु उसका राक्षसी माँ एक सौ साल में भी अपनी नहा की जा सकती—नहीं पसीजती ॥३४५॥

मुमन कुटुम्बवास सर्जोर्तु किमिति तिष्ठसि विचिन्त ।

अथ तव दयितिराया किञ्चलक नर्तनानसर ॥ ३४६ ॥

हे किञ्चलक ! पूल और नसर से मुगसित बख को तैयार करो, क्यों निश्चित बैठे हो, आज तेरी दयितिरा [प्याय] के नाचने का असर है—प्रोग्राम है ॥३४६॥

यदि नाम पच द्विवमास्त्वयि कुरुते प्रेम धनलयं दृष्ट्वा ।

तदपि न रागवती सा, वन्द्यते हि कृया गर्व ॥ ३४७ ॥

१. पञ्चपङ्क्तयो—पञ्चकलापी कटक तथा स्थाप्यप्रवरकम् ।

राजूर कासापितिक बाहुनावाविभूषणम् ॥

मत्त नात्र्यगच्छ २११२८

२. मृदङ्कटिक में भी छात्रा है—

स्त्रीनिर्विमानिगानी कापुस्थायी विवर्धने प्रदत्त ।

हे कन्दर्पक ! तुम्हारे थोड़े से धन को देसकर यदि वह पाँच दिन से तुम्हारे साथ प्रेम करने लगी है, तो भी वह तुम पर रीझी नहीं, क्यों झूठा घमण्ड करते हो ? ॥३४७॥

जीवन्नेव विलासक परिहर दूरेण मूढ हरिसेनाम् ।

बद्धावेशस्तस्यां व्यापृतपुत्रो महाविपमः ॥ ३४८ ॥

हे विलासक ! अपना कुशल चाहते हो तो दूर से ही हरिसेना की देहली छोड़ दो । उससे प्रेम करने वाला व्यापृत का पुत्र बहुत ही बुरा है—मार डालेगा ॥३४८॥

केसरया क्षणवृत्तं कृत्यांशुकमुपरि कामिजालस्य ।

स्तब्धप्रीवं भ्रमत्तश्चन्द्रोदयं पश्य माहात्म्यम् ॥ ३४९ ॥

जन्मदिवस या होली आदि किसी उत्सव में मिले बल्ल को ऊपर दुपट्टे के रूप में ओढ़कर केसर नाम की वेश्या गर्दन को ऊँची करके ( घमण्ड के साथ) कामी जनों के सामने घूम रही है । चन्द्रोदय के समान उसका माहात्म्य देख (जिस प्रकार चन्द्रोदय के देखने का माहात्म्य है, उसी प्रकार इसके देखने का भी माहात्म्य है) ॥३४९॥

कौमारकं विहन्तुं रतिसमये मदनसेनायाः ।

इच्छामि किन्तु तस्या मात्राऽतीव प्रसारितं वदनम् ॥ ३५० ॥

मदनसेना के साथ प्रथम समागम करके उसका कौमार्य तोड़ना ( नधुनी उतारना ) चाहता हूँ । किन्तु उसकी माता बहुत मुँह बारही है—धन माँगती है ॥३५०॥

विभ्रम कियतस्तपसः फलमेतद्यदुपभुज्यते मदिरा ।

स्वफरेण पीतशेषा मदधूर्णितमदनसेनया वृत्ता ॥ ३५१ ॥

मद्यपान से उन्मत्त बनी मदनसेना के; अपने हाथ से, पीने से बचा दी हुई मदिरा; जिन्हें पीने को मिलती है; उनका यह विभ्रम-मद्यपान बड़े भारी तप का फल है ॥३५१॥

१. वंश्या और क्षतापल्लव एक समान हैं—

वैश्याक्षताः सरागं पूर्वं तदनु प्रक्षीनतनुरागम् ।

पश्चादपगतारामं पश्यन्वमिव दुरायन्ति निमग्नचित्तम् ॥

२. मद्यपान—रति के पूर्व और पश्चात् दोनों समय करने का उल्लेख है—

यथा—आचार्यत्वं रतिषु विव्रसन्मन्मथप्री विव्राता

होमप्रदूषप्रशमकुशलाः शीघ्रवश्रद्धाराताम् ॥ भाष. ९।८

(ख) धरतनुवत्प्रसंगतिसुगन्धितं सरकं ;

मुत्तमिव पद्मरागमणिमासवरूपधरम् ।

भवति रतिभ्रमेण च मद्यः पिबतोऽल्पमपि ;

क्षयमत भोजनः परिहरन् न शयीत परम् ॥ अष्टांगद्वय ७।८८

कुवलयमालानिलयो लीलोदय किमिति सम्प्रति त्यक्तः ।

किं विदधाममनमिन्ध्रातर्दाम्वा विना मूल्यम् ॥ ३५२ ॥

हे लीलोदय ! कुवलयमाला के घर जाना क्यों छोड़ दिया । हे मित्र !  
पैसे के बिना उम चेटी के यहाँ क्या करूँ ॥ ३५२ ॥

मुपितागोपयिभूतेरिन्दीवरकम्य यामिनो याति ।

संचाहयतः सम्प्रति मंजोरक तिलकमंजरीचरणौ ॥ ३५३ ॥

हे मंजोरक ! इन्दीवरक की सम्पूर्ण सन्तु को खींचकर अब उसे अपना दास  
बनाकर, सारी रात उससे पैर धुवाते हुए तिलकमंजरी रात बिताती है ॥ ३५३ ॥

अथापि बालमायं निग्निलं न जहाति बालिका तदपि ।

प्रीदिन्ना मकरन्दक सरला ललना अधः कुण्ठते ॥ ३५४ ॥

आनस में चेष्टियों की घातचाल—

बालिका नाम की धेरा तो आबू माँ बालिका बनी हुई है, फिर माँ; हे  
मकरन्दक ! यह आने प्रीदि भाव में सब स्त्रियों को नीचा दिग्याती है ॥ ३५४ ॥

कुण्ठजे गत्या वक्ष्यमि तं निर्दयचित्तनर्तनाचार्यम् ।

हारा मुकुमारतनुः किमियं सम्मर्दकारिता भवताम् ॥ ३५५ ॥

हे कुण्ठजे ! उस कठोर मन वाले नर्तनाचार्य को बखर रहो कि यह हारा—  
अति कोमल शरीर का है, इसको कुनने क्यों माय, अपना अधिक शिद्दा देकर  
क्यों दुःखी किया ॥ ३५५ ॥

(ग) 'यामेवने मपुरातिफलम्'—मेघदूतः १।५

(घ) 'रितिकांठे मुखं धीर्या शुद्धमान्दके शुनाम् ॥'

१. छेमेन्द्र ने कहा है—

ह्येतस्य वरवास्ति न भोगर्प्यम् किं भुविष्या भवने करोति ।

॥ यस्य हस्तं वरनृपमस्ति स किं समारोहति नात्रमये ॥

समयमावृत्त-२।८२

(ख) 'यूनामश्चिन्नानां' का वा-पुः वारमुन्दरीवोप्याम् ।

कारांमरणद्वोप्याः कौलेयस्यापि कोर्षा सम्बन्धः ॥ (कौट्य कुष्ठा)

२. प्रीति-प्रगल्भा के भेद—रमण्यया गाडवाण्यया ममस्तरतकोरिदा ।

भारोन्नप्रादरकोटा प्रगल्भास्तरतनादिका ॥

सा० ६० ३।६०

(ग) 'प्रीति द्यविद्वन्द्वरा पदप्रासिद्धां विद्वत्'—

नि सारोऽभिनिवेश शुक्रशावकपाठने मुरतदेनि ।

तिष्ठति वहिरुपविष्ट प्रतीक्षमाणस्तव प्रेयान् ॥ ३५६ ॥

हे मुरत देनि ! इस तोते के उच्च का पढ़ाने में मनोनियोग करना व्यर्थ है ।  
तेरा प्रेमी तेरी प्रतीक्षा में बाहर बैठा है ॥ ३५६ ॥

वीणावादनरिन्ना पतिताऽऽस्ते वासभवनपर्यङ्के ।

उत्थापय सा त्यरित स्मरलीला मत्त आयात ॥ ३५७ ॥

स्मरलीला वीणा बजाने से थक कर घर में पलंग पर पड़ी है, दासी ! उसको  
बल्दी से उठा, उसका प्रेमी मत्त ( नाम है ) आया है ॥ ३५७ ॥

किमिदं यथास्थितस्त्व तव माधवि यन्मुहुर्वदन्त्या मे ।

परिधत्से नाभरण श्रीविग्रहराजसूनुना दत्तम् ॥ ३५८ ॥

नामिका ये प्रति माता का कहना—हे मायाव ! तुझे क्या हो गया, मेरे  
बार बार कहने पर भी तू श्री विग्रहराज पुत्र क दिये आभूषणों को नहा पहन  
रही है ॥ ३५८ ॥

ईदृक्शून्यमनस्त्व किं कुर्मो मातरिन्दुलेखाया ।

पानक्रीडासक्त्या पतिताऽपि न चेतिता कनकताडी ॥ ३५९ ॥

कामुक को मुनाते हुए, दासी का माता को कहना—“इन्दुलेखा की माँ !  
हम क्या करें—तू तो ऐसी लापरवाह है कि पानक्रीडा में—मद्यपान में लगी  
होने पर तूने गिरती हुई कनकताडी-सोने की लगड़ी का भी खयाल नहीं  
किया” ॥ ३५९ ॥

नकुल पयो न पायित इति रोपवरादिय हि दुःशीला ।

नाभाति कामसेना पुन पुन प्रार्थ्यमाना ॥ ३६० ॥

घेनी का कामी को मुनाकर माता को कहना—तूने नेकले को दूध नहीं  
पिलाया, इससे गुस्सा होकर बार-बार कहने पर भी ( रुशामद करने पर भी )  
कामसेना नहा गया रही है ॥ ३६० ॥

श्रीजलमुक्तपरिपालितं उर्णायु किमनया विनेतव्य ।

मुकुला मुक्तमुलम्बितिरहनिश मेघपापणे लम्बा ॥ ३६१ ॥

भीमन के पुत्र से पाला हुआ मदा कश इसने अवश्य पीतना है, जिससे  
मुकुला सब प्रकार के मुग्धा को छोटकर रात दिन मैद के पालन में लगी  
है ॥ ३६१ ॥

आताग्रतामुपगतमुन्दून कस्तल च तत्र ललिते ।

मा पुनरतिचिरमेव प्रविधाम्यसि वन्दुवक्रीडाम् ॥ ३६२ ॥

कामी के प्रति माता का बचन—

हे ललिते । गेंद खेलने से तेरा हाथ लाल हो गया और सज भी गया ।  
इसलिए बहुत देर तक गेंद खेलना छोड़ दो ॥३६२॥

अभिराम वनकभाटी प्रथममियं गृह्यते, समुत्पन्ने ।

स्नेहे तु कुसुमदेव्यास्त्वं प्रभवसि जीवितस्यापि ॥ ३६३ ॥

कामी के प्रति माता का कहना—प्रथम मिलन में सोने का शुल्क—  
(अधिक पैसा) लिया जावा है, पीछे स्नेह उत्पन्न हो जाने पर तुम कुसुम  
देवी के जीवनभन हो जाओगे ॥३६३॥

प्रदण्णफमपय तावद्यदि कौतुकमुपरि चन्द्रलेखायाः ।

निर्यर्तितकर्तव्यो दास्यसि स्त्रियथाभिमतम् ॥ ३६४ ॥

चन्द्रलेखा के ऊपर यदि मन लगा है, तो पहले प्रदण्ण (पुरस्कार या  
रत मूल्य) दे दो । समागम कर चुकने के पीछे (काम हो चुकने के पीछे)  
जो इच्छा हो वह फिर दे देना ॥३६४॥

न परमदाता मातः सनुरसौ वासुदेवभट्टस्य ।

निर्लजः शठवृत्तिः पुनः पुनर्वायमाणोऽपि ॥ ३६५ ॥

क्षपयति वसनानि सदा हठेन सकलानि सुरतसेनायाः ।

न ददात्येकामूर्खामूरणः परमति कार्पासम् ॥ ३६६ ॥ ( युग्मम् )

वासुदेव भट्ट का यह लड़का बट्टा देने वाला नहीं है ( थोड़ा देता है ),  
बार-बार घर से निकालने पर भी नहीं निरलता, उड़ा हटो और निर्लज है ।  
सुरतसेना के सन यज्ञों को अनर्दस्ती लाँचता है, इसलिए हे माता ! इसे  
किसी प्रकार से निरालो । मेदा ऊनरा एक रोया तो देवा नहीं, परन्तु रोज  
फास लावा है ( निनीले राता है ) ॥३६५-६६॥

भगिनि न मुञ्चति वेश्म क्षणमपि पटराजपुत्रोऽमौ ।

भग्नान्यनरावसरो, नग्नेनापिप्रितं तीर्थम् ॥ ३६७ ॥

१—कुटुनीदा का यथेन इत्युक्तचित्त के लड़े उच्छ्वास में है ।

२—शठ—बावैव मधुरो यस्तु कर्मणा मोषपादयेत् ।

पोषिता कश्चिदप्यर्थं स शठः पतिव्रीत्तिनः ॥

निर्लज—वार्यमाणो हठवर यो नारीमुपसर्पति ।

सचिदः सापराधश्च स निर्लज इति स्मृतः ॥

भरतनाट्य-शास्त्र—३१५९८, ३०१.

अप्रागन्त्यं व्यसनं, धैर्यमकार्यं, विनेन उपवासः ।

हेपणमगुणो यमिंमन्तुरसं प्रभुतं साध्याम् ॥ ३८० ॥ (कुल्लम्)

चण्ड वेग काम ने जो योग्य था, अतुल्य प्रीति व निष् जो उचित था, युवावस्था के कारण जो मुन्दर था, जीवन का जो पल था—वर्तमानन्द जो था, अविनय ही जिनमें शांति है, अश्लान आचरण ही जिनमें अनियम प्रशस्तीय है, निर्भयता हा ( दाउपन ही ) जहाँ मौखिक गिना जाता है, चञ्चलता ( एक स्थिति में स्थिर न रहना ) हा जहाँ पर गौरव माना जाता है, जहाँ पर पैरों का पकड़ना—नीटना ही अतुल्य है, ताड़न-मृगणात हा उपकार है, दाता से पावना—हर्ष आनन्द ने निष् है, कुच, निग्न आदि पर नगा से क्लेशजन उत्पत्ति का कारण है, शरीर का निरीदन—जोर से दबाना ही जहाँ प्रयत्न है, अविशय चाह व साथ सुग्न अथवा मुग्न से बाहर आने जिज्ञा का शुष्यन, निर्दयता के साथ अगा का दबाना, नायिका ने शरीर में प्रविष्ट होने की इच्छा ( उससे मिलकर एक हो जाना ), दृढ़ता से आलिङ्गन जिनमें रहता है, जिस

१. सौन्दर्यं प्रीतिसरस्तिरकण्डवेगोऽयं बीजनम् ।

एकैकमनुरागाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

२. यदाप्रसन्न का उल्लेख पचसायक पच अनगरग में ही मिलता है—अन्यत्र नहीं देखने में आया । अनगरग में—

स्निग्धा घना हुञ्जिननीलवर्णा केशा प्रशस्तास्त्वर्ध्वीयनानाम् ।

मेममवृद्धयै विधिनैव मन्द प्राज्ञा नरैरनुम्यनदानकाले ॥ ११३०

३. हास्यैवंधोभिर्घनमुष्टिवातेनैकश्लेष्टेदन्तनिपीडनैरथ ।

विश्वासवाचा भणिते प्रसिद्धैर्वंश नयेत प्रियवाक् प्रमदभाम् ॥

शृङ्गारदीपिका ॥ १२०

बाहुपीडनकचप्रहणाभ्यामाश्लेन भयदन्तनिपाते ।

बोधितस्त्वनुग्रहस्तदधीनामुन्मीलविशद्विषयेषु ॥ माध १०१२

कचप्रहमनुग्रहं, दशमखण्डनं मण्डनं, दशज्ञानमवज्ञनं मुखरसापेक्ष तपेणम् ।

नकार्यनमसर्दनं ददमपीडन पीडनं, करोति रतिसंगरे मरुद्वेदन कामिनाम् ॥

४. जिह्वाचुम्बन का भी उल्लेख नैपथ्य में मिलता है—

‘प्रसृत न त्वया सत्त्वधम्मोहनविमोदित ।

अनृतसोऽधरपानेषु रसनामपि तव ॥’ २०१०८

आलिङ्गन में—क्षीरजलकाख्यालिङ्गन का उल्लेख है—जिस प्रकार से दूध और पानी मिलकर एक हो जाते हैं, उसी प्रकार से नायक नायिका के शरीर में एक हो जाना चाहता है—

‘भावास्तत्ता कामुका कामिनीवामिच्छन्त्यङ्गे वग्मसीव प्रवेष्टुम् ।’



सम्भोग को बहुत से अनङ्गों ने किया ( एक से करना असम्भव था ), बहुत से रागों ने जिसे परम उत्कर्ष पर पहुँचाया, प्रेम्णों ने जिसे निश्चल बनाया, शृङ्गारों ने जिसे विकसित किया, लज्जा आदि से अप्रागल्भ्य घृष्ट न होना ही जिसमें व्यसन-दूषण है, धैर्य-पीडा आदि का सहन करना ही जिसमें अस्वार्थ-कुर्म होता है, विवेक-वर्त्तव्य अकर्तव्य विचार ही जिसमें उपपात कार्य का नाश करने वाला है, हेषण-लज्जा करना-शर्माना ही जिसमें दोष होता है, ऐसा सुख सम्भोग सुन्दर-सेन और हारलता ने प्रारम्भ किया ॥३७५-८०॥

प्रारम्भ एव तावत्प्रज्वलितो धगिति मनसिजो यस्मिन् ।

तस्य विशेषावस्था वक्तुमशक्या । प्रवृद्धस्य ॥ ३८१ ॥

जिस सम्भोग में काम प्रारम्भ में ही घग्घग् शब्द के साथ ( आग का शब्द ) जल गया, उसके बढने पर उसकी अवस्थाओं का वर्णन करना असम्भव है ॥३८१॥

सहजरसेन जडीकृतमिति यूनोः कामशास्त्रनिर्णति ।

नानाकरणप्रामे लालित्यमवाप पाण्डित्यम् ॥ ३८२ ॥

सहजरस-शृङ्गार रस से कुण्ठित होने पर हारलता और सुन्दरसेन दोनों का कामशास्त्र से अनुमोदित पाण्डित्य नाना प्रकार के रतिबन्धों में ( अनेक प्रकार के रतिबन्धों में ) मनोहर बन गया ॥३८२॥

अभिषेयमनारयेयं प्रविचार्य ब्रह्मादनीयमविषयम् ।

न बभूव तयोस्तस्मिन्नारब्धे सुरतपरिमर्दे ॥ ३८३ ॥

सम्भोग के प्रारम्भ होने पर उनके लिए अश्रवणीय कुछ नहीं रहा, सोच विचार का प्रभ नहीं रहा, गौरवीय कुछ नहीं बचा, मुनने या सहने अयोग्य कुछ नहीं था ॥३८३॥

अत्यभ्यस्ता थाऽन्या सुरतवधौ विविधचातुपरिपाटी ।

तामाललविशीर्णा चकार सहजः स्मरावेगः ॥ ३८४ ॥

अनेक प्रकार से गुशामद करने का जो दम अन्यत्र बहुत प्रकार से सफल बना था ( अपना अनेक प्रकार से गुशामद करने की जो रूप रेखा मन में पहले से सोची थी ), उसको द्युभाषिक-अकृत्रिम कामवेग ने छिन्न भिन्न बना दिया, तोड़ दिया ॥३८४॥

सद्भावरागदीपितमदनाचार्योपदिष्टचेष्टानाम् ।

कः परिगणनं कर्तुं रतिचक्रादिष्टमणयोः शक्तः ॥ ३८५ ॥

सदभिप्राय और प्रेम से उत्साहित काम ही कथित चेष्टाओं का अध्यापक है ।  
रतिचक्र—सम्भोग में लगे स्त्री पुरुष की चेष्टाओं को कौन गिना सकता है? ॥३८५॥

बाला मृदुगात्रलता दृढपुरुषाक्रान्तविग्रहा न पराम् ।

न व्यथिता, मुदमाप, प्रभवति खलु चित्तजन्मन शक्तिः ॥३८६॥

कोमलांगी बाला भी दृढ पुरुष द्वारा शरीर के पीड़ित करने पर भी जो पीड़ा का अनुभव नहीं करती, अपितु उल्टा प्रसन्न होती है, यह कामदेव की शक्ति का ही प्रमाण है? ॥३८६॥

किं रमणीं रमणोऽविशदुत रमण सा न जानीम ।

स्यावयवावगमस्त्वप्रकाशमगमत्तयोस्तदा निपुणम् ॥ ३८७ ॥

उनके परस्पर सम्भोग से यह भी पता नहीं चला कि नायिका में नायक मिल गया अथवा नायक में नायिका मिल गई । उनमें अपने अपने अंगों का ज्ञान भी नहीं रहा, अंगों का ज्ञान बहुत बारीकी से देखने में समझ में आता था । इस प्रकार से उन दोनों में देहसायुन्यरूप ग्रहीत हो गया? ॥३८७॥

१ आचार्य का लक्षण—उपनीव तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विज ।

सद्गच्छ सरहस्य च समाचार्यं प्रचक्षते ॥ मनु० २।१४०

कामशास्त्र में कहा है—शास्त्रार्थी विषयस्त्रावद्यावगमन्नुत्सा नरा ।

रतिचक्रप्रवृत्तस्य नास्ति शास्त्रं न च क्रमः ॥ २२.

नास्त्वत्र गणना काचिन्न च शास्त्रपरिग्रहः ।

प्रवृत्ते रतिसंयोगे राग एवात्र कारणम् ॥

स्वप्नेष्वपि न दृश्यन्ते ते भावास्ते च विभ्रमाः ।

सुरतव्यवहारेषु ये स्युस्तत्क्षयकषिरताः ॥

कामसूत्र २।७

१. (क) या सा चन्दनपङ्कमप्रपतितं भारं गुरुं सम्यते,

मुष्ठा कोमलपद्मपत्रशयने श्लेढ पर गच्छति ।

सा सर्वाङ्गभरं प्रियस्य सहते केनाऽप्यहो हेतुना,

चित्र पश्य किमत्र चित्रमथवा कामस्य किं दुष्करम् ॥

(ख) इसी से किसी कवि ने कहा है—‘अचिन्त्यशक्तिमंगवाननङ्गः ।’

३. अमरक का पद्य इस सम्बन्ध में है—

आरिखण्डा रमसाद् विस्तीर्यत इवाक्रान्ताऽप्यनर्गुणं या,

यस्याः कृत्रिमचण्डयस्तुङ्गरणाकृतेषु खिन्नं मनः ।

कोऽयं काऽहमिति प्रवृत्तमुराया जानाति या नान्तरं,

रन्तु सा रमणी स एव रमणः शेषौ तु जायापती ॥

तस्या निमीलितदृशो नित्यन्दतनोर्वभूव मुरतान्ते ।

लिंगमनंगन्द्वाया जीविततत्तानुमानस्य ॥ ३८८ ॥

सम्भोग तृप्ति का वर्णन—सम्भोग के पीछे उसकी आँखें बन्द हो गईं, शरीर में नित्यन्दता आ गई ( शरीर निश्चल—मृत की भाँति हो गया ), शरीर में व्याप्त काम जन्य कान्ति हो उनके जीवित होने का प्रमाण था, उसने ही जीवित होने को अनुमान होता था ॥३८८॥

श्रमजलविन्दूपचिता वृत्तस्मरणेन जातवैलक्ष्या ।

सा शुशुभे विपरीतपर्याकुलकेशभूषणा नितराम् ॥ ३८९ ॥

विपरीत रति के कारण पसंने में स्नान की हुई, पुरुषान्वित निद्रा को स्मरण करके लज्जित, विविरे हुए बालों से वह अतिशय शोभित हुई ॥३८९॥

निर्ध्याजार्पितवपुषोर्निर्गृतिमयमेव गणयतोर्विश्वम् ।

क्षणदा विरराम तयोर्त्वाणामाद्योरेव ॥ ३९० ॥

किसी छद्म या दखना के बिना परस्पर शरीर का अर्पण करते हुए, संसार को मुक्तमय—आनन्दरूप मानने हुए, उन दोनों की आत्मा के श्रृणु रहने पर ही ( अतृप्तानस्था में ही ) रति समाप्त हो गई ॥३९०॥

मोहनादिमर्दासिन्हा विजृम्भमाणा मरलद्गतिमन्दम् ।

निद्राकपायिताक्षी हारलता वासवेरमनो निरगान् ॥ ३९१ ॥

(ल) मुरते निराकुलाऽसौ व्रवतामिव वाति नायकस्याह्ने ।

म च यत्र विवेक्षुमर्षं शीघ्रं काङ्क्षं किमेतदिति ॥ शब्द. १२।१२

१. नारी विमुह्यतुमुषु ब्रह्मा रतान्ते, नृत्यं करोति बहुवृत्तानरोदने च ।  
वैकल्पमेति मुकुलीकृतचालेना शङ्कोति नो किमपि सौन्दर्यमतिपासम् ॥

भंवरंग १।११

(ल) 'यस्तथा वपुषि, भीषणं द्योः, मूर्धना च रतिमावज्जयम् ।'

रतिरहस्य १०।१४ ( रतिमात्र मुरतनृप्ति );

२. जातभयं बोधय पतिं पुरन्ध्री स्वेष्टात् एवाय रतेष्वनृषा ।  
कन्दर्पवेगाकुक्षिण निजान्तं कुर्वीत नृपयै पुरपायितं सा ॥ भंवरंग १०।११
३. इसमें भवभूषिका श्लोक प्रसिद्ध है—  
किमपि किमपि मन्दं मन्दमासक्तियोगाद्विरचितकपोलं अव्यञ्जोरकमेव ।  
धर्मादिष्वपरिराम्प्याहृतैकैकशोप्योरविदितगल्पाना रात्रिरेव प्यरंसोत् ॥

उत्तररानचरित १।२७

तस्या निमीलितशो निस्यन्दनोर्बभूव सुरतान्ते ।

लिंगमनंगच्छाया

जीवितसत्तानुमानम् ॥ ३८८ ॥

सम्भोग वृत्ति का वर्णन—सम्भोग के पीछे उसकी आँखें बन्द हो गईं, शरीर में नित्यन्दता आ गई ( शरीर निद्राचल-भूत की भाँति हो गया ), शरीर में व्याप्त काम वन्ध कान्ति हो उनके बाँधित होने का प्रभाव था, उससे ही बाँधित होने को अनुमान होता था<sup>१</sup> ॥३८८॥

श्रमजलविन्दूपचिता वृत्तस्मरणेन जातवैलक्ष्या ।

सा शुशुभे विपरीतपर्याकुलकेशमूपणा नितराम् ॥ ३८९ ॥

विपरीत रस्ति के कारण पलंग में स्नान की हुई, पुरुषावित विधि को स्मरण करने लक्षित, निर्वारे हुए बालों से वह अविश्रय शोभित हुई<sup>२</sup> ॥३८९॥

निर्व्याजार्पितयपुपोर्निर्गुतिमयमेव गणयतोर्विश्वम् ।

सुखदा विरराम तयोर्त्तायास्तुयोरेव ॥ ३९० ॥

बिना छद्म वा दड्डना ने बिना परस्पर शरीर का श्रृंगार करते हुए, ससार को मुक्तकर—आनन्दरूप मानते हुए, उन दोनों की आकाङ्क्षा के अपूर्य रहने पर ही ( अतृप्तानस्था मे हा ) रात्रि समाप्त हो गई<sup>३</sup> ॥३९०॥

मोहनिविमर्दस्तिन्ना रिज्जम्भमाणा स्रजलद्गतिर्मन्दम् ।

निद्राकषायितार्त्ता हारलता वासरेगमनो निरगान् ॥ ३९१ ॥

(स) सुरते निराकुलशो द्रवतामिव याति नायकस्याष्टे ।

न च यत्र दिवेक्षुमर्षं कोऽयं काष्णं किमेतदिति ॥ रत्नद. १२।१२

१. नाती विमुष्टदुःखेषु अत्रा रतान्ते, नृत्यं करोति बहुवचनतोदने च ।  
वैकल्पमेति मुकुलीहृत्वास्नेहा शमोति नो किमिति सोदुमतिप्रपातम् ॥

अनंगरंग ३।११

(स) 'स्रजलता वयुति, मोक्षमं द्यौः, मूर्ध्नि च रतिभावप्रत्ययम् ।'

रतिरहस्य १०।१७ ( रतिभाव सुरतवृत्ति );

२. जलभ्रमं क्षीय्य पतिं पुत्रयो स्वेच्छात् एवाय रतेष्वनृता ।  
कन्दपर्वगाकुलिता निशान्तं कुर्वन् नृपयै पुदरापित सा ॥ अनंगरंग १०।३१
३. इसमें भवभूतिका श्लोक प्रसिद्ध है—

किमिति किमिति मन्दं मन्दमस्तन्ययोगाद्विरचितकपोल उत्तरोत्तमेव ।

कान्तिविषयपरिग्रहप्राप्तैर्दृष्टैर्दृष्टोत्तमविदितप्रधाना रात्रिरेव व्यरंसात् ॥

उत्तरानुवर्तित १।२७

मुरत जन्य पीनन से थकी, जम्माइ लेती हुई, नींद के कारण लड़खड़ाती चाल से, आँखों में नींद भरी हारलता सम्भोग गृह से धारे धारे बाहर निकल गई ॥३६१॥

परिचित्तपार्श्वगताऽह, तेन सम पानभोजनं कृत्वा ।

नीता निशा कथाभिर्मोहनकार्यं तु यत्किञ्चित् ॥ ३६२ ॥

निचलो बारह आँखों में वरयावीथी की चचा का उल्लेख—

कोई नारिका कह रही है—मैंने अपने परिचित के बगल में बैठकर, उसने साथ में खान पान करने, बातचीत में ही सारी रात बिता दी, मुरत कार्य तो थोड़ा सा ही नाम मात्र का हुआ ॥३६२॥

अविदग्ध श्रमकठिनो दुर्लभयोपि शुभा जडो विप्र ।

अपमृत्युरुपप्रान्त कामिव्याजेन मे रात्रौ ॥ ३६३ ॥

बूझती वरया कह रही है—अविदग्ध (अचतुर), परिभ्रम के कारण कठोर शरीर, स्त्रियों जिस दुर्लभ हैं इसी से अति वेचैन बना, युवा, मूर्ख कामी ब्राह्मण मृत्यु रूप से रात्रि में मेरे पास आया ॥३६३॥

नेच्छाविरति, क्षणमपि, न च शक्तिर्वस्तुशून्यरतियत्नै ।

केवलमलमथाह कदर्शिता वृद्धपुरुषेण ॥ ३६४ ॥

तीसरी वरया कह रही है—वृद्ध पुरुष में मुरत की इच्छा एक क्षण के लिये भी कम नहीं होती थी, सम्भोग की शक्ति थी नही, सम्भोग शक्ति के प्राप्ति के लिये नाना प्रकार के प्रयत्न किये । आज तो इस बूढ़े ने सारी रात मुझे व्यर्थ में ही पीड़ित किया ॥३६४॥

मदावशादभियोक्तिर मृतकल्पे तल्पभागमग्नाया ।

अविरोधितनिद्राया सुप्तेन मे यामिनी याता ॥ ३६५ ॥

१ वृद्धरत वर्यज—यत्नोत्पापनमाग्रनि सङ्गरच्चर्मावरोपरचेत्,

अश्वच्छेदसि दुःखान्तरवर्धनव्यर्थोद्यमाक्षिगने ।

लज्जापापिनि विद्यामानयुवतौ वृद्धस्य कृच्छ्रे रते,

यत्स्यात् संलपतिमान्ध, किन्तु हसित युक्त किमारादितुम् ॥

(ख) याज्ञा तन्वी मृदुरियामिति त्यज्यतामत्र शका

काचिद् दृष्टा भ्रमरभरतो भजरी भज्यमाना ।

तस्मादेया रहसि भवता निदंय पीडनीया

मन्दाक्रान्ता वितरति रस नेत्रुमध्य समस्तम् ॥

देश एवं स्वभाव का ज्ञान न होने के कारण किसी घूर्त्त एवं धमण्डी राजपुत्र से किये हुए व्यवहार की जो मजाक हमारी भाण्डों ने की, उससे हम बहुत दुःखी हैं ॥४००॥

प्रियमखि लोकसमन्तं नगरप्रभुणा हठेन नीताऽस्मि ।

एवं तु नो कदाचिद्विगुणार्थप्रार्थने कृतो न्यायः ॥ ४०१ ॥

हे प्रियसखि ! नगराध्यक्ष ने मेरी इच्छा के विरुद्ध जबर्दस्ती मुझे लोगों के सामने लाकर ( पञ्चायत से न्याय की माँग करके ) न्याय नहीं किया, अच्छा नहीं किया । इस प्रकार करके उसने मेरा अपमान किया ॥४०१॥

आकर्षन्ती जघनं व्रजसि यथा बिलिप्तिता नखैस्तिलशः ।

मन्ये तथोपभुक्ता केरली केनापि दाक्षिणात्येन ॥ ४०२ ॥

नखों द्वारा अच्छी प्रकार से घसोटी हुई अपनी बघनों की रींचती हुई ( कठिनाई से पैर उठा कर चलती हुई ) चल रही है, इससे मैं अनुमान करती हूँ कि इस केरली ( वेश्या ) का किसी दाक्षिणात्य ने उपभोग किया है ॥४०२॥

अधरे बिन्दुः, वण्टे मणिमाला, स्तनयुगे शशप्लुतकम् ।

तव सूचयन्ति केतकि कुसुमायुधशाल्मपण्डितं रमणम् ॥ ४०३ ॥

हे केतकि ! तेरे अधर में बिन्दु दश, गले में मणिमाला, स्तनों पर शशप्लु-  
तक, कामशाल्म के पण्डित के साथ तेरे रमण का सूचित करता है ॥४०३॥

१. दाक्षिणात्य—मगध से दक्षिण में, उत्तर देश के निवासी ने उपभोग किया, यथा—विपरीतरतःमिच्छापिच्छी गतलज्जा नखदानतोपिच्छी ।

नितरामनुरागशालिनी मदनार्त्ता कथितेयमुत्कलो ॥ अनंगरंग ७।९

२. बिन्दु—अगले दोनों से निचले ओठ पर किया क्षत, मणिमाला-दन्तावलि से निष्पादित दशनचिह्न पंक्ति, शशप्लुतक—नखविलेखन का एक भेद, यह नखविलेखन दीर्घ काष्ठ तक रहने वाला, परोक्ष में भी नायिका कामुक की स्त्रीका स्मरण करती है—

अधरे विषके च कामिना रक्षुयमेन विक्षण्टने कृते ।

इति बिन्दुद्वीरितोऽसिलैर्दशनैः स्यात् किञ्च बिन्दुमात्रिका ॥

अनंगरंग ९।१४

रेखावृत्ता सर्वनरैरधस्तादंगुष्ठमाधाय तु चूचुके वा ।

मयूरपादं किञ्च तं वदन्ति शशप्लुतं सर्वनरैः कुचाग्रे ॥

अनंगरंग ७।१७

‘समैव सर्वैर्नखैः मुखमैस्तज्जैः किलोक्तं शशकप्लुताद्यम् ॥’

वज्रपायक ७।२३

कहाँ तो पुरोडाश ( सोमस या हरि ) एव वेद मन्त्रों की ध्वनि से परित्रित तुम्हारा यह भुग्न और कहीं मदिरा और आसव से वासित वेश्याओं के मुखों का पान<sup>१</sup>, कहीं कुशा-दर्भ के उखाड़ने में सहसा उत्पन्न होने वाली वेदना पीडा का चमत्कार और कहीं वेश्याओं के साथ प्रेम युद्ध करने में प्रीति के लिये किये उठने निर्नय नख प्रहार<sup>२</sup>, कहीं मार्हपत्य, आहमनीय और वक्षिणादि तान श्रमियों के धूम से उड़ाये आँसुओं से घुला तुम्हारा भुग्न और कहीं वेश्याओं से नित्य तिरस्कार के कारण शोक से व्याकुल आँसुओं से घुला यह भुग्न, कहीं वषट्कार ध्वनि, विप्रोचित आस्थापन, अध्ययन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह इन छ कर्मों से शोभित उच्चरोप<sup>३</sup>, और कहीं सामान्य वेश्या द्वारा रतिफल में भणित ( अत्यन्त ध्वनि ) की मुनने की उत्सुक्ता, और कहीं आचार्य द्वारा पतली लता द्वारा बाँटना नित्य जाने पर सज्जोम पैचैनी से होने वाला कम्पन और कहीं दुषित धारवेश्या के निष्ठुर पाद प्रहार का सहन करना, कहीं स्मृति एव शास्त्र म प्रतापे व्रतों की करते हुए हरिण चर्म-श्रजिन चर्म का प्रानरण<sup>४</sup> और कहीं बाजारू स्त्री के धारण नित्य वल्ल को धारण करने में अभिमान मानना, रचपन से ही समिगाओं के काटने का अभ्यास तुमने किया, अथ धूर्त वनिताओं के ओठों के काटने का कौशल कहीं से तुममें उत्पन्न हो गया ॥४१४-४२०॥

शुश्रूषणमेव गुरो परिशीलितममलचेतसा सततम् ।

कुटिलमतयो भुजिष्या कथं त्ययाऽराधिता निपुणम् ॥ ४२१ ॥

निर्मल मन से गुरुओं की सेवा करने का ही अभ्यास तुमने रचपन से किया, अथ कुटिल बुद्धि वाली वेश्याओं की प्रसन्न करने की कला कहीं से प्राप्त की ॥४२१॥

आज्ञायपाठ एव स्फुटतरपदसौष्ठवं तच्च रचातम् ।

प्रदुषितवेश्यानुनये क्व शित्तिवं वचनचानुर्यम् ॥ ४२२ ॥

१. मदिरा में उन्मत्तता रहती है, घाम में उदीप्तता होती है, मदिरा मत्त बनाती है, घाम उद्दीपक है ।

२. उन्मत्त, चण्टेगा या मौला रष्ट होकर या प्राति में लिये नायक के शरीर पर नखझल करती है ।

३. अध्ययन आस्थापन यजन याजन तथा ।

दानं प्रतिग्रहश्चापि षट्कर्माण्यप्रतन्मन ॥ मनु० १०।७२

४. पाणिपदपरस्मृति में कहा है—

‘दण्डानि नोपवीथानि मेखलां चैव धारयेत् ।’ १।१।२९.

वेद पाठ में पदों का स्पष्ट पाठ तुम्हारा प्रसिद्ध था, अब क्रुपित वैश्या को प्रसन्न करने में वचन चातुर्य कहाँ से सीखा ? ॥४२२॥

अथवा कि क्रियतेऽस्मिन्नवदातकुलेऽपि लब्धजन्मान ।

सदसस्तुता भवन्ति प्रागुपचितकर्मदोषेण ॥ ४२३ ॥

अथवा क्या करें, इस शुद्ध निर्मल कुल में जन्म लेकर भी अपने पूर्व जन्म संचित कर्मदोष से सज्जनों द्वारा निन्दित होते हैं ॥४२२॥

त्वयि विनिवेश्य कुटुम्ब परलोकहितार्जनैरुविहितास्थ ।

स्थास्यामीति समीहितमनुदिवस, तद्विषयवदितम् ॥ ४२४ ॥

बहुत दिनों से सोच रक्ता था, किन्तु तुम्हारे ऊपर कुटुम्ब का भार छोड़ कर परलोक हित को प्राप्ति के लिये यत्न करूँगा, ऐसा प्रतिदिन सोचता था, यह सब अब असफल हो गया, व्यर्थ हो गया ॥४२४॥

इत्यवगतलेखार्थे मुन्दरसेने त्रिवेयसमूढे ।

आर्यामगायदन्य स्वावसरे गीतिपरिकलिताम् ॥ ४२५ ॥

इस लेख को पढ़कर मुन्दरसेन के कर्त्तव्यार्त्तव्य के निश्चय न कर सकने पर किसी ने इस अवसर पर गीति से पूर्ण होनेवाली आर्या गाई ॥४२५॥

‘विषयतिमिरावृतादणामवदे पततामदृष्टमार्गाणाम् ।

पुता गुरुजनवचनद्रव्यशलाकाजन शरणम्’ ॥ ४२६ ॥

विषयों के अधिकार से धिरी ओलों के मार्ग में गिरे हुए व्यक्ति को अब कोई रास्ता न मिलता हो, तब उसने लिये गुरुजनों के वचन ही शलाकाजन का काम करते हैं ॥४२६॥

उद्वेजयति तदात्वे सुखसम्पत्तिं करोति परिणामे ।

कटुकौषधप्रयोगो गुरुनिगदितकार्यनिष्ठुर वचनम् ॥ ४२७ ॥

ये वचन तत्काल में तो कँपकँपी उत्पन्न करते हैं, परन्तु परिणाम में सुख सम्पत्ति को देते हैं । गुरु से कहा कठोर वचन भी कटु औषध की भाँति कार्यकर होता है ॥४२७॥

लब्ध्वा वचसोऽवसर मित्रमवादीत्पुनन्दरापत्यम् ।

पुनरपि न हि खिद्यन्ते प्रियजनहितभाषणे सन्त ॥ ४२८ ॥

समय देखकर गुणपालित ने अपने मित्र मुन्दरसेन को कहा, प्रियजन के हितकारी बात कहने में सज्जन कभी भी दुःख अनुभव नहीं करते ॥४२८॥

१ ‘पुत्रमुपाप, सस्कृत्य, वेदमभ्यास्य, वृत्तिं विनाय, दारैः सयोग्य गुणवति पुत्रे कुटुम्बमाविश्य, इतप्रस्थानजिह्वो वृत्तिव्यसोपाननुक्रमेत् ।’ सख्यविविध-स्मृति,

२ प्रथम आर्या फिर गीति



अर्गाणितसहचरवचसो दुर्व्यसनमहाच्चिभन्वपुपस्ते ।

मन्युच्यवितस्य पितुर्यदि परमवलम्बनं वचनम् ॥ ४२६ ॥

मित्र के वचनों की भी उपेक्षा करने, दुर्व्यसन स्त्री बड़े समुद्र में दूबते हुए तेरे लिये दुःखित पिता के शोध में कहे वचन भी उत्तम सहाय हैं ॥ ४२६ ॥

निजवंशदीपभूत कृतचरित्वालंकृतो महासत्त्व ।

मुन्दर सम्प्रति तातः सृष्टो दुष्पुत्रदोषेण ॥ ४३० ॥

अपने वंश के लिए दीप बना, सत्रनों के आचरण से अलंकृत, महान प्रवृत्ति, पिता भी आज कुपुत्र दोष से युक्त हो गया ॥ ४३० ॥

पुत्राभावः श्रेयान्त कुसुतता पुत्रिणः कुलीनस्य ।

अन्तस्तापयति शूरां सचरितकथाप्रसंगेन ॥ ४३१ ॥

कुलीन पिता के लिए यह शरीर अशुद्ध है कि उसके लड़का ही न हो, अपेक्षा इसके कि उसका लड़का पुरा हो । क्योंकि पुरा लड़का अपने व्यवहार से सदा हृदय को जलाता रहता है ॥ ४३१ ॥

संव्यवहारत एव प्रायो लोके गुणः सुगमनि यतः ।

येन तु मुतेन जननी ग्रन्थ्यात्वं श्लाघते स पापीयान् ॥ ४३२ ॥

क्यों कि लोक में गुणों के व्यवहार से ही [दिखने से] सुग माना जाता है । इसीसे पापी पुत्र होने की अपेक्षा माता का ग्रन्थी होना अधिक उत्तम समझा जाता है ॥ ४३२ ॥

विफलं शास्त्रज्ञानं, गुरुगृहमेवाऽपि नोपकाराय ।

विषयवशीकृतमनसो न्याय्यं पन्थानमुन्मृजत ॥ ४३३ ॥

विषयों से वशीभूत मन वाले पुरुषों के न्याय मार्ग को छान्द देने पर; शास्त्र ज्ञान भी विफल हो जाता है और गुरु-गृह का सेवा शिवा भी उपकार नहीं कर सकती ॥ ४३३ ॥

जीवन्नेव मृतोऽसौ यम्य जनो वीक्ष्य वदन्मन्योन्वम् ।

शृतमुग्रभंगो दूरात्करोति निर्देगमंगुन्या ॥ ४३४ ॥

यह मनुष्य जाता हुआ भी मरा हुआ हो है, जिसने मृतकों देखकर दूसरे परस्पर दूर से नाना प्रकार के मुँह बनाए (टेढ़ा कर) अगुनों उड़ाने हैं ॥ ४३४ ॥

नोपनिहतुं विषयाः शक्याः मर्त्यं, तथापि निपुणधियः ।

अभिधेयता न गन्धन्त्यपमादग्निगोपिताभिधानम् ॥ ४३५ ॥

१. नापुत्रो विन्दते स्त्रीकाम् कुपुत्राद् ग्रन्थिता वता ।

कुपुत्रो नरको यस्मान् मुपुत्रः स्वर्गं पर दि ॥ हरिपशु पुराण.

यह सत्य है, कि विषय वासनायें रोके नहा की जा सकूँगी, तथापि बुद्धि मान् मनुष्य निन्दा के डर से विषयों के अधीन नहीं बन जाते ॥४३५॥

गुरुपरिचर्या, जाया कुलोद्गता, स्निग्धवन्धुसम्पर्क ।

ब्राह्मे कर्मणि सत्तिर्लोक्रद्वयसाधन सुधियाम् ॥ ४३६ ॥

गुरुजनों की सेवा, सन्तुल म उत्पन्न पत्नी, स्नेही मित्र का सम्पर्क, ब्राह्म कर्म—ब्राह्मण के करणीय कर्मों में आसक्ति लगाव, बुद्धिमानों के लिये ये कर्म इहलोक और परलोक दोनों को देने वाले हैं ॥४३६॥

सुलभा सस्य विभूतिस्तस्य गुणा यान्ति जगति विस्तारम् ।

बहु मनुते त सुजनस्तम्मै स्पृहयन्ति बान्धवा सततम् ॥ ४३७ ॥

इन कार्यों के करने वाले के लिये—सम्पत्ति सुलभ हो जाती है, उसने गुण सत्तार में फैलते हैं—सब उसका नाम याद करते हैं, सज्जन उसको बहुत आदर देते हैं, नाथव सम्बन्धी जन सदा उससे मित्रता की चाह करते हैं ॥४३७॥

नासाद्यति स एक सत्सेवितमार्गत परिस्वलनम् ।

मण्डयति सोऽन्ववाय, स निवास शर्मणामशेषाणाम् ॥ ४३८ ॥

सज्जनो से सेवित मार्ग से जो नहा गिरता, वह अकेला ही अपने सारे यश को ( अगले पिछले यश को ), शोभित करता है, सब प्रकार के शुभों का—मुखों का निवास स्थान है ॥४३८॥

स भवति विनयाधारो, युक्तयुक्ते विवेकिता तस्य ।

पृष्ठोपदेशवाच श्रवणोदरपूरण सदा यस्य ॥ ४३९ ॥

( विशेषकम् )

जो व्यक्ति सदा बृद्ध पुरुषों के उपदेशों को सुनता है, वह विनय शील होता है, सदा अच्छे बुरे कार्य का विवेक करता है, उसका सद् अस्वद विवेक ज्ञान सदा बना रहता है ॥४३९॥

प्राक्तनऋषिपाक क्षुद्रासु शरीरिणा यदासक्ति ।

आयतन तु मुखाना ससारमुवा कुलोद्गता दारा ॥ ४४० ॥

पेश्याआ के शरीर में जो आसक्ति होती है, यह पूर्वजन्म के कर्मों का ही फल है । सत्तार में उत्पन्न मनुष्यों के लिये सत्कुल में उत्पन्न स्त्रियाँ ही मुख का स्थान होती हैं ॥४४०॥

निर्विण्णे निर्विण्णा, मुदिते मुदिता, समाकुला कलिते ।

प्रतिस्निग्धसमा कान्ता, सकुद्रे षेवल भीता ॥ ४४१ ॥

मिराहित जिनों हों पनि के उदास होने पर उदास, प्रसन्न होने पर प्रसन्न, व्याकुल-वेचन होने पर वेचन-धराई होती है, पति का प्रतिनिध-दाया रूप होती है, परन्तु पनि ने जुरित होने पर केवल टरी होती है (जुरित नहीं होती) १ ॥४४१॥

चात्रद्वन्द्वितमुस्तव्यायामसहाऽग्निन्द्वममाया

चित्तानुवृत्तिमुशला पुस्त्यवतामेव जायते जाया ॥ ४४२ ॥

पति की इच्छानुसार सम्भोग अथ को सहने वाली (उसमें पृथ अनुमन न करने वाली), कभी प्रसिद्ध न बोलने वाली, पति के चित्त में अनुसार रहने वाली, पत्नी पुण्यशानियों को ही निन्दी है २ ॥४४२॥

सद्भावप्रेमरसं यलयार्जलपद्मशंखिता निमृत्तम् ।

विदधानांगसमर्पणमुन्मालितद्रुमसायकाभूतम् ॥ ४४३ ॥

हाहा किमुद्वेगत्यं, श्रोष्यति कश्चिद् गतत्रय, स्वरम् ।

निरुद्धे परिवारजनो विस्मृत एव स्मरानुरस्य तत्र ॥ ४४४ ॥

इति ह्येतिमंवलितरायासनिवेदितार्थपदवाक्यैः ।

द्विगुणीकरोति कुलजा नायककर्माणि मोहनप्रसरे ॥ ४४५ ॥

(कृतकम्)

कर्मकण की ध्वनि से शक्ति, निष्कल-खुरचाप निरुद्ध भाव वाले प्रेमरस के साथ अनेक अंगों का समर्पण करती हुई, निरवित काम के अभिप्राय को व्यक्त करता हुई, हा हा-पह रंजी उद्वेगता दिग्राई कर रहे हो, कोई सुनेगा, निर्लज्जता मत करो, धीरे में बगे, पास में सम्मानी है, इने भी कामावेश ने तुमने सुना दिया, इस प्रकार के निरंतर सूचन हुआये से, प्रयत्न पूर्ण मनोगत भाव को लजा के कारण मुझ से न बहकर अन्य रूपों से प्रगट करता हुई; कुलजा नायिका, नायक के सम्भोग में प्रवृत्त होने पर, उसने कार्यों में और भी बढ़ावा ला देता है ३ ॥४४३-४४४-४४५॥

१. इष्टा इष्टे विषया स्याद् विषयास्ये सदापिरे ।

छायेदानुगता पुण्या रूपम् च विषम् च ॥

२. कामा दि जायते तस्यां तेन जायां विदुर्बुधा ।

मर्त्या नु मापया इदमः कथं जायन्तमोदरे ॥ महाभा विराट् १।११।२.

(७) अनुवृत्तिं विदुर्बुधा कुलजां पुण्यं मुनीबभूवन्नाम् ।

पद्मकलां भावां पुण्यं पुण्योदपादभने ॥

३. जगति लोको अस्ति प्रदीपः सत्यजनः परमति कौतुकेन ।

मुहूर्तमात्रं बुद्धिमान् धेवं मुमुक्षुः किं दिष्टेयं मुदये ॥

इत्थमुदीरितवाच सुन्दमयोचत् पुरन्दरस्य मुत ।

समुपस्थितनीत्रसमावियोगभयकम्पितो वचनम् ॥ ४४६ ॥

गुणपालित के इस प्रकार कहने पर सुन्दरसेन ने प्राणप्रिया क वियोग को पास आया जानकर भय से कथित वचन कहा ॥ ४४६ ॥

सातादेशेऽलक्ष्ये हारलताविरहपात्रके तीत्रे ।

विधिप्रशयतिनि मरणे नो विद्म कार्यपरिणामम् ॥ ४४७ ॥

पिता की आज्ञा अलक्षणीय होने पर, हारलता क विरह की तीव्र अग्नि में, दैव भाग्य क अधीन मृत्यु होने पर कार्य का परिणाम कुछ ज्ञात नहीं—क्या होगा कुछ कह नहीं सकते ॥ ४४७ ॥

अनपेक्षितधनलाभा स्नेहैकनिबद्धमानसा दयिताम् ।

देवाकृष्टो मुचति घटितो या लोहवज्रकणिकाभि ॥ ४४८ ॥

अचानक रिना किसी आशा के धन की प्राप्ति तथा प्रेम से निबद्ध मतवाली प्रेयसी को दृढ़ वज्र कणिकाया से घटित-संयोजित भाग्य ( वज्र के समान कठिन हृदय वाला भाग्य ) या तो आकृष्ट करता है मिलाता है अथवा त्याग करता है—अलग कराता है ॥ ४४८ ॥

अथ कृतगमनविनिश्चितिरभिमतरामा चकार विदितार्थाम् ।

साऽपि तमनुवधान प्रस्तुतयात्र शुचाऽऽकुलिता ॥ ४४९ ॥

सुन्दरसेन ने अपने जाने का निश्चय हारलता को भी कह दिया । शोक से केचैन हारलता भी उसन साथ यात्रा करने लगी ॥ ४४९ ॥

आसाद्य वटस्य तल वाष्पपयःकणचित्ताल्लिपदमाश्रामम् ।

विघ्नितचरणविहारो हारलतामभिदधाति स्म ॥ ४५० ॥

वट के नीचे पहुँच कर, पलकों में आँसु भरे, चलना बन्द करके सुन्दरसेन ने हारलता को कहा ॥ ४५० ॥

आ क्षीरवतो वृत्तादा सलिलाद्वा प्रिये प्रिय यान्तम् ।

अनुयायादिति वचन तेन त्यमितो निवर्तस्य ॥ ४५१ ॥

हे प्रिये ! प्रिय क साथ यात्रा म क्षीरवृक्ष तक या पानी तक जाना चाहिये, इसने आगे नहीं, इसलिये तुम यहाँ स लौट जाय्या ॥ ४५१ ॥

१ आमजान शकुन्तल में भी इस सम्बन्ध में कहा है—

या उदकान्तात् म्निगघो जनोऽनुगतव्य, इति ध्रुवते ।

तदिदं सरस्तीरम् । अत्र सन्दिश्य प्रतिगन्तुमर्हसि । चतुर्थं भद्र

नदीतारे गवा गाण्डे क्षीरवृक्षे जम्बाशये ।

आरामेष्वय कृपादौ दृष्ट वन्तु विसर्जयेत् ॥ स्मृति

किं कुर्मो दैवहृता, प्रभवति यस्मिन्कुरोदरि प्रसभम् ।

प्रेमप्रस्थिच्छेत्ता गुरुशासनसायको निरावरणः ॥ ४५२ ॥

हे कुरोदरी ! दैव के बशीभूत हम कर भी क्या सकते हैं, जब कि प्रेम की गॉठ को काटनेवाला पिता का आशा रूपी अनुल्लवनीय बाण बलवान् हो ॥ ४५२ ॥

न द्रविणलवप्रार्तिनैकाश्रयपरिचयो न चाटुगुणः ।

न स्वामिसमादेशो नाकारविलोभनं न चार्यातिः ॥ ४५३ ॥

हेतुस्तव प्रवृत्तेरस्मासु, तथापि दैवयोगवशान् ।

ईदृक् कोऽप्यनुचन्धो यस्य विपाकः प्रतीकारः ॥ ४५४ ॥ (युग्मकम्)

एक कौटी का भी लाभ नहीं, नहीं ठिकाना नहीं, न मीठा बचन, पिता आदि किसी का आदेश भी नहीं, न देखने में रूप का ही कोई आकर्षण श्रीर न कोई प्रसिद्धि, इस पर भी तेरा जो हम से स्नेह हुआ यह दैव का ही काम है, ऐसा कोई अनिर्नचनीय अनुचन्ध ( दोषोद्यति ) है, जिसका यह अश्रयम्भावी परिणाम है ॥ ४५३-४५४ ॥

परुषं यदभिहितोऽसि प्रणयरूपा शंकितेन नर्मणि वा ।

सुदति न तस्मरणीयं दुर्भाषणकीर्तनोद्घाते ॥ ४५५ ॥

प्रणय कोप से, शंकित मन से या हास पछिछ में मैंने यदि कभी कोई कठोर बचन कहा हो, हे सुदति ! दुर्भाषण कीर्तन के प्रसंग में उसका स्मरण न करना ॥ ४५५ ॥

तय हृदये हृदयमिदं विन्यस्तं, न्यासपालनं वष्टम् ।

यत्नात्तथा विधेयं स्थानभ्रंशो यथा न स्यात् ॥ ४५६ ॥

तेरे हृदय में यह हृदय रख दिया, भरोहर की रक्षा करना बहुत कठिन है, ऐसा यत्न करना जिससे यह स्थान भ्रंश न होने पावे ॥ ४५६ ॥

अथ विरतयचोदयितं वाप्पभराश्लिष्टवर्णपदयोगम् ।

इति कथमपि हारलता संमूर्च्छितवर्णभारतोमूचे ॥ ४५७ ॥

शीतिवृक्ष—‘न्यग्रोघोदुम्भराश्लिष्टवर्णपदोपप्लवपादपाः । पक्षेति शीरिषो वृक्षः’

१. उत्तररामधरित में—अथवा स्नेहश्च निमित्तस्तन्यपेक्ष इति विप्रतिपिद्धमेव—  
व्यतिपत्ति वदार्थान्तरः कोऽपि हेतुर्न सन्तु यदिरूपाधीन् मोक्षयः सश्रयन्ते ।  
विकसति पतगस्थोदये पुण्डरीकं द्रवति च क्षितरमातुद्गाने चन्द्रकान्तः ॥
२. मुखमयी भवेद्गानं मुखं प्रत्याः मुखं तपः ।  
मुखमन्यद्भवेत्सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षयम् ॥ स्वप्नवामरदत्ता १११०

भारी मन से मुन्दरसेन के इस प्रहार वह चुकने पर आँतुआ के भार से मिलित वर्ण एवं पदों वाले अस्पष्ट शब्दों में हारलता ने बड़ी कठिनाई से कहा ॥४५७॥

अविशुद्धकुलोत्पन्ना देहार्पणजीविका शठाचरणा ।

क्याह रूपाजीवा, कथं भवन्त श्लाघनीयजन्मगुणा ॥ ४५८ ॥

अपवित्र कुल में उत्पत्ति शरीर समर्पण ही जीविका का साधन, धूर्तता का व्यवहार करने वाली यहाँ में केश्या, और यहाँ उत्तम यश में उत्पन्न आप ? ॥४५८॥

यत्स्व विषयविलोकनकुतूहलादागतोऽसि, विश्रान्त ।

इयतो दिवसानस्मिस्तन्मम परजन्मसुकृतफलम् ॥ ४५९ ॥

विषयों के देखने के कुतूहल से आकर जो आप इतने दिना तक रहें, वह मेरे पूर्व जन्म के अच्छे कर्मों का ही फल है ॥४५९॥

गुरुसेवा यन्धुजन स्वदेशयसति कलत्रमनुकूलम् ।

अनुपगृह्यपरिचित आस्था प्रविधाय क परित्यजति ॥ ४६० ॥

पूज्य जनों की सेवा, भिन्न-बन्धु, अपने देश में निवास, अनुकूल भार्या, इन सबको मानूली कारण से परिचित बने ध्यात में श्रद्धा करके, कौन पुरुष बिना विशेष कारण के छोड़ता है ॥४६०॥

यौवनचापलमेतद्यन्माहशि भवति कौतुक भवताम् ।

। यत्तु सुखमनवगीत तस्य स्थान निजा दारा ॥ ४६१ ॥

। सुख जैसी में आपकी जो चाह इच्छा हुई वह केवल आपका युवावस्था का चित्त-चाञ्चल्य ही है ।<sup>१</sup> पुरुषों के लिए अनिच्छ सुख का स्थान तो अपनी विवाहित भार्या ही है ॥४६१॥

ते मधुरा परिहासास्ता वक्रगिर स वामतासमय ।

नो हृदये वर्तय्या रहसि क्षमार्थिना भवता ॥ ४६२ ॥

वे मधुर-मीठे परिहास, व वक्रोक्तिया यग्य, वह विपरीत आचरण, इनका

१ यथा मृच्छकटिक में—

‘गणिका मम मित्रमिति । अथवा यौवनमग्रापराध्यति, न चरित्रम् ।’

( ६ या धृक् ),

एकान्त में मन में विचार नहीं करना, ये सब आपके बुद्धल नल्याण की इच्छा से ही ( प्रसन्न करने के लिये ही ) किये थे ॥४६२॥

लाघवतो यन्महतः प्रणयादा साधु यत्त्वाचरितम् ।

प्रतिकूलं तत्र मया नाथांजलिरेव विरचितो मूर्ध्नि ॥ ४६३ ॥

जुब्रता के कारण यथवा अतिराय स्नेह वश के कारण से आपके प्रति यदि कोई अनुचित वर्त्ताव मुझसे हुआ हो, उसने लिये हे नाथ ! मैं सिर मुका-कर क्षमा चाहती हूँ ॥४६३॥

दुःसंचारा मार्गा दूरे वसतिर्विसंप्लुतं हृदयम् ।

गुणपालितं तव सुहृदा भवितव्यमतोऽप्रमत्तेन ॥ ४६४ ॥

नीचे-ऊँचे या चौर-सगॉटि के कारण मार्ग चलने अयोग्य है, निवास स्थान-अपना देश दूर है, हृदय सदा संकाशील है, हे गुणपालित ! तुमको सग मिन की रक्षा में, सावधान रहना चाहिये ॥४६४॥

हृदयद्वय एकव्यं याते यूनोर्वियोगजं क्लेशम् ।

अनुभवतोरपरेण प्रसंगतः पठ्यते पथ्या ॥ ४६५ ॥

हारलता और मुन्दरसेन दोनों के हृदय के एक हो जाने पर वियोग जन्य क्लेश का अनुभव करते हुए किसी अन्य व्यक्ति ने प्रसंगश यह पथ्या आयी पदी ॥४६५॥

१. परिहास—परम मत्सरिष्ठं चूर्तं वृमुमैमंभुगन्धिमिः ।

हेमपञ्जरुणो वा कोटिखो मत्र कूजति ॥ बुद्धचरित ४।१४.

(प्र) वनकेछी समारधत्वदर्शनं भू पतितं प्रति ।

दैदि मद्यमुदस्येति मद्गिरा दीदितसि पत् ॥ नैयध २०।१६.

(ग) निधितिषेपस्थानस्योपरि धिह्यार्थमिव क्षता निहिता ।

खोभयति तव तनूदरि जघनतटादुपरि रोमाक्षी ॥ धार्यसप्तशती (१३८)

विपरीत भाषण—

सुमनेषु परिवर्तिताचरं हस्तरोपि रचनाविबद्धने ।

विनिर्लेप्युपपितस्य सर्वतो मन्मथेन्यनमभूदयभूतम् ॥ रघुवंश १।१२७.

२. स्नेही के प्रति मन सदा संकाशील रहता है—‘स्वपृष्ठोपातगनेऽपि स्निग्धे पार्थ विरुद्धपते स्नेहात्’—नागानन्द ५।१; ‘मिम पश्यति मयान्द्रेऽपि’—किरात १।७०, ‘अतिस्नेहः पापशुद्धी’—शाकुन्तल ४.

३. पथ्या—पार्थ का एक भेद है; यथा—

अग्निं गणप्रपं पादं द्वितीये तथनुदयम् ।

“अन्योन्यमुद्वेष्टेष्टितसद्भावस्नेहपाशवद्धानाम् ।

विच्छेदकरो मृत्युर्धोराणां वा परिच्छेदः” ॥ ४६६ ॥

परस्पर मुद्वेष्ट चेष्टावाले, निष्कपट स्नेहपाश से बँधे प्रेमियों का अत्यन्त वियोग मृत्यु का कारण होता है । अथवा घोर ( मुख दुःख में समान चित्त, पण्डित ) मनुष्यों के लिये परिच्छेद विभेद का कारण होता है ॥ ४६६ ॥

अथ तच्छ्रवणानन्तरमास्व मुखं दयितिके व्रजामीति ।

अभिधाय याति मन्दं सुन्दरसेने विवर्तितग्रीवम् ॥ ४६७ ॥

यह सुनने के पीछे, ‘मुख से रहों’ रूपी आशीर्वाद देकर प्रिये ! मैं जा रहा हूँ, इस प्रकार बह कर ग्रीवा को मोड़कर सुन्दरसेन के धीमे से जाने पर, ( हारलता भूमि पर गिर पड़ी ) ॥ ४६७ ॥

वटशाखालम्बिभुजां श्वसितोष्णसमोरशुष्यदधरदलाम् ।

पर्यस्तां विभ्राणां तन्मार्गविलोकनानिमेपदृशम् ॥ ४६८ ॥

लोलायमानवेणीतिर्यक्कृतकण्ठभूषणविशेषाम् ।

गलदश्रुवारिपूर्णा पतितां संशुष्कनिःसहंगलताम् ॥ ४६९ ॥

बट की शाखा को पकड़े निश्वास की उष्णवायु से ओठ के सूखने पर, रंग बदली हुई हारलता सुन्दरसेन के जाने के मार्ग में अनिमेप दृष्टि से देखती रही । बालों के अस्त व्यस्त होने के कारण गले का आभूषण भी अव्यवस्थित हो गया था, ओंखों से लगातार आँसू बह रहे थे, सूजी निःसहाय लता की भाँति वह भूमि पर गिर पड़ी ॥ ४६८-४६९ ॥

रन्धानामिव हृदयं स्फुटदितरकरेण कुक्षुयुगाश्रयिणा ।

परिशेषिता विलासैरत्सृष्टां जीवलोककर्तव्यैः ॥ ४७० ॥

गुरुश्रुत्येऽपि तथा, किन्तु छोड़ गृहीतके ।

विषमे जगत्तो नात्र; पप्प्याऽऽर्या संप्रकीर्तिता ॥

(ख) पप्प्या-द्विबद्धा आर्या पड़ी ।

१. स्नेह का छक्षण—दर्शने स्पन्दने चाऽपि श्रवणे भाषणेऽपि वा ।

• यत्र द्रवत्यन्तरङ्गं स स्नेह इति कथ्यते ॥

घोर का छक्षण—

‘विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव घोराः’—कुमार ११५०.

सौन्दरानन्द में—

‘शानाच्च रीषाच्च विना विमोक्तुं न शक्यते स्नेहमवस्तु पाशः’—०११५.



श्रंगीकृतां विपत्त्या, वशीकृतां मर्मघट्टनैर्विपमैः ।

हारलतामपरिस्फुटमन्तः - परिक्रम्यमाण - भारत्या ॥ ४७१ ॥

मा मा धावत क्षणमेकं यावदेव निष्करुणः ।

वनगुल्मैर्न तिरोहित इत्यभिदधती जडुः प्राणाः ॥ ४७२ ॥

(कुलकम्)

स्तनों पर हाथ रख कर पड़ते हुए, हृदय को रोमते हुए; सब प्रकार के विलासों को छोड़, संसार के करणीय कर्मों का भी परित्याग करके; दुःख से दुःखी, मर्म स्थल की पीड़ा से अतिशय रूप में पीड़ित, आसन्न मृत्यु के कारण सूखी बाण्ही द्वाय अस्पष्ट गोलती, हे प्राण ! अभी मत निरुलो, एक क्षण के लिये रुक जाओ, जब तक यह कठोर जमल की लता समूहों में छिपकर श्रांत से ओभल नहीं होता, इस प्रकार बढ़ती हुई हारलता ने प्राण छोड़ दिये ॥ ४७०-४७२ ॥

अथ पश्चात्समुपेतं पप्रच्छ पुरन्दरात्मजः पथिकम् ।

दृष्ट्वा शोम्ब्ययिता निवर्तमाना वरांगना भवता ॥ ४७३ ॥

इसके पीछे, पीछे से आते हुए पथिक से मुन्दरसेन ने पूछा—‘आपने शोक से पीड़ित वाचित जाती हुई किसी वेश्या को देखा’ ॥ ४७३ ॥

स उवाच घटतरोरथ उर्व्यां पतिता त्रिनिश्चलावयवा ।

तिष्ठति यनिता, नान्या नयनापसरं गताऽस्माकम् ॥ ४७४ ॥

उसने कहा कि—घटदृष्ट के नीचे, भूमि पर पड़ी, निश्चेष्ट अवयवों वाली एक स्त्री थी, और कोई स्त्री हमारी निगाह में नहीं आई ॥ ४७४ ॥

इति तद्वचनाश्महतो विह्वलमूर्तिः पपात भूपृष्ठे ।

उत्थापितश्च मुहृदा सोऽभिदधे तेन शोकविह्वलेन ॥ ४७५ ॥

पत्थर के समान इस कठोर वचन को सुनकर विह्वल होकर मुन्दरसेन भूमि पर गिर पड़ा । मित्र ने उसे उठाया और शोक से बेचैन मुन्दरसेन ने कहा ॥ ४७५ ॥

भवतु कृतार्थस्तातन्वमपि सुमित्रास्तु साम्प्रतं प्रीतः ।

समकालमेव मुक्ता पापेन मयाऽमुभिश्च हारलता ॥ ४७६ ॥

(उपालम्भ देते हुए), मित्र भी कृतार्थ हो गये, तुम अच्छे मित्र भी अब प्रसन्न हो जाओ । मुक्त पापी के कारण हारलता ने मेरे चमने के साथ ही प्राण छोड़ दिये ॥ ४७६ ॥

# १. विज्ञास—

‘प्रियसन्निधौ अग्रे त्रिपार्था वचने च सतिशय त्रिबोल्याति विज्ञापः ।’

हाहा हाव हतोऽसि, ध्वस्ता लीला, विलास किं कुरुषे ।

उच्छिन्ना विच्छित्तिर्भ्रम विभ्रम दश दिशो निराधारः ॥ ४७७ ॥

बड़े दुःख की बात है, पूर्ण चन्द्र की कान्ति को भी तिरस्कृत करने वाली हारलता के यम के पास जाने पर—मरने पर—हाव मर गये, लीला नष्ट हो गई, विलास व्यर्थ हो गये, विच्छित्ति जाती रही, विभ्रम भी नष्ट हो गया, दशों दिशायें शून्य हो गईं ॥४७७॥

किलकिञ्चित् गच्छ घनं, मोहायितमशरणत्वमुपयातम् ।

कुट्टमित प्रपञ्च्यां गृहाण, चिन्मोक विश भुचो विवरम् ॥ ४७८ ॥

किलकिञ्चित् तुम जगल का रास्ता पकड़ो, मोहायित तुम्हारा भी अब कहीं स्थान नहीं रहा, कुट्टमित ने संन्यास ले लिया, चिन्मोक पृथ्वी के गर्त में पाताल में घुस गया ( ये सन भाव नष्ट हो गये )<sup>२</sup> ॥४७८॥

१. साहित्य वर्णन में स्त्रियों के अट्टाईस सात्विक अलंकार कहे हैं । इनमें भाव, हाव और हेजा ये तीन अंगज हैं । इनका सम्बन्ध शरीर से हैं, शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य ये सान अक्षरज— [ अर्थात् कृति से साध्य नहीं ] हैं । लीला, विलास, विच्छित्ति, चिन्मोक, किलकिञ्चित्, विभ्रम, अछित्त, मद, विह्वल, तपन, मौग्य, विक्षेप, कुतूहल, हसित, अकित और केलि ये अट्ठारह स्वभावसिद्ध हैं, किन्तु कृति-साध्य हैं । हममें—

हाव—भूमेत्यादि विकारैस्तु संभोगप्लापकाशकः ।

भाव पवारूपसंछदयः विकारो हाव उच्यते ॥ सा०द०—३।१४.

लीला—भरीबैरलंकारैः प्रेमनिर्वचनैरपि ।

मोतिप्रयोजितैर्लीला प्रियभ्यानुकृति विदुः ॥ सा०द० ३।१८.

विलास—यथा स्थानासनादीनां सुखनेत्रादिकर्मणाम् ।

विशेषस्तु विलासः स्यादिष्टमंदशानादिना ॥ सा०द० ३।१९.

विच्छित्ति—स्तोकाभ्यामक्षरचरणा विच्छित्ति-कान्तिपोषकत् ॥ सा.द. ३।१००.

विभ्रम—स्वरथा हर्षरागादेर्द्वयितागमनादिषु ।

अस्थाने विभ्रमादीनां विन्यासो विभ्रमो मतः ॥ सा.द. ३।१०४.

२. किलकिञ्चित्—

स्मित-गुण-रदित-हसित-प्रास श्लोच यमादीनाम् ।

सौकर्यं किलकिञ्चित्तमभोष्टतममंगादिनाद् हर्षात् ॥ सा.द. ३।१०१.

मोहायित—उद्भावभाविते चित्ते यद्वज्रमस्य कथादिषु ।

मोहायितमिति प्राहुः कर्णकण्ठपनादिकम् ॥ सा.द. ३।१०२.

ललितमनार्थामृतं, विह्वलस्य गतिर्न विद्यते क्वापि ।

शशधरविम्बद्युतिमुपि यातायामन्तः ॥ ४७६ ॥

पूर्ण चन्द्रमा की धुति की चुपने वाले मुन्व काली के कम के पास चने जाने पर ललित अनाथ हो गया, विह्वल की कोई रास्ता नहीं मिला ॥ ४७६ ॥

विनिवृत्त्य यामि द्रुमुं मद्रिरहात्त्वत्तवन्लमप्राणम् ।

भवतु वराक्यामस्त्याः समार्चिर्दानमात्रमुपकारः ॥ ४७७ ॥

मेरे विनोद ने अपने प्रिय प्रार्थों को छोड़ने वाली हारमला की बचाने के लिये लौट कर वापस जाता हूँ । कर्मिदान का नेत्र पुरर उक्त गरीर का मिल जाये ॥ ४७७ ॥

गन्धाऽथ तमुद्देशं यन्मिन्ता पंचमायमापन्ता ।

प्रिललाप मुक्तकरं विलुटन् भुवि सहचरेण धृतमूर्तिः ॥ ४७८ ॥

जिस स्थान पर हारमला मरी थी, उस गन्धान पर पहुँच कर मिर के अन्तर्गत शरर (पकड़ा हुआ), भूमि पर लोट कर खूब जोर से रोया ॥ ४७८ ॥

“एनं वयं निवृत्ता मुंच न्यं, देहि कोपने वाचम् ।

उत्तिष्ठ, किमिति तिव्रसि भूमितले रेणुत्पितरारीर ॥ ४७९ ॥

हम लौट आये, कोप की छोड़, गुम्न ! जगत् तो दे, खड़ी हो, बर्तन पर क्यों बैठी है, शरीर पर धूल क्यों लगा रखी है ॥ ४७९ ॥

विनिमील्य दृशौ यस्मादप्रतिपत्त्या स्थिताऽसि शुभवदने ।

त्यद्वारितगमनत्रिधेरपराधितया न मेऽस्ति संयोगः ॥ ४८० ॥

हे शुभवदने ! आँखों को दन्त बरके किमनिये मूढ़ जी मैंति निरचल पड़ी है, तेरे मना करने पर भी जो मैं चला गया; इतना अरागर से मेरा दृष्टाते साथ संयोग नहीं हो रहा ॥ ४८० ॥

नागाधिपतिपुरस्त्रीरभिमानिनुं त्वयि दिवं प्रयातायाम् ।

सत्यपि शरेण पञ्चम निराग्रधः साम्प्रतं मदनः ॥ ४८१ ॥

इन्द्रपुरी की लियों को तिरस्कृत करने के लिये तेरे स्वर्ग में जाने पर,  
कामदेव अपने पाँच बाण रखने पर भी अत्र शस्त्र मिना हो गया<sup>१</sup> ॥४८४॥

वञ्चकवृत्ता वेश्या इत्यपवादो जनेषु यो रुढः ।

अपनीतोऽसौ निपुण त्वया प्रिये जीवमोक्षेण ॥ ४८५ ॥

मनुष्यों में जो यह अपवाद प्रसिद्ध है कि वेश्यायें ठग होती हैं, इस अप-  
वाद को हे प्रिये । तूने प्राण देकर पूरण रूप से झूठा प्रमाणित कर  
दिया<sup>२</sup> ॥४८५॥

पर्य्य सद्व्रत एकस्त्रिपुरान्तकनन्दनो महासेन ।

हृदय स्पृष्ट न मनागपि वामलोचनाप्रेम्णा ॥ ४८६ ॥

शिव का पुत्र सद्व्रतधारी यदानन अनेला ही इस विषय में प्रशसनीय है,  
जिसके हृदय पर लियों के प्रेम का जरा भी प्रभाव नष्ट हुआ ॥४८६॥

मन्येऽभीष्टवियोग निमेषमपि दुःसह समवधार्य ।

हरिणा वक्षसि लक्ष्मीर्विधृता गौरी हरेण देहार्थे ॥ ४८७ ॥

मैं ऐसा मानता हूँ कि प्रिय का क्षण मात्र भी वियोग दुःसह है, इसीलिये  
ऐसा सोच कर विष्णु ने लक्ष्मी को छाती पर और शिव ने गौरी को शरीर के  
अर्धभाग में धारण किया है ॥४८७॥

अयि लोकपाल, मा भुवि ललामभूता, तया विना शून्यम् ।

विश्वमिति किं न चिन्तितमात्मस्थान प्रिया नयता ॥ ४८८ ॥

१ पाँच बाण—

(क) अरपि इमशोक च घृत च नवमल्लिका ।

मीनोत्पला च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः ॥

(ख) उन्मादप्रस्तापनश्च शापश्चः स्तम्भनस्तथा ।

सम्मोहनश्च कामस्य पञ्च बाणाः प्रकीर्तिताः ॥

(ग) द्रावण क्षाम्बलश्चैव यशस्करश्च इत्यपि ।

अकपणश्च कामस्य बाणः सम्मोहनोऽपरः ॥

२ कहा भी है—‘कपटानुरागाकौसीदिक’ श्लु वरयाजन ॥ दामे द्र

वाग्नि प्रीतिकरैर्विच्छोकनयते सतर्जनैः सम्मितैः,

काधैरौषधमप्रयत्नमपि हि कृत्वा यशः नायकम् ।

हृत्वा यस्य समस्तवस्तुनिचयं त्यक्त्वा तमन्य शठः,

सेवते धनिनः हृद्यैव सततं वाराङ्गनाना रति ॥

हानि नहीं । ( तुम पुरुषों के मनोरञ्जन में नेश्याओं के ऐसा होने पर भी कोई हानि नहीं ) ॥४६८॥

रमणद्वयानुवर्तनचतुरचतुषष्टिर्मकुशलानाम् ।

न सृष्टाति तत्त्वचर्चा पण्यव्यूना विगन्धचेतासि ॥ ४६९ ॥

कोपक नायक के हृदय के अनुसार रहने में चतुर, कामशास्त्र की चौसठ कलाओं में कुशल, वेज्याओं से रक्षित चित्त में तत्त्व ज्ञान का विचार नही होता ॥४६९॥

वलितप्लुतचित्रगतिस्थितिप्रोवैद्योद्वनानुदृत्त्या च ।

रागस्पर्शन जिना विशति मन साद्रिना तुरग ॥ ४७० ॥

बुद्धसगर व मन में बौद्ध अरना वलित, प्लुत, चित्रगति, स्थिति ज्ञान से तथा बुद्धसगर की दृष्टि के अनुसार चलने व मारण हा पंथ जाना है, अपने ही उसमें राग [रग] और स्पर्श [क मनवा] न हा, ( बुद्धसगर घोड़ की उसने इन गुणा से पकड़ रहा है, उसे घोड़ से राग नहीं होता—कल गुणों से ही स्नेह है, इसा प्रकार वेद्या से भी स्नेह उसके गुणों से ही होना है ) ॥४७०॥

गन्धाऽपि कुत ग्रेम्य. परमृतहारीतगृहरूपोतानाम् ।

सञ्चलयन्त्यसमेपुं विन्तविगेपस्तथापि ते यूनाम् ॥ ४७१ ॥

कोयल, हारीत, घर के पाले कबूतरों में प्रेम की राख भी नही, तथापि ये अपनी विशेष आवाज से बुद्धाओं में कान भी बाधत करते हैं ॥४७१॥

आहितमुक्ताहार्यं सम्यक्सकलप्रयोगनिष्पत्त्या ।

भावनिहीनोऽपि नटः सामाजिकचित्तरञ्जनं कुरुते ॥ ४७२ ॥

पहिले स्वीकार किया और फिर छोड़ दिया ऐसे आहार्य अभिनय को करने वाला, अनुपग हीन नट भी भवो प्रकार सम्पूर्ण अभिनय की सकलता से जाना बिना जानों के मन को प्रसन्न करता है ॥४७२॥

१. चौमऽ कक्षा—कामसूत्र के अथर्व भूत गान-वादित्र आदि ६४ कक्षाओं अथवा पाठ्यों की ६४, कक्षाओं में चतुर [ कामसूत्र २।९ ]

२. आह्वक, वाचक और आहार्य तीन प्रकार के अभिनयों में एक आहार्य है, 'आहार्यभित्तो नाम ज्यो नपप्यन्ते विधि'—मन २।१२ । भाव—रति आदि स्थापि भाव—आह, विवेक आदि व्यभिचारी भाव—३, स्वयं आदि सार्वक भाव आह, इस प्रकार कुल ४९ भाव हैं, इनमें रहित होने पर भी नट-दर्शकों का मन प्रसन्न करता है ।

येऽपि धनक्षयदोष पश्यन्ति जडा विलासिनीश्लेषे ।

प्रष्टव्यास्ते भवता किमकृतकरिषुव्यया दारा ॥ ५०३ ॥

जो मूढ़ वश्याआ के सम्भाग में धन क्षय का दोष देखते हैं, उनसे पूछना चाहिए कि क्या स्त्री में अनवल का व्यय नहीं होता? ॥५०३॥

न च लाभ एक एव प्रवर्तने कारण मनुष्येषु ।

रागादयोऽपि सन्ति वैशिकशास्त्रप्रणेतृभि कथिता ॥ ५०४ ॥

मनुष्यों के प्रवृत्ति का कारण केवल लाभ ही नहीं होता, राग अनुराग, प्रीति आसक्ति आदि भी कारण होते हैं, ऐसा वैशिक शास्त्र कामशास्त्र बनाने वालों ने कहा है? ॥५०४॥

का चा विभूतिराप्ता सुन्दरसेनात्तया तपस्विन्या ।

यद्विरहकुलिशाभिन्ता मुमोच सा जीवित क्षणार्धेन ॥ ५०५ ॥

उस बेचारी हारलता ने सुन्दरसेन से कौन सा बड़ा धन पा लिया, जिसने विरह में उसने आधे क्षण में अपने प्राण छोड़ दिये ॥५०५॥

उत्तमतरुणप्रकृति पुलकादिकसुचितान्यतरशक्ति ।

स्फुटसन्निहितविभावो निवार्यते केन शृङ्गार ॥ ५०६ ॥

उत्तम यौवन, रोमाञ्च आदि कारणा से प्रगट असामान्य शक्ति, सुव्यक्त, समीपवर्ति विभाव रहने पर शृङ्गार को कौन छोड़ सकता है? कोई भी नहीं छोड़ सकता ॥५०६॥

१ इष्ट वाऽनिष्ट वा सुखदुःख वा न वेति वा माहात् ,

परवशतः स भवेद्विह तदसंशयक पुरूप ॥

२ वैशिक—वेदोपपत्त्याद् वापि वैशिक स उदाहृत , (ख)—विशेषवैशिक्या सर्वा यस्मात्समाप्तु वैशिक —भरव २२।२-३

३ शृङ्गार—रम्य देश कक्षा-काष्ठ-वेश भोगादिसेवनै ।

प्रमोदाशमा रति सैव यूनोरम्यो-यसक्तयो ।

प्रवृत्त्यमात्र शृङ्गारा मधुरागविचेष्टितै ॥ इतिरूपक ४।४८

विभाव—विशेष रूप से जो रस उत्पन्न करते हैं, उन भावों को विभाव कहते हैं । ये विभाव उद्दीपन और आलम्बन भेद से दो प्रकार के हैं, जिसका आलम्बन आश्रय लेकर रस उत्पन्न होता है, वह आलम्बन है, यथा नायिका और नायक, जो रस को उद्दीपन करता है वह उद्दीपन विभाव है, यथा—छोविछास, चन्द्रोदय, पल्लव कणु आदि ।

अन्तःकरणविकार गुम्परिजनसंकटेऽपि कुलटानाम् ।

जानन्ति तत्रामिमुक्ता अभूगापांगमधुरन्ध्रेन ॥ ५०७ ॥

वेश्याओं ने अन्तःकरण के निम्न भाग को, गुद-सन्निधी, अन्य आदि के पास में होने पर भी, उनके परिचित मनुष्य भूचालन, प्रमाण छिपि-गच्छ, तथा मधुर प्रेक्षण से जान लेते हैं ॥ ५०७ ॥

अन्या विहाय पतिगृहमभिचिन्तितकुलरत्नजनगर्हा ।

रागोपरच्छद्भया यान्ति दिगन्त मनुष्यमासाद्य ॥ ५०८ ॥

अनुराग वाली पामिनिगो-कुलनिना एव लोभनिना या पराह न करके, मन के अनुबल पुरुष के निम्न पर पति गृह को छोड़कर भी उत्तर साथ दूर देश में भी चला जाती हैं ॥ ५०८ ॥

अपमान पतिनिहितो गुम्परिकरतीव्रता गृहे दीम्यम् ।

जीलक्षतये यासा तामामतिरागतोऽन्यनरसक्ति ॥ ५०९ ॥

पति से किया अपमान, गुह्यनों से मिना विस्कार, घर में दुःखी जायन, जिनका होता है, उनके लिए अति अनुराग है। दूसरे मनुष्य में आलास उत्पन्न करके शालनाश का कारण होता है ॥ ५०९ ॥

या अप्यचलितवृत्ता भर्तु परिचरणावत्परा प्रमदा ।

ता अपि रागविमुक्तास्तिष्ठन्त्याचित्यमात्रेण ॥ ५१० ॥

जो शुद्ध चरित्र वाली स्त्रियों, भी पति सेवा में सदा तत्पर रहता है, वे केवल उचित कर्त्तव्य मात्र इति से ही प्ररहता है, पतिसेवा करना है, इसासे भरता है, स्नेह से नहीं भरता ॥ ५१० ॥

१०. इयं प्रमाद जनित-कांशानर्पममग्मया ।

सम्प्रप्रेषक्यासा च गृहगारे दृष्टिर्पिपते ॥ भाव-८॥४४०

आपिबन्तीव इवर्प या सविकापातिनिर्मळा ।

सम्प्रप्रेषक्यासा सा कान्ता मन्मथवर्धिना ॥

१. देव प्रपन्ति विषम, सहने दुःख, प्रमोद दुःखिता ।

तस्यापि मोक्षार्थं प्रेम दपिते, न स्वजनार्थे ॥

२) पुत्रप्रीत्या प्रेमप्रद्विषयविचार खलु मनः ॥

श्रीमुद्रामित्रानन्द नाटक—४।२-१०

(ग), रूप कुछ जीवनमाभिवाय नवप्रवृत्त विचारयन्ति ।

इतिनिवृत्तेऽपि रसान्विरिता कदम्बेव परितर्पयन्ति ॥

तस्मादस्त्वभिगमनं विविधनिमित्तं<sup>१</sup> नियार्यते केन ।

निजपरपण्यस्त्रीणां रागावीनं तु हृदयनिर्वहणम् ॥ ५११ ॥

इसलिए जैसा है वैसा ही ठीक है, इसमें बहुत सोच विचार करना उचित नहीं । रागप्राप्त्य, पतिविरक्ति आदि अनेक कारणों से अभिगमन (व्यभिचार) होता है, यह किसी से नहीं गेका जा सकता । विवाहित अपनी स्त्री, परकीया स्त्री और वेश्या सत्रका हृदय राग प्रेम से ही जीता जा सकता है ॥५११॥

एत्रप्रियन्धृष्टान्तेरुपपत्तियुनैस्तथेन्शैर्धाक्ये ।

अन्यैरपि चादुपदैरायर्जितमानसं गम्यम् ॥ ५१२ ॥

इस प्रकार नाना प्रकार के दृष्टान्त, युक्तियुक्त तथा तर्क वितर्क वाले वचनों से, श्लाघा परक—गुणामयी वचनों से प्रियवत्तम प्राणनाय आदि नायक के मन का वश में करने प्रसन्न करने, कामुक को अभिगमन योग्य बनाना चाहिये ॥५१२॥

विहितस्यापघियोधं किञ्चित्प्रकटीकृतकलमग्लान्या ।

उत्पादितजम्भिकया परिरभ्य घनं निशापगमे ॥ ५१३ ॥

विघटितविनिमुद्रशो विलोक्य ककुभ मुदीर्घनिश्वासम् ।

यत्तन्व्यमिति भवत्या रजनि खले किं प्रभाताऽसि ॥ ५१४ ॥

रात्रि के बीतने पर, नींद में जाग कर, कुछ थकान और ग्लानि को दिखाने हुए जम्माई लेकर, दृढ़ आलिंगन करने, निन्द्यारी ओंखों को लोल कर—दिशाओं को देखते हुए, लग्ना निश्वास लेकर, कहना चाहिये, कि क्या सबेरा हो गया<sup>१</sup> ॥५१३-१४॥

अथला विपहेत कथं दृढशक्तिमनुष्यगतिरसप्रसरम् ।

मदनजनितोऽनुरागो न विदध्याद्यदि बलाधानम् ॥ ५१५ ॥

यदि कामजनित अनुराग बल का संचार न करे, तो किस प्रकार से अबला दृढशक्ति, बलवान मनुष्य के रतिवेग का सहन कर सकती है, कामजय अनुराग के बल से ही वह सहन करती है ॥५१५॥

धन्या चक्राह्वयं प्रियतमसघटनसमयसंप्राप्त्या ।

शशिना वियुज्यमाना कुमुदिनी किं क्षीणपुण्यासि ॥ ५१६ ॥

१ आस्येन्दो पविषेवद् रतिपते चाग्नेयकोदण्डवत्

धर्मिष्ठाभ्युचक्षुः क्षणवतिवदासजौ क्षिपन्तौ भुजौ ।

विश्लिष्यद्बलकचयनमिविगलन्नीव्युन्नमन्मध्यमं,

किञ्चि किञ्चिदुदञ्चदञ्चमहो कुम्भस्तनी नृमते ॥

(ख) प्रभातशेषा रजनौ चभूव—



चन्द्रा धय है, प्रियतम ने मिलने का समय आने पर—दिन होने पर, भाग्यशाला हो गई। चन्द्रमा से मिलने जान वाला बुद्धिनि—दिन निकलने के कारण सङ्चित जान लगा—(बुद्धिनि पत्रि म खिलती है, तिन में बन् होती है), कि प्रत्ययक है, क्या बुद्धिनि वाणपुण्या है—वो तिन में रट हो रही है, चन्द्रा क्या भाग्यशाला है, वो तिन में प्रियतम से मिल रहा है ॥५१६॥

प्रिसितमुरभिमनोहरसस्त्रान चरसकुमुममप्राप्तम् ।

न करोति तथा पाँडवामास्त्वान्तिप्रच्युत यथा भृष्ट्या ॥ ५१७ ॥

प्रिसित, मुगुष्ठ, देखने में सुन्दर रख से भरा पुष्प भृष्टी को न मिलने पर उतना दुःखापन्न नहीं होता, तितना कि प्रिसित, देखने में सुन्दर, रख से भरे पुष्प का स्वाद लेने पर वह मिर कर पीन करता है ॥५१७॥

विज्ञापयाम्यतस्या रचिताजलिमौलिना विधाय नतिम् ।

परिचारकनमध्वे गणनीयाऽह प्रसादने ॥ ५१८ ॥ (युग्मम्)

हाथों का जोड़कर, शिर को मुक्तकर, मैं आपने प्रायना करती हूँ, मुझे भी अपने सेवकों में गिनने का इपा कर ॥५१८॥

अथ दापितरागागैरपहस्तितलामभिभ्रमोपचितं ।

मृदुमिश्रितानुगतैरुपचारैः पातितस्य विश्वासे ॥ ५१९ ॥

गगन्नेह न उपकारक भावा को उत्तमि करते हुए तथा घन प्राप्ति आदि लाभ का भ्रान्ति का दूर कर, हृत्थ को बरा करने वाले अमल उपचारा से, कामुक को विश्वास में लाना चाहिए ॥५१९॥

अथलोकितोऽमि लम्पट निमपि धन् कर्णसन्निधौ निमृतम् ।

शरसेनाधान्या अथ मया जालमार्गेण ॥ ५२० ॥

हे लम्पट ! तुम्हारे कानों में चुनचाप बात करते हुए मुझ आज्ञा, गनाद मार्ग से शङ्कर सेना दाह ने देख लिया है ॥५२०॥

१ नहि धन्याऽनुते दुःख यथा हि मृतपुत्रिणी—इति म्यावन

२ नापक में धनुराग को बद्धान क लिप इपां उल्लिख करनी चाहिये—

स्नेहा विना भय न श्यान्मया नश्येति विना ।

तस्मान्मानप्रकारा य इया प्रातविवधना ॥

शङ्कराविलक २।५३.

चेमद्र न भी बिस्ता है—

स्वय प्रदुतेऽप नश्यते च शङ्केत उद्विग्नविवादपीडम् ।

निन्दत् प्रकाम जननीं विस्मया मन्दस्वय धेरम च कामुकस्य ॥

समयमावृत्ता ८।७१.

मालत्या सह किञ्चिदभिदधासि सखी ममेनि न विरोध ।

यत्तु चिर स्नग्धदृशा पश्यसि ता तत्र मे शका ॥ ५२१ ॥

तुम मेरी सखि मालती के साथ मले ही बात करो, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं । परन्तु स्नेहभरी दृष्टि से जो देर तक उसको देखते हो, इससे मुझे शका है ॥ ५२१ ॥

त्वामागता न वीक्षितुमनुवध्य न याचित प्रयत्नेन ।

आहूय घट किमर्थं ताम्बूल आहिता कमलदेवी ॥ ५२२ ॥

तुम्हारे दर्शन के लिए कमलदेवी नहीं आई और न उसने इठ करके तुमसे पान माँगा । निर किसलिए उसको बुलाकर तुमने पान दिया, इसका उत्तर दो ॥ ५२२ ॥

कचुकमपकर्पन्त्या प्रकटीभवदसकसुकुचपार्श्वम् ।

साम्निनिवेश दृष्ट भवता किं कुन्दमालाया ॥ ५२३ ॥

आँचल को लाँचकर कचे, कल आर पार्श्व को दिखाते हुए, कुन्दमाला को आपने किस लिए आग्रह के साथ देखा ॥ ५२३ ॥

परिहासेन गृहीता यशशुकपल्लवे त्वया रामा ।

आच्छिद्यापक्रान्ता किं मामवलोक्य पृष्ठत सहसा ॥ ५२४ ॥

तुमने हँसी हसी में जिस स्त्री का आँचल पकड़ा था, वह पीछे से मुझे आती देखकर क्यों सहसा आँचल छुड़ाकर भाग गई ? ॥ ५२४ ॥

विज्ञानेन रयाता कुसुमलता त्व तु वर्णयस्यनिशम् ।

नृत्यती मृगदेवी विस्फारितलोचन पश्यन् ॥ ५२५ ॥

नाचती हुई मृगदेवी को आँखें पाड पाडकर देखते हुए अपने विज्ञान (वरीकरण आदि कर्म पाणिद्वय) से प्रसिद्ध कुसुमलता की क्यों रातदिन तुम स्तुति करते हो । अथवा मृगदेवी को दिव्य से देखते हुए तुम मेरे सामने कुसुमलता की जा प्रशंसा करते हो वह तो केवल बहाना मात्र है, वास्तव में तुम मृगदेवी पर रीझे हो ॥ ५२५ ॥

कारणमत्र न वेदम्यहमृजुपन्यान प्रसिद्धमुत्सृज्य ।

वज्रेण यदेपि सदा माधवसेनागृहाग्रेण ॥ ५२६ ॥

मैं नहीं समझती क्या तुम सीधे चालू रास्ते को छोड़कर सग टेढ़े मार्ग से माधवसेना के घर व आगे से निकलते हो ॥ ५२६ ॥

इति सेष्योपन्यासीरन्यैश्चासर्मवेधिलघुकोपै ।

प्रणयप्रभवैर्विहिते क्षामोदरि रुदरागवे ॥ ५२७ ॥

श्रतिविषयेऽन्तरितनुर्जनितस्थितिरायताक्षि सह मात्रा ।

परुपगिरा त्वं कुर्या इत्थं मिथ्यावचःकलहम् ॥ ५२८ ॥

( अन्तः कुलकम् )

हे बृशोदरि ! इसी प्रकार के ईर्ष्या से मरे, दिल में चोट न पहुँचानेवाले, थोड़ा सा गुस्सा लाने वाले, स्नेह से मरे, अन्य वचनों से अनुराग उत्पन्न करके; हे विशाल नेनों वाली ! अपने शरीर को छिपाकर, नायरु मुन सके तथा तेरो उपस्थिति जान सके, इस स्थिति में तुम्हें माता के साथ कठोर वाणी में फूटा वाक्कुलह इस प्रकार से करना चाहिए ॥ ५२७-५२८ ॥

अस्लेशोपनतधनः प्रेमप्रद्वो निरर्गलत्यागः

, भट्टानन्दस्य सुतो निधिभूतोऽमव्यया स्वया त्यक्तः ॥ ५२९ ॥

अर्थ दृष्टि से वेश्याओं के लिये गमनीय फामुक—रिना कष्ट के जिसे धन प्राप्ति हुई हो; प्रेम से नम्र [ प्रेम में पागल ]; बेरोक रोक का—अप्रतिग्रह रूप में त्याग करने वाला, खुले हाथों से रख करने वाला; अशरित्त द्रव्यवान्; भट्टानन्द का पुत्र तुम्हें भाग्यहीन ने छोड़ दिया ॥ ५२९ ॥

व्यसनोपहृतधिवेको दानैरुत्तिः स्वदारविद्वेपी ।

मामधिगण्य मूढे निर्भर्त्सित एव केशवस्वामी ॥ ५३० ॥

व्यसनी ( पान-स्त्री-मृगया आदि ) से नष्ट धिवेक ( वस्तुन्यायतन्त्र बुद्धि ) अतिशय धनदाता; अपनी पत्नी से द्वेष करने वाले नैराश स्वामी को, हे मूढ़ ! तुने मेरी परवाह न करके तिरस्कृत किया ॥ ५३० ॥

अगणितराजापायो विन्निद्धन्नायः स्वभावतस्त्यागी ।

स्मिपेक्षितोऽनुरक्तो वामधिया शौलिकाम्यक्षः ॥ ५३१ ॥

राजदण्ड आदि की भी परवाह न करने वाले—निर्मय, अविच्छिन्न आम-दनी वाले, स्वभाव से त्यागी एवं अनुरक्त शौलिकाम्यक्ष ( कर बमूल करने वालों के अव्यव) की; उल्की मारवाली तुने क्या सोचकर उपेक्षा की ॥ ५३१ ॥

१—वाक्यापन में केशवार्थस्वामी गणना—स्वतन्त्रः पूर्वं वयसि वचमानो वित्त-  
वापनरोक्षनृत्तिधिवेकपाननृच्छादिगणविषयः, संघर्षवान् संवत्सायः,  
मुमगमानो, राजागणकः, पण्डितश्च, पुंशब्दार्थो, समानशब्दो, स्वभावतस्त्यागी,  
रात्रि महामात्रे वा मित्रो, देवप्रमाथो, वित्तवमानो, गुरुत्याग आगनाविषयः,  
सजाताना अप्यभूतः, सविषय एकपुत्रो, क्षिणी, प्रसन्नकामः, शूरो  
वैपश्चेति—अधि० ६ अ० १।२०.

पितुरेक एव पुत्रश्चतुर्थवयसो गदाभिभूतस्य ।

द्रविणवत प्रभुरातो निराकृतो भूरिकामया सोऽपि ॥ ५३० ॥

वृद्ध एव रोगों से खोखले गने धनी पिता का अकेला एक ही लडका,  
उसको भी तूने अधिक धन की लालसा से निकाल दिया ॥ ५३० ॥

स्वकरेण परित्यक्ता त्वया त्रिभूतिं करोमि किं पापा ।

सर्वभरेणोपनत वसुदेवमनादरेण पश्यन्त्या ॥ ५३१ ॥

हे पापन् ! मैं क्या करूँ, अन्न वस्त्र अलंकार गन आदि सब से भरपूर  
वसुदेव की अनादर की दृष्टि से देखते हुए तूने अपने ही हाथों से घर आई  
लक्ष्मी को धक्का दे दिया ॥ ५३१ ॥

पुरुषान्तरसघर्षात्प्रोत्सादितचित्तवृत्तिरनपेक्षम् ।

वसु धिस्तृनति यो रभसात्तस्य न यार्ता त्वया पृष्टा ॥ ५३४ ॥

अन्य कामुक पुरुष का स्पृहा हाड भ अतिशय उत्साह उत्पाने वाले तथा  
अन्सी की परनाह न करने वाले, एव जो गुरस्त धन देता है, ऐसे व्यक्ति की  
भी तूने बात नहा पूछी ॥ ५३४ ॥

चित्रादिवस्त्राकुशल स्मरशास्त्रविचक्षणो वृषप्रकृति ।

उपकुर्वन्नपि सर्वो धिद्वेपिगणे त्वया क्षिप्त ॥ ५३५ ॥

चित्र आदि आलेखन में कुशल, कामशास्त्र में निपुण, वृष जातीय नायक,  
सब प्रकार से उपकार करने वाले को भी तूने शत्रु बना लिया ॥ ५३५ ॥

चन्द्रवतीमाभरण दत्त मधुसूदनस्य पुत्रेण ।

पश्यन्ती विभ्राणामपि रागिणि किं न ह्यताऽसि ॥ ५३६ ॥

एक कामुक की टी वस्तु को दूसरों को बताने के लिये कहती है—हे धन  
की लोभिनी ! मधुसूदन के पुत्र से दिये आभूषण को पहने चन्द्रवती की देख  
कर तू क्यों लज्जित होती है ॥ ५३६ ॥

ग्रामोत्पत्तिरक्षेपा प्रविशन्ती सिंहराजविनियोगात् ।

मन्मथसेनावास लघयति ते रूपसौभाग्यम् ॥ ५३७ ॥

ग्रामस्वामी सिंहराज के कारण ही ग्राम की सम्पूर्ण सम्पत्ति घर में आने से,  
मन्मथ सेना का आवास यह तेरा रूप ही तेरे सौभाग्य को कम कर रहा है—  
तेरे रूप के कारण ही तेरा सौभाग्य है, तुझ सिंहराज को सम्पन्न करने से ही  
यह सारा घर धन जाय से भरा है ॥ ५३७ ॥

१ उपकारपरो नि य जीवश श्लेष्मस्तथा ।

दृशागुल्लशरीरक्ष धीमान् धीरा वृषा मठ ॥

वपति वीर्य इति च वृष कामुक ।

आम्तामपरो लाभो मट्टाधिपनन्दिसेनतनयेन ।

शिवदेव्या उपचारः क्रियते यस्तेन पर्याप्तम् ॥ ५३८ ॥

महाधिप नन्दसेन के पुत्र से मले ही दूसरा कोई भी लाभ न हो, उसने शिवदेवी की जो सेवा की वही बहुत है ॥ ५३८ ॥

परयेन धवलगृहं पाशुपताचार्यभावशुद्धेन ।

कारितमनंगदेव्या विभूषणं पत्तनन्य सकलस्य ॥ ५३९ ॥

पाशुपताचार्य मान शुद्ध अनंग देवी से बनवाये, इस सीध धवल गृह की देता, यह सारे नगर का आभूषण है। (भाव-पण्डितार्थ सूचनमानव उपाधि है) ॥ ५३९ ॥

आपणिकार्थस्य पुत्रा राजा लभते चतुर्थमपि भगम् ।

हृष्टपतिरामसेनप्रसादतो नर्मदा यमुपमुक्ते ॥ ५४० ॥

राजार में बिक्री के लिये आई वस्तुओं के मूल्य का चौथाई भाग राजा वैसे प्राप्त कर सकता है, जब कि राजार के मालिक रामसेन के अनुग्रह से नर्मदा उसका उपभोग करती है। (सब भाग रामसेन स्वयं ही रख लेता है और फिर नर्मदा के लिये रक्ष करता है) ॥ ५४० ॥

पुंस्त्वास्यापनकामो न स्त्री न पुमान्किल प्रमुखाभी ।

अनुमन्नुपहसितस्त्वया जडे स्वार्थमनपेक्ष्य ॥ ५४१ ॥

प्रमुखाभी न पुष्य श्रार न स्त्री है, नपुंसक होने से वेश्याओं में अपना पुस्त्व दिवाने की इच्छा से प्रयत्न करता है, ऐसा कहकर; हे मूर्ख ! तुने स्वार्थ का परवाह न करके उसकी मजाक की ॥ ५४१ ॥

राजीकरणैकमतिर्नरनाथानुग्रहेण विख्यातः ।

प्रत्यास्यातः स तथा रविदेवः निरुत्तरमासांस्तनु ॥ ५४२ ॥

राजीकरण श्रीपथियों के प्रयोग में लगा, राजा का प्रियराज; रविदेव तेरी दासता आदरा हुआ भी तुने लौटा दिया ॥ ५४२ ॥

किं कन्दर्पकुटुम्बे जानोऽसाधुत वशीकरणयोगम् ।

जानाति कर्मणि सिद्धं येनाष्ट्यामि सर्वभावेन ॥ ५४३ ॥

क्या यह कामदेव के कुटुम्ब में उत्पन्न हुआ है अथवा क्या कोई छिद्र पर्याप्त योग यह जानना है, जिसमें कि सम्पूर्ण रूप से उसकी और आदर हुं है ॥ ५४३ ॥

१. बाहीदरद—येन नारीषु सान्धर्यं बाहिमन्त्रमने नरः ।

येन बाह्यधिक बीजं बाहीदरदमेव तत् ॥ पारु. वि. घ. १.

बाल्ये तादृयोग्या परचादपि वृद्धभावपरिभूता ।

तारुण्ये रागहृता यदि गणिका भ्रमतु तद्विज्ञाम् ॥ ५४४ ॥

बाल्यावस्था में अपक्ववयस्कता के कारण हम सभोग के अयोग्य हैं, वृद्धावस्था में अति वृद्ध होने से अतिपक्ववयस्का होने से सभोग के अयोग्य रहती हैं। यौवनावस्था में यदि गणिका अनुराग स्नेह के कारण एक ही के परवश हो जायें तो वह सारी जिंदगी भिलापात्र लेकर ही घूमा करे ॥ ५४४ ॥

उपनय भाण्डकमेतद्यदजित मामकेन देहेन ।

विदधामि तीर्थयात्रामास्त्र सुख प्रेयसा साधम् ॥ ५४५ ॥

( अन्त पुलकम् )

मेरे अपने शरीर को बेचकर कमाये हुए धन का भय पत्र ला, मैं तीर्थ यात्रा करूँ ( जिससे पाप धुल जाये ), तू अपने प्रीतिपात्र कामुक क साथ आनन्द से रह ॥ ५४५ ॥

आर्यजननिन्दिताना पापैकरसप्रधाननारीणाम् ।

एतावानेव गुणो यदभीप्समागमो निरावरण ॥ ५४६ ॥

सज्जनों से निन्दित, पाप में ही लगी स्त्रिया का एक यही गुण है, कि उनका इच्छित पुरुष के साथ समागम बिना किसी प्रतिबन्ध के होता है ॥ ५४६ ॥

नो धनलाभो लाभो लाभ खलु बल्लभेन संयोग ।

अक्षिगतादर्थाग्निर्न भवति मनस प्रसादाय ॥ ५४७ ॥

धन का लाभ कोई लाभ नहीं प्रिय के साथ मिलाने यही सच्चा लाभ है। स्नेह रहित द्वेष पुरुष से बिना बहुत धन भी मनका प्रसन्न नहीं करता, ( प्रीतिपात्र से मिला थाड़ा धन भी आत्मा को प्रसन्न करता है। द्वेष्ये स्व क्षिगत — इत्यमर ) ॥ ५४७ ॥

गाढानुरागभिन्न तारुण्यरसामृतेन ससिक्तम् ।

न मनति सहृदयहृदय विभयार्जनसम्भवा चिन्ता ॥ ५४८ ॥

हृद स्नेह से प्रियसित, अमृता रूपी तारुण्य रस यौवन रस से सिक्षित, सहृदय तरुणजन के हृदय में धन कमाने आदि का चिन्ता नहीं होती, धन कमाने की चिन्ता से परेशान नहीं होता ॥ ५४८ ॥

लाभ स एव परम पर्याप्त तेन वृत्ताऽस्मि ।

विनिवेश्य यदुत्सवे निक्षिपति मुखे मुग्धेन ताम्बूलम् ॥ ५४९ ॥

गोदी में बिठाकर वह अपने मुख से मेरे मुख में जो पान देता है, यही मेरे लिये सजसे स्वास्ति लाभ है मुझ इतना ही चाहिये, मैं इसके पूर्ण सन्तुष्ट हूँ ॥५४८॥

सुरतश्रमवारिकखान् परिमाष्टि निनाशुकेन गात्रेषु ।

यदुरसि निधाय त्रिहसस्तस्य न मूल्य वसुधरा सकला ॥ ५४९ ॥

छाती पर लेगाकर हैंसते हुए अपने वस्त्र के प्रान्ति द्वारा सम्मोहजन्य श्रम के स्वेद बिन्दुओं को मेरे शरीर से आ पोंछता है, उसका मूल्य सारी पृथ्वी भी नहीं है, अनमोल है ॥ ५४९ ॥

शिथिलितनिन्दारतिर्मयि सत्तमना अनन्यकर्तव्य ।

यत्सौ चित्तनलरूपन्तिरस्कृत तेन गाणिक्यम् ॥ ५५० ॥

मेरे मैं मन लगने पर अपनी स्त्रा को भी भूला कर मुझ प्रसन्न करने में ही मग्न लगा, अपने रूप से नष्ट का भी चिन्तने वाले, इस पुरुष के कारण मैंने वश्यापन भी भूला दिया ॥ ५५० ॥

बहुमुमुक्षुमरसाद्याद् कुत्राणा मधुरी त्रिधिनियोगात् ।

इहस्पृशन्नशेषेण लभते रज्जु यन भवति कृतकृत्या ॥ ५५१ ॥

बहुत से फूला के रस का आस्वाद न करता हुई भ्रमरा भाग्य के कारण ऐसे फूल निषेध का पाता है, जिससे कि वह धन्य-कृतकृत्य हो जाता है ॥५५१॥

अयि सरले तावदिमा उपदेशगिरो यसन्ति कर्णान्त ।

पायन्नान्तर्भूत तच्चेतसि मामक चेत ॥ ५५२ ॥

हे सरले ! ये सब उपदेश तथा तब कानों के अन्दर रहते हैं, जगतक मेघ चित्त उससे चित्त के अन्दर गिलीन नहीं होता, उसने चित्त से भिन्नतर मेघ चित्त एक नहीं मन्ता ॥ ५५२ ॥

श्रीरम्भु दुर्गतिर्वा, वेरमनि वासो भवत्वरण्ये वा ।

स्थलोने नरके वा, कि बहुना, तेन मे सार्धम् ॥ ५५३ ॥

प्रेमा के साथ रहने पर मुझे लक्ष्मी मिले या मेरी दुर्गति हो, घर में निवास मिले या जगल में भस्त्रेण मिल, स्वर्ग मिल या नरक मिले, इसकी मुझ फाद चिन्ता नहीं ॥ ५५३ ॥

१. दृष्टादसामा द्वि पतिप्रसाद—विशमाकदेववर्णित १०।३८

प्रभुपति मुक्तसमये सुप्रीता चैव समये विरमे ।

विदूद्रावसमापों सम्यक् या न खादेश पश्य ॥

२. अमिनवदेखितान्ता कलपति वाग्य प्रमेय धर्मात्म ।

उपामपपितु नमिता बुभुमाप्रपनुवतय मधु ॥ आर्यासमयगी-१९

इदमास्तेऽलकरणं दुर्जननि गृहाण त्रिं ममैतेन ।

तेनैव भूपिताऽहं गुणनिधिना भट्टपुत्रेण ॥ ५५५ ॥

हे कुमाता ! ये रक्ते हैं आभूषण ! सम्भाल, मुझको इनसे क्या प्रयोजन !  
मैं तो उसी गुणवान भट्टपुत्र से शाभिा हूँ, वही मरा आभूषण है ॥ ५५५ ॥

उचितस्थाननियुक्तान्यपनीय विभूषणानि सावेगम् ।

एवमभिधाय यास्यसि मातु पुरत समुत्सृज्य ॥ ५५६ ॥

इस प्रकार कहकर, योग्यस्थानों पर धारण किये आभूषणों को गुस्ते से उतार  
कर, माता के सामने पेंककर निरुल पड़ेगा—दूर हो जायेगी ॥ ५५६ ॥

इति रागान्ध श्रुत्वा चेतसि कुरुते कदाचिदेवमिदम् ।

स्नेहाधिष्ठितमनसामविचेयं नास्ति नारीणाम् ॥ ५५७ ॥

प्रम में पागल हुआ—ऐसा मुनकर कदाचित मन में यह सोचने लगे कि  
स्नेहयुक्त स्त्रियों के लिये कुछ भी अस्पर्शनीय नहीं है ॥ ५५७ ॥

जननीं जन्मस्थानं दान्धयलोकं वसूनि जीव च ।

पुरुषविशेषासक्ता सीमन्तिन्यस्तृणाय मन्यन्ते ॥ ५५८ ॥

पुरुष विशेष में आसक्त स्त्रियों माता, जन्मभूमि, सम्बन्धी जनों को, प्राणों  
को और शरीर को तृण की भाँति तुच्छ गिनती हैं ॥ ५५८ ॥

रणेशिरसि हते यस्मै यन्मोपमयन्त्रनिर्गतप्राण्णा ।

प्राणान्मुमोच गणिका न मन्त्रविधिना हता नाम ॥ ५५९ ॥

युद्ध में शिर पर यज्ञ लगने के कारण प्रमी की मृत्यु होने पर हता नामक  
वध्या ने गोमण से पड़े यज्ञ के समान कठोर पथर से प्राणों का त्याग कर  
निया था, किसी मन्त्र विधि से—वशीकरण मन्त्र से वश में होकर प्राण नहीं  
छोड़े थे केवल स्नेह वश ही प्राण छोड़े थे ॥ ५५९ ॥

कालवशेनायासीत् पचत्व दाक्षिणात्यमणिकठ ।

प्रेमोपगता वेश्या तेनैव समजगाम भस्मत्वम् ॥ ५६० ॥

दक्षिण देश के मणिकठ के कालवश से मर जाने पर उसके प्रम में पागल  
बनी वेश्या भी उसके साथ ही जल गई ॥ ५६० ॥

भास्करवर्मणि याते मुरवसति वारिताऽपि भूपतिना ।

तद्दुःखमसहमाना प्रविवेश विलासिनी दहनम् ॥ ५६१ ॥

भास्करवर्मा के स्वर्ग चले जाने पर उसके दुःख का सहन न करके, राजा  
के मना करने पर भी विलासिनी अग्नि में जल गई ॥ ५६१ ॥

१ विक्रमाक देवचरित में—

मरणमपि तृण समर्थयते मनसिजपौहत्यासितास्तदवयव — ६।१३



ज्वालाकरालहुतभुजि नग्नाचार्यः पपात नरसिंहः ।

तस्मिन्नेव शरीरं निजमजुहोच्छोकपीडिता दासी ॥ ५६२ ॥

नग्नाचार्य नरसिंह अग्नि की तीव्र ज्वालाओं में गिर पड़ा था, उसी अग्नि में शोक से पीडित दासी ने अपने शरीर को भी डाल दिया ॥ ५६२ ॥

प्रीतिभराक्रान्तमतिस्त्रिदशालयजीविनां व्रमोपगताम् ।

अंगोचकार मुक्त्वा कदम्बका भट्टविष्णुमामृत्योः ॥ ५६३ ॥

कई पीढ़ियों से वंशपरम्परा में प्राप्त स्वर्ग के समान ऐश्वर्य को छोड़कर नैऋत प्रेम के कारण ही, कदम्बका ने भट्ट विष्णु का साथ मृत्युपर्यन्त निभाया, स्वीकार किया, निर्धन जीवन म्रिताया ॥ ५६३ ॥

देशान्वरादुपेता प्रसादमात्रेण वीक्षिता यनिता ।

तत्याज न पादयुग समरे निहतम्य वामदेवस्य ॥ ५६४ ॥

वामदेव के प्यार भरी दृष्टि के देखने मान से ही अनुत्पन्न नहीं रही दूर देश से उसने साथ चली आई । युद्ध में वामदेव के मरने पर भी उसने पैरों को पकड़कर बैठ गई ॥ ५६४ ॥

भट्टकदम्बकतनये याते वसन्ति परेतनाथस्य ।

चक्रं देहत्यागं रणदेवी धारयोपिता मुरया ॥ ५६५ ॥

भट्ट कदम्ब के पुत्र ने मर जाने पर, वेश्याओं में बैठे रणदेवी ने अपना शरीर भी छोड़ दिया ॥ ५६५ ॥

अस्यामेव तगर्यां त्रिणिमदात् कालसंचितमशेषम् ।

मेन्याऽऽकृष्टा गणिका मिश्रात्मजनीलकण्ठाय ॥ ५६६ ॥

इसी बापणसी में बहुत समय से इकट्ठे किये सम्पूर्ण धन को प्रेम से लीची वेश्या ने मिश्र ने पुनः नीलकण्ठ को दे दिया था ॥ ५६६ ॥

इयमापि मयि विहितास्था भ्रातृवचकल्पिता गता कदापि ।

त्यक्त्वाऽऽभरणं सयं प्रविजृम्भितमन्युसवेगा ॥ ५६७ ॥

माता के वचनों से दुःखी, सम्पूर्ण आभूषणों का त्याग करने, मोघ में पागल होकर मेरे में विश्वास रखकर नहीं चली गई ॥ ५६७ ॥

उत्सृष्टालंकरणं परितोषितमावृमुत्तपरिवाराम् ।

सतपयामि सम्प्रति सर्वस्वेनापि हरिणात्मीम् ॥ ५६८ ॥

सब आभूषणों का परित्याग करके, माता, दासी आदि सम्बन्धी जनों को छोड़कर निरुली हुई इस चमल आँग वाली की अपने सर्वस्व को बाँची लगाकर भी रक्षा (सुख) करूँगा ॥ ५६८ ॥

गेहेन किं प्रयोजनमन्यैरपि बन्धुदारपरिवारैः ।

ससारग्रहकारणमेका खलु मालती मम हि ॥ ५६६ ॥

मुझे घर से क्या मतलब, दूसरे बन्धु स्त्री-सम्बन्धी जनों से भी कुछ काम नहीं । मेरे लिये तो ससार में रहने का अनेका कारण मालती ही है, उसीके कारण जीता हूँ ॥ ५६६ ॥

अमृतकरावयवैरिव घटिता या दृढतर परिष्वक्ता ।

चेतो नयति समत्वं ब्रह्मण आनन्दरूपस्य ॥ ५७० ॥

मालती ये अवयव चन्द्रमा की किरणों से बने हुए हैं, जिनका गाढ़ आलिंगन मनको ब्रह्मानन्द प्राप्ति का आनन्द देता है ॥ ५७० ॥

आविर्भवदात्मभयक्षोभक्षतधीरताघन रभसात् ।

विगलितकुचयुगलाघृतिरालिंगति मालती धन्यम् ॥ ५७१ ॥

काम की व्याकुलता से बेचैनी बनी—कामातुर स्तना की चोली को हटाकर मालती किसी भाग्यवान् का ही दृढ आलिंगन करती है ॥ ५७१ ॥

निर्दयतरौघरक्षण्डनसन्ध्यथहुकारमूर्ध्नि सुरते ।

अहर्हेति वचस्तस्या अपुण्यभाजो न शृण्वन्ति ॥ ५७२ ॥

सम्भोग के समय आवेश में किये निर्दय औघ्रदश से उत्पन्न पीड़ा के साथ किये हुए मालती के हुँकार को अशुभ कर्म करने वाले नहीं सुन सकते ॥ ५७२ ॥

स्मृतिजन्मजनितविकृतिप्रततिच्छन्न करोति ससारम् ।

आयद्वसुरतसगरविमर्दसक्षोभिता दयिता ॥ ५७३ ॥

प्रवर्तित रतिपुद्गल में अगा के निष्पीडन से बेचैन बनी प्रियतमा, काम से उत्पन्न नाना प्रकार की क्षोभ रूपी लताओं से ससार को ढँप लेती है । मृत काल जनित क्षोभ से रमणीय बनी प्रिया को देखने से कामुक को सारा संसार शृङ्गारमय ही दीखता है ॥ ५७३ ॥

१ कवि ने कहा भी है—

किं कौमुदी शशिकला सकला विचूर्ण्य सयोज्य चामृतरसेन पुन प्रयत्नात् ।

कामस्य घोरहरदुःकृतिदग्धमूर्त्ते संजीवनौषधिरियं विहिता विधात्रा ॥

(ख) पंचदशी में—कुमारादिवदेवाय ब्रह्मानन्दैकतपर ।

क्षीपरिष्वक्त्वद्देव न बाह्य नापि चान्तरम् ॥ ११।२४

(ग) सद्यथा प्रियया स्त्रिया सपरिष्वक्तो न बाह्य किंचन वेद मा-तरम्—

बृहद् ४।३।११

(घ) प्रज्ञानघन पद्मनन्दमय—माण्डू २

विज्ञानमानन्दब्रह्म बृहद् उप ३।१।२८,

मादतराशिलप्रवपुर्मज्जते कान्ता प्रमोदसम्मोहम् ।

शिथिलीकृता तु किञ्चिद्विविधविकारं समुच्छसिति ॥ १७४ ॥

मादतर—अतिशय बल पूर्वक आलिंगित कान्ता आनन्द से बेहोश हो जाती है, आलिंगन के थोड़ा ढाला करने पर नाना प्रकार के विकारों को [ सचारी आदि भावों ( ग्लानि-श्रोत्र-यादि ) को ] प्रगट करती है ॥१७४॥

सन्त्यन्या अपि सत्य पुरुषोचितकर्मपण्डिता प्रमदा ।

सृष्टाजनया तु नियतं विपरीतरतन्रियामोक्षी ॥ १७५ ॥

यह सत्य है कि पुरुषोचित कर्म में—विपरीत रति में पण्डिता—दूसरी क्रियाँ भी हैं, परन्तु विपरीत सम्भोग सम्बन्धी चर्चा का प्रारम्भ तो इसी मालती ने किया है; इनकी समस्त गती मालती पण्डिता ही है ॥१७५॥

तन्त्रीजाद्यविशेषान् प्रोद्दामानलन्मनस्तस्या ।

कुहरितरेचितकम्पितसम्पादननैपुणं करोति जडान् ॥ १७६ ॥

रतिकाल में प्रचण्ड कामदेव वालों मालती के गले से निरली कोरिल ध्वनि, श्वास, कम्पन, आदि की निपुणता, वीणा बजाने वालों को भी नीचा दिखाती है, उनको भी मूर्ख बनाती है ॥१७६॥

ललितांगहारजृम्भितवलितस्मितवेपनानि मालत्याः ।

पर्यङ्गहाति कामो रतिमोहनचेष्टितेषु यद्गुमानम् ॥ १७७ ॥

मालती के श्रगौं का सुन्दर घालन—झिलना चलाना, बम्भाई लेना, वलित—मुड़ना-मुड़ना, स्मित—सुसकराना, वेपन—हृयं रास कोश आदि से होने वाले कम्पों को देखकर कामदेव, अपनी पत्नी रति की चित्त हरने वाली चेष्टाओं को भी भूल जाता है, उनमें भी अधिष भ्रष्टा नहीं करता ॥१७७॥

न भ्राम्यं परिहसितं, नाविभ्रमतरलिताक्षिविशेषः ।

सुरतानुयोगविधौ दोहददानं न पुष्पराण्यस्य ॥ १७८ ॥

मालती के हँसने में गँवारपन नहीं, उसका चंचल पदार्थ विलास रहित नहीं । मालती की सम्भोग में कामकी प्रवृत्ति दोहद दान के बिना नहीं होती ॥१७८॥

१. पुरुषायित—नायकरयानुसत्या या स्वमनीयिक्याऽयवा ।

पुंस्त्वं श्री रमते रागान् पुरायितमुष्यते ॥

२. ललित—सुन्दरारववाऽद्धानो विन्यासो ललितं भवेत्, वलित—छात्यविरोध ।

३. दोहद—विरोध वृद्धों में पुष्प आदि संहृदि के लिए जो दान दिया जाता है,

यह दोहद दान है—यह दोहद दान दस वृद्धों के लिए प्रसिद्ध है, यथा—

श्लोणी सप्तोऽधियगुर्विहसति, यदुच्छः सोऽपुण्ड्रपमेकात्,

पादाघातादयोऽस्तिबद्धवुरयसौ वीजराक्षिगनाम्याम् ।

नार्थपरो नयनरसो, न पराशयवेदने विचक्षणता ।

नासौष्टव प्रसंगे, न चान्यगुणकीर्तनेषु भारत्या ॥ ५७६ ॥

मालती की स्नेह भरी दृष्टि घन की लोभी नहीं, उसमें दूसरे के अभिप्राय को जानने की कुशलता नहीं, प्रसंग—समयोचित कार्य में असीष्टव नहीं, दूसरे के गुणों की प्रशंसा करने में उसकी बाखी में आग्यपन नहीं ॥५७६॥

नापरपुरुषश्लाघा, न त्याग कालदेशवेपथ्य ।

यैदग्ध्यजन्मभूमेर्गुरुजघनभरेण मन्दयाताया ॥ ५८० ॥

( विशेषकम् )

मालती नायक का छोड़कर दूसरे पुरुष की प्रशंसा नहीं करती, कालोचित एवं देशोचित वेष का कभी त्याग नहीं करती, काल और देश के अनुसार आभूषण वेष आदि धारण करती है । विदग्धता चानुर्य का तो वह उत्पन्न स्थान ही है । भारा जघनों के भार से वह सग मन्द गति से चलता है, गजगाभिनी है<sup>१</sup> ॥५८०॥

यथाह्वपरिष्वजन हससमारलेपनदुलपरिरम्भम् ।

पारायतावगूहनमाचरति सुमध्यमा यथावसरम् ॥ ५८१ ॥

नाना प्रकार के आलिंगन—शोभन मध्यम भाग ( नाभि प्रदेश से निचला उदर भाग ) वाली मालती समय को देर-देर चन्दाक के समान हस के समान, नेवले की भाँति एवं कबूतर के समान आलिंगन करती है<sup>२</sup> ॥५८१॥

तद्वप्रयचनहास्यव्ययहृतिहृतमानसस्य जायन्ते ।

अनुदूलसुन्दरा अपि भरणीया केवल दारा ॥ ५८२ ॥

मन्दारो नर्मवाश्यात्, पट्टु मृदुहस्य । धग्गको वक्त्रवालात् ,

पूतो गीतान्यमेदर्विक्रमति च पुरो वर्तनात् कर्षिकारः ॥

१ भारी जघन—

किं विश्रमत्र जघन परमुगूहनया मन्दीभवन्ति यदि ते गतयो वराणि ।

पट्वीछयेऽपि गलधैर्यगुणा युवानो, गन्तुं मवागपि पुनर्नहि शक्नुवन्ति ॥

२ चन्दाक पक्षियों की भाँति—शरीर का परस्पर रगड़ना, हंसाखिगन—हंसों की भाँति छल्ला होना और फिर मिछना इस प्रकार बार-बार करना, नकुला खिगन—नकुल की भाँति जोर से एवं देर तक गाढ़ में बिठाना, यथा—योगवायिष्ठ ( ५।१०६।१३-१४ ) में—

गच्छद्द घनस्नेह मुह्यद्वाप १ पुराण्टुहम् ।

आजिजिग विर कात्यां नकुलो नकुलीमिव ॥

पारायड की भाँति आलिंगन—सामने से परस्पर मुख मिछाना ।

मालती की वक्रोक्तियों से, हास्य से, वचनों से, मुस्कयते हुए निकले वचनों से प्रतारित ठगे-मन वाले पुरुष के लिये अनुकूल एवं सुन्दर स्त्रियों केवल पोषणीय ही रहती है, उनको खाना कपड़ा ही मिलता रहता है (प्रेम नहीं) ॥५८२॥

सूचयति पृथक्करणं धातूणां, वक्ति विपमशीलत्वम् ।

विवृणोति गृहविसंस्थामभिनन्दति पितृकुलस्य गुणवत्ताम् ॥५८३॥

घर की परती भाईयों से अलग होने की सिखा देती है, भाईयों के बुरे व्यवहार की शिकायत करती है, सन्धियों के बीच में घर की दुर्व्यवस्था को कहती है, अपने पितृ कुल के बढप्पन का बखान करती है ॥५८३॥

अन्यसुतपक्षपातं कथयति मातुस्तिरस्करोति पतिम् ।

पार्श्वनिमग्नां जायामानयति विमुच्यकार्मुकं भद्रतः ॥ ५८४ ॥

( युग्मम् )

ज्येष्ठ या देवर के पुत्र को अधिक स्नेह करनी की साव की शिकायत करती है, प्रसंग या अप्रसंग पर पति का तिरस्कार करती है, कामदेव अपने पतुप के बिना हो पार्श्व में लेटी पत्नी को अनुकूल कर देता है ( स्त्री की प्रेरित करने के लिये कामदेव को अपने पतुप की आवश्यकता नहीं होती ) ॥५८४॥

एवं कृतेऽपि सुन्दरी यदि तिष्ठति नायकः प्रकृत्यैव ।

इत्थं पथि परिमोपस्त्यत्सख्या नैपुणेन वक्तव्यः ॥ ५८५ ॥

हे सुन्दरि ! इतना मत्र करने पर भी यदि नायक अपने स्वाभाविक स्वभाव में बना रहे, तब, रास्ते में अपनी सखी के साथ, नायक को ठगने के लिये होशियारी से इस प्रकार बातचीत करनी चाहिये ॥५८५॥

गृहकार्यव्यग्रतया चित्तप्रहणाय या कुलस्त्रीणाम् ।

नायाते भवति, सखी प्रावृद्धनकलुषिते दिशां चक्रे ॥ ५८६ ॥

घर के काम में व्यस्त होने से, अथवा कुलीन पत्नी के चित्त के प्रसन्न करने में लगे रहने पर, आप के न आने से हे सखि ! मेरे लिये तो सब ओर अन्वेष हो गया ॥५८६॥

प्रमीयकशयनमत्ता स्फारीभवदात्मसम्भवविकारा ।

त्वद्वर्त्मनिहितनेत्रा गीतामन्येन गीतिकाभट्टणोत् ॥ ५८७ ॥

प्रासाद-महल में विहार पर पड़ी मुझमें कामजन्य विकार के उत्पन्न होने से; आपके ही रास्ते में आये गङ्गाय मैने; दूसरे से कहा यह गीतिका मुनी ॥५८७॥

यदि जीवितेन कृत्यं संभावय किरहिणि प्रियं तूर्णम् ।

घनरसितम्य हि पुरतः कदलीदलकोमलः कुलिशपातः ॥ ५८८ ॥

हे विरहिणि ! यदि तुमको जीने की चाह है, तो जल्दी से उसका अभिसरण करो उसके पास जाया । बादलों की गड़ गड़ाहट के आगे, वज्र का गिरना भी वेले के पत्त के समान कोमल होता है<sup>१</sup> ॥५८८॥

आकर्ष्य मामवादीद्वन्यास्ता युवतय सखि कठोरा ।

या विपहन्ते दीर्घप्रियतमविरहानलासारम् ॥ ५८९ ॥

इसको मुनकर उसने मुझसे कहा, हे सखि ! जो कठोर हृदयवाली तरुणियाँ प्रियतम की विरहाम्नि के प्रसार को देर तक सहन करती हैं, व धन्य हैं, ( मैं तो आमागी हूँ )<sup>२</sup> ॥५८९॥

मम तु दिनान्तरितेऽपि प्रेयसि लब्ध्वा सहायसामग्रीम् ।

विदधाति मकरषेतन उत्कलिकाविधुरित हृदयम् ॥ ५९० ॥

मेरे लिये तो प्रियतम का एक दिन का भी व्यवधान पढ़ने पर कामदेव अपनी कामोद्दीपक सामग्री को लेकर मेरे हृदय को उत्कलित करने लगता है ॥५९०॥

उत्कण्ठयति नितान्त समीरणो घकुलकुसुमसन्नाह ।

प्रन्यावयन्ति धैर्यान्मधुरध्वनिमि कलापभृत ॥ ५९१ ॥

कामोद्दीपकसामग्री—मौलसरी व फूलों की गंध से मेरी वायु अतिशय वेचैन करती है, मोरा की मीठी वाणी मेरे धैर्य को नष्ट कर देती है ॥५९१॥

सतडिन्मिलद्वलाकामसिताम्बुधरावली समुद्यन्तीम् ।

उत्पहते सा वीक्षितुमविरलमालिगितो यथा कान्त ॥ ५९२ ॥

जिन लिया ने अपने प्रियतम का निरन्तर गाढ़ आलिंगन किया हुआ होता है, वे लियों उठनी हुई विद्युत वाली काले बादलों की घनधोर घटा की ओर जाती हुई बलाकाओं को देखने के लिये उत्साहित होती हैं<sup>३</sup> ॥५९२॥

१ मयाजोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेत्,

कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरस्थे ॥ मयदूत

विरहमविरह वा बाजुरुन्वन्ति मेधा सुखममसुखिन वा सर्वमुत्कण्ठयन्ति ।  
बाजुरामापय २-१८

२ अतसीपुष्पसकल ख वीक्ष्य जलदाताम ।

ये वधोनेऽप जीवान् न तेषा विद्यते भयम् ॥

३ मेघदूत में—गर्भाधानश्लेषपरिचया नूनमावद्वला

सेविष्यन्ते नयनसुभगा खे भवन्त बलाका ॥

मृच्छकटिक में—गर्जति सतडिद्वलाकशबलैर्मघैः सख्य सन —॥५-१८॥

गजकदम्बकमचकमुच्चकैर्नमसि लोच्य नवापनुदमम्बरे ।

अभिससार न बल्लभमगता न चकमेचकमकरस रह ॥ भाष ९ ३६

स्वेच्छागमनलघुत्वं बहुलापायं निशासु पन्थानम् ।

न विचारयन्ति महिला अर्भीष्टजनसंगतावुक्ता ॥ ५६३ ॥

बिना बुलाये अपने आप जाने में इल्कापन, रात्रि में मार्ग के चिह्नों को (साँप निच्छू आदि के भय को) भी इच्छित पुरुष से मिलने के लिये वेचैन स्त्रियों नहीं सोचती ॥ ५६३ ॥

क्रियता भूपणशोभा त्वरयति मे मानसं मनोजन्मा ।

रक्षयति मनो नितरा कलधीतनिवेशितं रत्नम् ॥ ५६४ ॥

आभूषणों से मेरे शरीर को अचङ्कित करो, कामदेव मेरे मन को बचाने पर रहा है। सोने में लगा हुआ रत्न मन को नरक से रक्षित है ('रत्न समागच्छतु काञ्चनेन') ॥ ५६४ ॥

घनजलदातृतरङ्गभिः प्रदोषसमये प्रदोषगमनाय ।

विदधानया कुतुब्धिं रागान्ये निमिदमारब्धम् ॥ ५६५ ॥

प्रेम में पागल बनी तूने, शिशाग्रों के गडलों से गिरा होने पर, रात्रि के समय, किसलन-काँट आदि दोष युक्त रास्ते से जाने में कुतुब्धि से निचार करके यह क्या किया ॥ ५६५ ॥

वचनप्रपञ्चसारं जायाश्रितमन्यदेशसम्यग्धम् ।

पुरुषमभिगन्तुनामा नवेयमभिसारिका दृष्टा ॥ ५६६ ॥

मिथ्या प्रिय बोलने वाले, पत्नी आश्रित, दूर रहने वाले (दूरतों), पुरुष के लिये अभितरणी करने वाली यह नई है अभिसारिका देखा ॥ ५६६ ॥

जलधीततिलरचना गलदम्भोलुलितरेशान्ताम् ।

तिम्यत्तनुलीनावृतिचण्डानिलसलिलपातरण्डस्तिताम् ॥ ५६७ ॥

माथे पर लगाया तिलर पानी से धुल गया, गिरत हुए पाना से शिर पर मुन्दर जल उलझ गये, केस रचना मिगड़ गई, गीला होने से वस्त्र शरीर के साथ चिप गया, प्रचण्ड बाधु एत पानी का बाढ़ार से शरीर में रोनाच उत्पन्न हो गया ॥ ५६७ ॥

अधिर्भाषितसमधिपमा प्रस्यलङ्घ्यं सहायसरलप्राप्तम् ।

पुरतोऽप्यनं प्रमाणं मुहुर्मुहुः साध्यसेन पृच्छन्तीम् ॥ ५६८ ॥

१. न पश्यति मर्शमसौ हर्षा दोष न पश्यति ।

न पश्यति च जन्मान्ध कामान्धो नैव पश्यति ॥

२. अभिसारिका—

उद्गमनमपमहाग्नरूपमाना, रोमाचकण्ठादिनागप्रक्षतां चक्षुः ।

विशद्विनीयति या विपत्तमाय सा नायिका निगदिता स्वभिवारिकेति ॥

बपा के कारण ऊँची नीची जगह का भेद मिट जाने से बार बार पैर निसलने में सहायक का हाथ पकड़े हुए बार-बार बेचैनी से रास्ते की दूरी पूछती हुई कितना और बाकी है पूछती हुई जाती है ॥५६८॥

अन्यस्त्रीषु च पत्यौ व्यग्र कृच्छ्रेण कथमपि प्राप्ताम् ।

तत्कालयोग्यपरिजननिवेदितामिति विकल्पसदृशविधौ ॥ ५६९ ॥

किसी प्रकार कठिनाई स घर में पहुँचकर वह देरती है कि पति अपनी स्त्री में व्यग्र है, अपने आने की सूचना अन्तःपुर में किस प्रकार से दी जाये, इस चिन्ता में यह परेशान है ॥५६९॥

किं प्रेम्णोऽय महिमा किमुतानन्त्य धनप्रलोभस्य ।

किंवाऽन्यत प्रवृत्ता प्रवेपिता वातवर्षेण ॥ ६०० ॥

क्या यह प्रेम से खोचकर आई है, क्या बहुत अधिक धन की लालच में आई है, अथवा वायु और बपा से ताड़ित होकर यहाँ आ गई है ॥६००॥

“सन्निहितकलत्राणामनुचितम्” इति बाह्यलोकसंयदनात् ।

अन्यस्मिन्नुदवसिते विसर्जितामिष्टमालतीकेन ॥ ६०१ ॥

नायक व एक स्त्री के पास में होने पर दूसरी स्त्री का नायक के पास जाना अनुचित है, ऐसी सामान्य जना की बात चीत सुनकर, मालती इच्छित कामुक के घर से निकल गई ॥६०१॥

लोकेन हारयमाना विभ्राणा वाससी चलन्निन्ने ।

रूपमदमुत्सृजन्ती वैलक्ष्याद्विहसितेन नतवदनाम् ॥ ६०२ ॥

वापिस जाती हुई मालती पर लोग विहँसने लगे, जल से भीगे बच्चों को धारण किये, रूप का मद् उतर जाने से, सफलता न मिलने के कारण लोगों के हँसने से लज्जित होकर मुख को नीचा किये मालती घर से निकली ॥६०२॥

पश्चात्तापगृहीता कष्टकदर्भाप्रभिन्नपादतलाम् ।

अग्निद्वय रमरन्ती द्रव्यन्त्यभिसारिका सुकर्माण ॥ ६०३ ॥

पीछे मानसिक दुःख से दुःखी, काटे और दाम से क्षत निरक्ष पैरों वाली, हमारी वहाँ बातों को यद करती हुई, ऐसी तुम्हें अभिसारिका को शुभकाम पुण्यात्मा मनुष्य ही देखेंगे ॥६०३॥

इति परपराभिधाना मातरमवधीर्य युष्मदभ्याशम् ।

चौरहतस्य व्रजन्ती विद्रावितरक्षिण सर्पौ मुमुक्षु ॥ ६०४ ॥

( महाकुलकम् )

इस प्रकार स्त्री वचन बोलती हुई माता की भा बात का न मानकर आपके पास आती हुई मखी मालता व आभूषण का लेकर-नाच चार-रक्षक दूर भाग गये ॥६०४॥



एषा प्रपंचरचना यदि भवति पृथा पुरस्तस्य ।

वणिगिदमुपेत्य वक्ष्यति सहायसंचोदितो भवतीम् ॥ ६०५ ॥

यदि यह कपट रचना भी निम्नलिखित निम्न भावे, तब नायिका के सहायक चेष्टी आदि से सिखाया वणिग्-नायक सामने ही नायिका की कहेगा ॥ ६०५ ॥

“पूर्वं दत्तस्योपरिमुक्ताहारम्य केदरास्त्रिरात् ।

परिचारिक्या नीता अन्यानापि मृगयते वयस्यकृते ॥ ६०६ ॥

पहले गिरवी रखी मुक्तामाला के ऊपर तीस केदार तुम्हारे दासी ला चुकी है, अब वह तुम्हारे प्रिय के लिये उस पर और भी माँग रही है ॥ ६०६ ॥

यत्तु घनसारकुङ्कुमचन्दनधूपादि मुक्तकं दत्तम् ।

तत्संपुटके लिखितं शृणु पिण्डलिकां करोमि ते पुरतः ॥ ६०७ ॥

तेरे लिये कपूर, नेसर, चन्दन, धूप आदि जो गुले हाथ से आज तक देता रहा हूँ, वह सब नही मैं लिखा हुआ है, आज तेरे सामने उन सबको जोड़ता हूँ, सुनते ॥ ६०७ ॥

एतावन्तं कालं नाचसरेऽभ्यर्थिता मया त्वमसि ।

रिक्तं भाण्टस्यानं सांप्रतमिति वाचनं त्रियते” ॥ ६०८ ॥

इतने समय तक मैंने आकस्मिक कार्य होने पर भी तुम से नहीं माँगा, अब तुम्हारा रत्ना सब घन समाप्त हो गया, इसलिये माँग रहा हूँ ॥ ६०८ ॥

एवं यादिनि तस्मिन्निचिह्नज्ञानतेक्षणं दृष्ट्वा ।

प्रियपूर्वं प्रश्रितया वाचा वाच्यं सर्वैलक्ष्यम् ॥ ६०९ ॥

वणिग् के इस प्रकार से बहने पर, तुम्हें लज्जा से आँख नीचा करने, देखते हुए, पहले ने समान मजुर एवं तीन वाणी से लज्जा के साथ रहना चाहिये ॥ ६०९ ॥

“हारस्तथैव तिष्ठतु” मध्यस्वस्यापितेन मूल्यात् ।

शेषं ततो यदन्यत्तद्विषयं पूरयिष्यामि” ॥ ६१० ॥

मध्यस्थ व्यक्ति द्वारा तै लिये मूल्य से हार तुम ही रख ली । बाकी जो रहेगा उसको भी थोड़ा दिनों में दे दूंगा ॥ ६१० ॥

इयमपि कपटप्रवचना पूर्वसमा चेत्तदेदमभिधेयम् ।

आशंसन्तेऽनिष्टं वातरहदना हि चोपितः प्रायः ॥ ६११ ॥

यदि यह भी कपट रचना पहले की भाँति व्यर्थ निम्न जाये, तब कहना चाहिये, कि तुम्हें किसी अनिष्ट का भय है, क्योंकि प्रायः मित्रों दरपोक होती है ॥ ६११ ॥

१. वपेज कृतसङ्कतस्य नायकमपह्न दशनं कृतस्य, येनाय नाप्यस्याः  
किमपि वपेजःकृतमपि विद्वेजुनारथ इति प्रपञ्चति ॥ अथमगत्रा टीका ।

अपदुशरीरे स्वामिनि विज्ञप्ता भगवती मया गत्वा ।

भवतु निरामयदेहो जीवितनाथस्तव प्रसादेन ॥ ६१२ ॥

मैंने स्वामिनी भगवता अम्बादेवी से प्रार्थना की है कि रोगग्रस्त मेरा प्रियतम आपके अनुग्रह से रोगमुक्त हो जाये ॥६१२॥

मपन्नवाञ्छितार्था वल्युपहारेण पूजयिष्यामि ।

सामग्रोचिरहेण तु न वितीर्णं तत्र मे शका ॥ ६१३ ॥

( विशेषकम् )

मनोरथ सिद्ध होने पर आपका बलि उपहार से पूजा करूँगी । परन्तु सामग्री न जुटने से वह पूजा अभीनहीं हुई, इसी का मय है कि कहीं देवता कुछ अनमल न करें ॥६१३॥

अस्मिन् व्यर्थभूते रिक्तीकृतशून्यवेश्मनो दाहम् ।

उत्पाद्य मन्दगामिनि सर्वविनाश प्रकाशमुन्नेय ॥ ६१४ ॥

यदि यह चाल भा व्यर्थ जाये, तो घर को खाली करके आग लगा दे । और धीमे धीमे शोक में चलते हुए सब कुछ नष्ट हो जाने का प्रचार करना चाहिये ॥६१४॥

स्निग्धत्वमल बुद्ध्या सहभोजनशयनवसनलिगेन ।

एभिरुपायद्वारै कान्तो रिक्तत्वया कार्य ॥ ६१५ ॥

एक साथ में भोजन, शयन, वस्त्र आदि से अतिशय उत्पन्न स्नेह जानकर (वश में हुआ जान कर) घटाये हुए इन उपायों से तुम्हें प्रियजन को भीतरमेंगा बना देना चाहिये ॥६१५॥

वार्धुपिकदर्थनया भोगध्वसात् सहायवचनैर्वा ।

अवधारितेऽपि निपुण वरगात्रि विलुप्तसारत्वे ॥ ६१६ ॥

परपवचोनिर्धारणमायत्यामाहितोपधातीति ।

यत्रादमी विवेया गम्यस्य विमोक्षणोपाया ॥ ६१७ ॥

( युग्मम् )

हे शोभनगात्रि । सम्पूर्ण धन निचाड़ लेने का विश्वास होने पर भी वृद्धावस्था की पीड़ा से, ग्यान ध्यान-वस्त्र आदि की कठिनाई से, अथवा चेरी आदि सहायकों के कहने से भी यदि वह घर का न छोड़े तब—यह समझकर कि कठोर वचन कहना पाद से हानिदायक होता है, इसलिये उससे छूटने के लिये कामुख को निकालन के लिये य उपाय बरतन चाहिये ॥६१६-६१७॥

पृथगासननिर्देशः, प्रत्युत्थानादिकेऽपि शैथिल्यम् ।

सामूयसोपहासा आलापाः मर्मवेधि परिहसितम् ॥ ६१८ ॥

अग्ने से अलग आसन पर बिठाये-दूर खड़े, उसके प्रति आदर दिवाने में शिथिलता करते, निन्त्रा एवं उपहास करते हुए बातचीत करे, उसके दिल को दुःमाने वाला हास्य करे ॥६१८॥

तद्व्यतिपत्तश्लाघा, तदधिकगुणरामकीर्तनावृत्तिः ।

वदति प्रियमाभीक्ष्यं बहुप्रलापित्वद्रूपणाख्यानम् ॥ ६१९ ॥

उसके प्रतिपक्षी शत्रु की प्रशंसा करे, कानुक से अधिक गुणों एवं स्नेह का बार-बार वर्णन करे, अनेक बार मोटी बात करने पर बाचालता का दोष निफाले ॥६१९॥

वचनान्तरोपपातैस्तद्व्यस्तुतसंकथासमाक्षेपः ।

तद्वचनप्रहारजुगुप्सा, संबन्धपदेशस्तदन्तिकृत्यागः ॥ ६२० ॥

यदि कामुक कोई बात प्रारम्भ करे तो दूसरे प्रसंग की बात लाकर उसकी बात में नित्र पैदा करे । उसके व्यवहार में धृष्टा दिवाये, कोई बहाना करके उसके पास से छटक आये ॥६२०॥

### १. विरज भाषिका के लक्षण—

वदन्ममिमुक्तं नैव संयोगेज्जीव सीदति ।

अस्तीगमनेत्रवेदना, स्पृष्टाज्जं निधुनोति च ॥१॥

करोषुष्ठा कथामंगं, वृद्धा वदति निन्दुतम् ।

नान्दसक्त्य करोतीत्यां, सम्मानानं च नेच्छति ॥२॥

अस्थाने कुपते रोष, वदन् माहिं पुम्बिता ।

पराज्जं क्षादयेत्पक्षो, रते बलेदुपुपति न ॥३॥

येते पराङ्मुखी पूर्वं पद्मादुत्तिष्ठते ध्रुवम् ।

हर्न न मन्यते हिंस्त्रिन् दुष्कृतं च प्रयुज्यति ॥४॥

विशेषवचन मूले दोषान् वन्ति मस्तीपुरः ।

स्पन्दने मुहमाप्तेति प्रथमे तु स्पन्द्यति ॥५॥

अभिप्रायानुने दीति मित्रैर्हृष्यमुरत्यक्षम् ।

विरज्य क्षादयैरेमिजंयत पोरिद् विवक्षयैः ॥६॥

पराङ्मुखी वा क्षपनं करोति तत्रेति पौर्या मुरते स्पष्टीहम् ।

निष्कारयं कुप्यति मर्षपुत्रा विरजभावा अनिता मया सा ॥७॥

व्याजेन कालहरणं, स्वापावसरे विवर्तनं शयने ।

निद्राभिभवस्यापनमुद्वेग

सम्मुखीकरणे ॥ ६२१ ॥

किसी बहाने से सम्भोग या उसके पास जाने के समय को निकाल दे, माथ में सोने पर मुट फेर कर सोये । यदि वह हठ से अपना मुट सामने करे तो नींद का बहाना करे, नींद की वेचैनी बताये—नींद आ रही है ऐसा कहे ॥६२१॥

गुह्यस्पर्शनिरोधः,

स्वभावसंस्थापनाऽनुयोगेषु ।

चुम्बति घटनविकम्पनमालिङ्गति कठिनगात्रसंकोचः ॥ ६२२ ॥

गुह्य भाग के स्पर्श करने में बाधा करे, राजी गुशी पूछने में कहे कि तुम कौन होते हो पूछने वाले, तुम्हारा क्या मतलब मेरी तन्दस्ती से, चुम्बन लेने में मुट को हिलाये—बुम्बन नहीं लेने दे, आलिङ्गन करने लगे तो शरीर को कठिन बना ले और सङ्कुचित कर ले ॥६२२॥

असहिष्णुत्व

प्रहरणकररुहदशनक्षतिप्रसंगेषु ।

दीर्घरतौ निर्वेदः, स्वपिहीति रताभियोजके भूयः ॥ ६२३ ॥

नायक द्वारा ताड़न, नलाघात, दश आदि करने के समय में असहिष्णुता दिखाये, लम्बे सम्भोग में भ्रान्ति या उदासीनता बरते, पुनः सम्भोग प्रारम्भ करने में सो जाओ, ऐसा कहना—सोने के लिये कहना ॥६२३॥

तदशक्तावनुबन्धो, वैदग्ध्यविकासने तथा हासः ।

राश्रयसानसृहया

पुन

पुनर्यामिकप्रश्नः ॥ ६२४ ॥

नायक के सम्भोग में अशक्त होने पर उससे सम्भोग के लिये आग्रह करना या उसमें दोष बताना, कामुक के चतुरता दिखाने में हँसी करना, रात जल्दी समाप्त हो जाये, इसकी चाह करना, बार-बार पहरेदार से पूछना कि अब क्या समय, कितनी रात बार्का है ॥६२४॥

निःसरणं वासगृहादुपसि समुत्थाय तल्पतन्त्वरया ।

सरमसमुदीरयन्त्या निशा

प्रभाता प्रभातेति ॥ ६२५ ॥

प्रातःकाल होने पर बिस्तर से जल्दी में उठ कर सबेरा हो गया, सबेरा हो गया, जोर से कहते हुए घर से निरल जाना ॥६२५॥

उभयेन्द्रया प्रवृत्तं निरुपाधि प्रेम भवति रमणम् ।

अन्योन्यसमासर्त्तौ संस्थानमिवाभिजातमणिहेम्नोः ॥ ६२६ ॥

जिना किसी कष्ट के नैमर्गिक स्वाभाविक, दोनों की इच्छा से प्रवृत्त प्रेम रमणीय होता है, जो प्रेम नायक और नायिका दोनों में मली प्रसार रहता है, वही प्रेम उत्तम कुलोत्पन्न मणि और स्वर्ण के संयोग की भाँति निरुद्ध होता (निर्दोष) है ॥६२६॥

यत्स्वेकाश्रयरागः परिभवदौर्बल्यदैन्यनाशानाम् ।

स निदानमसन्दिग्धं सीतां प्रति दशमुत्तस्येव ॥ ६२७ ॥

जो प्रेम एक के आश्रित रहता है; वह बिना सन्देह के परिभव-तिरस्कार, निर्मलता, दोनता और नाश का कारण बनता है, जैसे कि रावण का प्रेम सीता के प्रति एकतरफा था ॥ ६२७ ॥

यानि हरन्ति मनांसि स्मितजल्पितवोक्षितानि रक्तानाम् ।

सान्ध्येव धिरक्तानां प्रतिभान्ति विवर्तिताभीव ॥ ६२८ ॥

अनुरक्त पुरुषों में मुस्कराना, जातचीत, देखना आदि जो भाव मन को हरते हैं, वे ही मुस्कराना, जातचीत आदि भाव निरक्त मनुष्यों में प्रतिकूल-बदले हुए दीखते हैं ॥ ६२८ ॥

यिदध्नातु किमपि, कथमपि निगृह्यमाणा मुहूर्तमासिष्ये ।

इति यत्र मनः स्त्रीणां रमन्त एव तत्र पशुतुल्याः ॥ ६२९ ॥

किसी प्रकार पकड़ी हुई मुकड़े कुछ भी करे, क्षण भर के लिये सन सह लूँगी। इस प्रकार का लियों का जहाँ मन होता है, वहाँ पर भी पशुतुल्य मनुष्य रमण करते ही हैं ॥ ६२९ ॥

यत्र न मदनविकाराः सद्भावसमर्पणं न गात्राणाम् ।

तस्मिन्मुद्रितभावे पशुकर्मणि पराय एव रज्यन्ते ॥ ६३० ॥

जहाँ पर सम्भोग में रति इच्छा स्पर्श निवार-श्लोष स्वरूप आदि नहीं, प्रीति पूर्वक अंगों का समर्पण नहीं, इस प्रकार के अविरुद्धित काम निवार वाले पशुकर्म-सम्भोग में पशु ही रस लेते हैं ॥ ६३० ॥

अवधोरणयोपहतः प्रतिदिवसं ह्रीयमानसद्भावः ।

अभिमानवान् मनुष्यो योपितमूढामपि त्यजति ॥ ६३१ ॥

निरन्तर तिरस्कार मिलने से, आत्मसम्मान के नष्ट होने पर, स्वाभिमानी मनुष्य अपनी विराहित पत्नी को भी छोड़ देता है ॥ ६३१ ॥

## १. मदनविकार—

आशां स्फुरतीशने विचक्षणः कृपोदरे मत्स्यवद् ।

धम्मिरुद्धः कुसुमाश्रिता विगलितः प्राप्नोति च-च पुनः ।

प्रसूयती मयतः; तनी प्रदृष्टा आशीतं दरयते,

नीरा च रसजति विषवाग्मि मुदड कामेहित योपिताम् ॥

वतिरदस्य ११२६०

साक्षिनि कोच सख्या पाणिनल पाणिना समाहित्य ।

यन्तरमुपहमति स्त्री ददातु तस्मै मही रन्ध्रम् ॥ ६३२ ॥

श्रील मटका कर अपनी सखी के हाथ पर ताली देते हुए जिस मनुष्य पर स्त्री हँसती हो, उस पुरुष के लिये तो भूमि में समा जाना ही अच्छा है ॥ ६३२ ॥

पुरुषान्तरगुणकीर्तनमन्योद्देशेन चात्मनो निन्दाम् ।

शृण्वन्नपि य स्वस्थ स्वस्थोऽसौ कालपाशबद्धोऽपि ॥ ६३३ ॥

जो मनुष्य दूसरे पुरुष के गुणों की स्तुति तथा दूसरे के बहाने अपनी निन्दा सुनकर भी निश्चिन्त होकर जीता है, वह यम के पाशों से बंधा होने पर निर्भय है — उसे मृत्यु का भी भय नही ॥ ६३३ ॥

अवगम्याभिप्राय स्वाभिन्या परिजनोऽपि य पुरुषम् ।

अवसहति तिरस्कार्य तस्य न मूल्य वराटिका पच ॥ ६३४ ॥

अपनी मालकिन का अभिप्राय जानकर भय नौकर चाकर भी जिस पुरुष पर तिरस्कार भरी दृष्टि से हँसते हैं, ऐसे पुरुष का मूल्य पाँच कौड़ी भी नहीं ॥ ६३४ ॥

तत्त्वातत्त्वसमुत्थव्यवहृत्योर्गोऽन्तर न जानासि ।

स्थान भवति स पशुपतिरपसशयमर्धचन्द्रलाभस्थ ॥ ६३५ ॥

जो मनुष्य तत्त्व-वास्तविक, अतत्त्व अज्ञानविक कपटमय, व्यवहार या क्रियाओं एवं वचनों का भेद नहीं समझ सकता, वह पशुपति मूढ़ गलहत्या देकर निकालने योग्य है । ( पशुपति महादेव के सिर पर अर्ध चन्द्रमा है, उसी प्रकार यह भी पशुपति अर्धचन्द्र देकर निकालने योग्य है ) ॥ ६३५ ॥

अमगलितगौरवाशो रिक्ततया लाघव परापतित ।

अप्राप्तपरिच्छेद प्लवतेऽसौ युवतिसरिति कुमनुष्य ॥ ६३६ ॥

कमश गौरव-अभिमान के कम हो जाने से, खाली होने से हल्कापन आ जाने पर सहारा न मिलने पर कुम्भित मनुष्य युवती रूपी नदी में तैरता है ॥ ६३६ ॥

यत्नेन कपटघटिता शृंगारोदीपनार्थमनुभावान् ।

रतिशिल्पजीविकाभिर्मूढास्तत्त्वेन गृह्णन्ति ॥ ६३७ ॥

समोग फला में ही जिनकी जीविका है, ऐसी वेश्यायें, शृंगार-काम को उद्दीप्त करने के लिये, कोशिश के साथ झूठे बनावगी स्मित हास्य, भ्रूविज्ञेय कटाक्ष आदि अनुभाषा को करती हैं, मूर्ख आदमी इनका वास्तविक समझते हैं ॥ ६३७ ॥

या धनहार्या नार्यो निर्मर्यादाः स्वकार्यतात्पर्याः ।

सह ताभिरपीहन्ते घत मन्दाः संगतमजयम् ॥ ६३८ ॥

जो स्त्रिया केवल धन से बर में की जा सकती हैं,<sup>१</sup> उल्लसित आचार-  
नियमगाली, अपने मतलब के ही सिद्ध करने में लगी हैं, ऐसी बेश्याओं के  
साथ मूढ़ मनुष्य ही कभी न टूटने वाली संगति चाहते हैं ॥ ६३८ ॥

अपरोक्षधनो गम्यः श्रीमानपि नान्यथेति निर्दिष्टम् ।

चन्द्रर्षशास्त्रमार्गे, कुत कथा लुप्रविभवस्य ॥ ६३९ ॥

कामशास्त्र के बनाने वालों ने प्रत्यक्ष डाक़ा तुल्य धन देने वाला पुरुष  
बेश्याओं के लिये स्वेयसीय कहा है, परन्तु ऐश्वर्यवान् भी तुल्य न देने वाला  
अस्वेयसीय कहा है। जिसका धन नष्ट हो चुका है, उसकी तो कोई बात ही  
नहीं ॥ ६३९ ॥

व्यासमुनिनाऽपि गीतां द्वावेव नराधमौ लोके ।

योऽनाद्यः कामयते कुप्यति यश्चाप्रभुत्वन्युक्तोऽपि ॥ ६४० ॥

व्यासमुनि ने भी लोक में दो ही मनुष्य समझे अश्रम कहे हैं, पहला वह, जो  
निर्वन होकर सम्भोग की कामना करता है और दूसरा अश्रमार्थ होने पर भी जो  
क्रोध करता है<sup>२</sup> ॥ ६४० ॥

क्षीणद्रव्ये देहिनि दारा अपि नादरेण वर्तन्ते ।

स्मितादानैररसाः शरीरपण्यवृत्तयो दास्यः ॥ ६४१ ॥

धन नष्ट हो जाने पर निराहित स्त्री भी पुरुष के प्रति आदर के साथ नहीं  
वर्तती। आदान—सेना द। जिसका अनेका मुख्य धर्म है, शरीर बेचना ही  
जिनका धर्म है, उन बेश्याओं की निर क्या बात ॥ ६४१ ॥

अविदितहेयादेयास्तिर्यञ्चोऽपि त्यजन्ति पीतरसम् ।

कुसुमं, निमु कार्यविदो वेश्या नरमात्तसर्वत्वम् ॥ ६४२ ॥

हेय-त्याग्य और उपादेय-आज्ञा बुद्धि से रहित भ्रमरी भी रस रिये फूल की  
छोड़ देती है, निर हेय और उपादान बुद्धि वाली बेश्यायें सम्पूर्ण धन गींच  
कर मनुष्य की क्यों न छोड़े दें ॥ ६४२ ॥

उपादयति सदानो रामं रागात्मको यथा नियतम् ।

निर्दानोऽपि सदा नो निःसन्नेह तथैव मनुजन्मा ॥ ६४३ ॥

१. वर्तति हि धनार्थं पण्यन्त शरीरम्—सुप्रसिद्धि. १।३७.

२. क्षामिषी पुरुषो छोड़े मुक्तिनी न कहावन ।

पञ्चाधनः कामयते यश्च कुप्यन्परीरवाः च महाभाष्य उच्यते ३१।११.

जिस प्रकार से अनुरक्त मनुष्य का दान (उदारता से धन का व्यय) निश्चित रूप में प्रीति को उत्पन्न करता है, उसी प्रकार से उदारता से धन का खर्च न करना निःसन्देह प्रीति को उत्पन्न नहीं करता ॥६४३॥

यदतीतं तदतीतं, भाविनि लाभे च नास्ति बहुमानः ।

तत्कालहस्तनिपतितमनियतपुंसां मुदे वित्तम् ॥ ६४४ ॥

जिन पुरुषों की ( वेश्याओं की ) धन प्राप्त अनिश्चित है, ऐसी लियों ( वेश्याओं ) में जो धन दिया गया, वह तो दिया जा चुका, भविष्य में दूसरा मिलेगा इसका कोई विश्वास नहीं । तत्क्षण जो धन पहले हाथ में आता है, वही धन वेश्याओं की प्रसन्नता के लिये होता है ॥६४४॥

पीडितमधु मधुजालं तुच्छोभूतं च मन्मथप्रसूतम् ।

मुंचन्ति मदनशेषं क्षुद्राश्च प्रकटरामाश्च ॥ ६४५ ॥

मधु निचोड़े शहद के छूते को, काम से पीड़ित व्यक्ति तुच्छ-खाली हो जाने पर केवल मदन के ( छूते में केवल मीम तथा मनुष्य में केवल काम ) शेष रहने पर शहद की मक्खियाँ और वेश्याएँ छोड़ देती हैं ॥६४५॥

एकः क्रीणात्यय, प्रातर्भविता तथा परः क्रेता ।

अन्यवशे क्षणमेकं, न विक्रयः शाश्वतोऽस्ति वेश्यानाम् ॥ ६४६ ॥

आज रात के लिये वेश्या को एक आदमी खरीदता है, प्रातः काल होने पर दूसरा खरीददार आयेगा । वेश्या थोड़ी देर के लिये ही एक के अधीन होती है, वेश्याओं की स्थायी खरीददारी या विक्री नहीं होती ॥६४६॥

संदर्शितपरमार्थं भूक्षेपकटाक्षदृष्टिस्तादि ।

शृण्वन्ति ये सकर्णास्तत्कृतमन्यत्र संक्रान्तम् ॥ ६४७ ॥

जो चतुर व्यक्ति वेश्याओं के दिखाये भूक्षेप-कटाक्ष-दृष्टि आदि को सबे ओरों में वास्तविक समझते हैं, वे बुद्धिहीन मनुष्य अन्त में विनष्ट हो जाते हैं ॥६४७॥

यदि नाम निराकरणे न समर्था द्विन्नकार्यवन्नेऽपि ।

काचिन्महानुभावा धोद्वयं तदपि चेतनाचङ्गिः ॥ ६४८ ॥

तेनार्थनोपकृतं तथाऽपि तस्य भवदेहदानेन ।

तत्चातीतं सम्प्रति, निरर्थकः शुष्कशृंगारः ॥ ६४९ ॥

१. वेश्यानामनेकैः सह रमणकीर्तयिता ।

निर्पात्येको विशिष्यन्तः परो द्वारि प्रवीक्षते ॥



यदि कोई अति उत्तरचेता मनुष्य यह समझे कि वेश्या को देहदान तथा पुरुष के अर्थ दान रूपी कार्य के पूरा हो जाने पर भी नायक को घर से नहीं निगालना चाहिये तो भी बुद्धिमान मनुष्य का सावधाना चाहिये कि नायक ने वन देकर वेश्या का उपकार किया, वेश्या ने भी अपना शरार देकर उसका भला किया, यह तो अतः ज्ञात हुआ, इसलिये अब उसका यह शृंगार-संभोगेच्छादि रूप शृंगार या हास्य कदाचि भूत्सेप अति शृंगार निरर्थक है या झूठा है॥६५८-६५९॥

अवधीरणा रसायनमपमानो भवति यस्य परितुष्टये ।

योग्योऽसौ पुष्पस्तर स्तरतरनिर्भर्त्सनोक्तिगुहानाम् ॥ ६५० ॥

जिस मनुष्य के लिये तिरस्कार रसायन का काम करें, 'अपमान' से जो प्रसन्न हो, ऐसा गंधा पुरुष नदार सतर्जन वाक्य-रत्न के ही योग्य है ॥६५०॥

दीपजालाललने व्रतत रज्जु निर्वृति तथोन्मियान् भेद ।

प्रथमा स्नेहेन विना, तथा परा स्नेहयोगेन ॥ ६५१ ॥

दीप की जलला आर लज्जनाय दाना है निर्गुनि निराधारस्था को पहुँचते है, परन्तु इन दोनों में इतना भेद है, कि 'प' स्नेह-तेल के विना निर्वृति (समाप्ति) का प्राप्त होता है, आर 'विना' स्नेह के प्रेम के योग से निर्वृति आनन्द का अनुभव करता है ॥६५१॥

धर्म कामाद्भिननगुह्यगान्नि रसस्य भदनरोगवत ।

अर्थोऽर्थवतोऽभिगमात्, काम समरतनरोषभोगेन ॥ ६५२ ॥

कामातुर, निधन व्यक्ति का निःस्वार्थ रूप में सत्कर्ष करने से (इच्छा पूरा करने से), वेश्या को धर्म पुरुषार्थ पूरा होता है, धनवान् से धन लने से अर्थ पुरुषार्थ होता है, समान गत वाले पुरुष के उपयोग से काम पुरुषार्थ होता है। इस प्रकार वेश्या के तीन पुरुषार्थ पूर्ण होते हैं ॥६५२॥

१. रसायन - सब इन्द्रियों की पुष्ट करन वाला द्रव्य—

यत्रराध्या घबिष्वाप्त क्षयस स्तम्भक तथा ।

अनुष्य च दृश्य दृष्य भेदत तद् रसायनम् ॥

२. समरत - सम्पत्तादायकभाववशात्तयो स्त्रीपुंसयो रत समरतम् ।

समरत में युवा अनुभव होता है—तयो काम सन्तुष्टि यौव चान-नादय हाता है—

यथा पुष्पजिह्व कलहयन्त मग्मयगृह,

प्रमथाम मन्द विद्यति यद्दि रेतोविशद्विषम् ।

तवस्तस्य प्रात विषतविवरपुष्प च शनदे,

यद्यद्वत् सात्र मदनमदन तत्र कुर्यात् ॥ शृंगार दीपिका ३।१८

यस्तु न धर्मप्राप्त्यै नार्थाय न कामसाधनोपायः ।

स पुमान्सच्चरितधनैः पर्यनुयुक्तः किमाचष्टे ॥ ६५३ ॥  
(संदानितम्)

इसके विपरीत वेश्या के उपभोग से पुरुष का कोई भी पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता, क्योंकि वेश्या सेवन में प्रायश्चित्त बताया है, इस लिये पुरुष को धर्म नहीं होता, वेश्या सेवन से धन की हानि है, इसलिये अर्थ भी नहा मिलता, वेश्या सेवन में सच्चा काम भी पुरुष को नहीं मिलता, इस प्रकार वेश्या सेवन में कोई भी पुरुषार्थ पुरुष का पूरा नहीं होता । सदाचार बन वाले पुरुष से पूछा जाने पर वेश्या सेवन करने वाला पुरुष क्या कहेगा—कुछ भी नहा ॥६५३॥

कामोद्वेगगृहीतं धूर्तैरपहस्यमानशृंगारम् ।

दारिद्र्यदत्तं यौवनमबुधानां केवलं विपदे ॥ ६५४ ॥

काम के कारण व्याकुल बेचैन बने, धूर्त विट जिस शृंगार रतिसर पर हँसते हैं, दरिद्रता से मारे युवा मुखों का वेश्यागमन आपसि के लिये हो होता है ॥६५४॥

व्यपगतकोपरागिणि याति लयं पानमात्रलाभहृता ।

क्षुद्रा मधुकरिकाञ्जे न तु गणिकाचिन्तितस्वार्था ॥ ६५५ ॥

क्षुद्र-तुच्छ बुद्धिहीन भ्रमरी मधुपान के लोभ से हा विकसित कमल के रंग से लिंचकर सायकाल उसी में बन्द हो जाती है, परन्तु अपने मतलब का ध्यान रखने वाली गणिका कोप-रञ्जना खाली हुए निर्धन मनुष्य में राग के कारण आसक्ति नहीं करती, उसे छोड़ देती है ॥६५५॥

कप्युत्तरप्रतीक्षायाश्चर्त्तुर्लिंगविमर्दनात् ।

न द्रवन्ति न तृप्यन्ति योषितो नीचमेहने ॥

उच्येऽपि मृदुगुह्यान्तः संपीडा मस्यथे इति ।

न द्रवन्ति न तृप्यन्ति मनस्तत्रोद्विगममथः ॥ शृंगारदीपिका ३।६ ०

१. पशुवेश्याभिगमने—प्राज्ञापरिचयं चरेत्—पाराशरस्मृति—१०।१६.

(ख) वेश्याभ्यां मदनज्वालाह्वयेन्धनसमेधिता ।

कामिभिर्यत्र हृयन्ते यौवनानि धवानि च ॥

२. मूर्खों द्विजाति., स्थविरो गृहस्थ., कामी वरिष्ठो धनवास्तपस्वो ।

वेश्या बुरुग, नृपति. कदर्यो, छोके पढेवानि विदतिवगानि ॥

३. हुताशब्दाभागे स्थितवति रवावस्तमिषरे,  
पिपासु किञ्चक प्रविशति सरोज मधुकर. ।

तदन्तः सरोर्यं गच्छयति न सध्याममयजं,  
जलोऽर्थी नापायं विमृशति फलैकान्ततृपित. ॥

यासा कार्यापेक्षा सकटाक्षनिरीक्षणेऽपि वेद्यानाम् ।

दर्शनमात्रमुभितर्पयन्तो ता कथं पुरुर्यै ॥ ६५६ ॥

जिन वेश्याओं का कटाक्ष—आल टेंढी करके देखना भी स्पर्श से खाली नहीं होता, वे वेश्यायें अपने दर्शित से ही चंचल चित्त वाले पुरुषों को कवैन बना देती हैं फिर व स्वयं इन पुरुषों से कैसे ठगी जा सकती हैं ॥ ६५६ ॥

क्लेशाय दुर्मंगाना मानस्तुतिगात्रमगाग्निन्यासम् ।

गणिकाभिनयचतुष्टयमाकृष्यै स्थापतेयपुष्टानाम् ॥ ६५७ ॥

वेश्या का मान, स्तुति, गात्र विन्यास और अग्नियन्यासरूपी चार प्रकार का अभिनय दुर्भागो निर्धन का काम देने के लिए होता है, और यही चार प्रकार का अभिनय धनन्धामी धनिया के आकर्षण के लिए होता है ॥ ६५७ ॥

किं घटयति भौमोऽपि ज्वलनं रज्जु तान्द्रा कुलागारम् ।

यो दहते न त्रिरस विरक्त्यासीतिरस्कारैः ॥ ६५८ ॥

जो निर्धन त्रिरस वेश्या के तिरस्कार से मा नहीं जला, ऐसे त्रिरस (शुष्क) कुलागार का प्रयोग की शक्ति क्या बलायेगा ? वह भी नहीं बना सक्ती ॥ ६५८ ॥

गृहमेतदीश्वराणा कान्तार दुष्प्रवेशमन्येषाम् ।

पूतकृतमिन् सुमुजया, न मालती कामसत्रदानपरा ॥ ६५९ ॥

( महाकुलकम् )

वेश्याओं का घर धन से सम्पन्न पुरुषों के लिए घर होता है, निर्धनों के लिये दुष्प्रवेश्य ग्रीह जगत् है । वज्रास किया हुआ यह तिरस्कार है, मालती का कामसन दान नहीं गुला हुआ है, जो चाह यहाँ से दान ले जाये ॥ ६५९ ॥

इति चोदितगृहनेटी निगदति कटुफाक्षराण्यवतलदया ।

आकर्ण्यतो याचा दैवोपहतम्य मर्मभिन् ॥ ६६० ॥

पयमभिधीयमानो बुध्यति यन् नो पशुर्नराकारः ।

तदिदं मुन्दरि वाच्यं प्रक्षितप्रवसा त्वया कामी ॥ ६६१ ॥

स्वामिनी से प्रसित गृहगो द्वारा अन्य को लक्ष्य बनाकर इन प्रकार बड़े मर्मभंग-कटार कटुए वचन सुनकर मा देव से माया हुआ मनुष्यरूपी पशु यदि

१ अभिनय—महेश्वरभिनयाऽवस्थागुहार से चतुर्विधः ।

आंगिको वाचिकश्चैवाश्रयः सोऽष्टविधः ॥ छा० ६० १।१

इनमें मान अभिनय सात्विक, स्तुति व चिक, गात्रमंग आंगिक और गात्र विन्यास अभिनय आहार्य अभिनय है ।

न समझे, तब हे सुंदरि, तुझे कोमल वचनों में इस प्रकार से उसे कहना चाहिये ॥ ६६०-६६१ ॥

प्रीयत एव तत्रोपरि हृदय मे, किन्तु गुरु जनाधीना ।

मातृवचोऽतिक्रमणं न समर्थां सविधातुमहम् ॥ ६६२ ॥

मैं तुम्हको हृदय से प्रेम करती हूँ, परन्तु मैं गुरुजनों के अधीन हूँ, मैं माता के वचनों का अतिक्रमण नहीं कर सकती, उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकती ॥ ६६२ ॥

अर्हसि तावदतस्त्व गन्तुमित कतिपयान्यपि दिनानि ।

पुनरपि भयतैव सम भोक्तव्य जीरलोकमुत्तमम् ॥ ६६३ ॥

इसलिये तुम्हारा यहाँ से कुछ दिनों के लिये चले जाना ही अच्छा है । फिर भी इसने पीछे आपके ही साथ जीवन का सुगम भोगूँगी ॥ ६६३ ॥

निर्वासितेऽथ तस्मिन् य कामी पूर्वमुज्झितो भुक्त्वा ।

तस्य प्राप्तविभूतेर्युक्तिरियं भिन्नसंधाने ॥ ६६४ ॥

उपवनलीलाविहरणहावोज्ज्वलमजुलस्य सह तेन ।

वर्णनमिति वृत्तस्य स्मरनविकाराश्च, वीक्षिते तस्मिन् ॥ ६६५ ॥

इसने निकाल देने पर—पहले जिस कामुक को भोग करने—चूस करके छोड़ दिया हो, उसने यदि पुनः धन प्राप्त कर लिया हो, तो उस दूटे हुए को मिलाने में यह चातुरी बरते १ । कामुक दिखाई देने पर उसने सामने उपवनों में रिया लीला विहार ( पिपनिक खेल ) हाव गूंगार सूचक विकारों से सुन्दर बने, मनोहर, स्थायी और व्यभिचारी रूपी गूंगारज विकारों का तथा पिछली बातों का वर्णन करे ॥ ६६४-६६५ ॥

१ हेमन्तमात्रं द्वातिलीनं स चेन्न निर्याति निरस्यमानः ।

तदेव कार्यम् अनुमर्मेदी प्रवर्धमानः पश्योपचारः ॥

हीनस्य यस्यास्ति न भोगसफलं किं मुक्तिर्याभवने कराति ।

न यस्य हस्तैर्मूल्यमस्ति स किं समस्तोदति नाथमग्रे ॥

प्रणीयचित्तेन निरस्यमेव किं रूपदुक्तेन करोति वेदना ॥

समयमातृका ८१, ८२, ८३

१. हीन निरस्य पुनरावृत्ति भजेत यत्नाद्वृत्तिमन्यम् ॥

प्राप्ते काले कथमपि घनादानपात्रे च विचे,

एव मे सर्वं त्वमसि हृदय जीवितं च त्वमेव ।

इत्युक्त्वा तं क्षपितविभव कञ्चुकाभ मुञ्चो,

एवमेव गच्छस्यधनमपर वैशिकोऽप्य समाय ॥ समयमातृका ८८-८९

इदमुपवनमतिधन्यं निर्भरमालिङ्गितं सुरभिलक्ष्म्या ।

मत्कण्ठाश्रितपाणिर्विश्राम स यत्र जीविताधीशः ॥ ६६६ ॥

वसन्त शोभा से अतिशय रूप में आलिङ्गित यह उपवन अति भाग्यशाली है, यहाँ पर मेरे प्राणेश्वर मेरे गले में हाथ डाले घूमते थे ॥ ६६६ ॥

सत्य इतो भ्रमरकुलवासितया प्रियतमो मया सहसा ।

धक्कीभवत्पयोधरमुपगूढो धीरसीत्कारम् ॥ ६६७ ॥

मित्र ! यहाँ पर भ्रमरों से छिपी मैंने मुन्कर मन्द सीत्कार करते हुए स्तनों के साथ प्रियतम का सहसा आलिङ्गन किया था ॥ ६६७ ॥

रणदिन्दिन्दिरघ्न्दे कृज्जत्कलकण्ठरावरमणीये ।

अत्रातिमुक्तकमृदे मरदीरणाविधुतसुसमसंश्रान्ने ॥ ६६८ ॥

मयि जाताधिकरागो बलवति मदने सहायसामग्र्या ।

कान्तः पल्लवशयने नो वृत्तिमगाद्विचिक्तकार्येषु ॥ ६६९ ॥

( युगलकम् )

गूँजते हुए भ्रमर समूह के, शीश के मुन्दर कुहन्ते हुए, पड़ती हुई वायु से क्षमित फूलों से ढँपे इसी पासनीलता कुञ्ज में, उद्दीपन अनुभावरूपी सहायक सामग्री से काम के बलवान् होने पर मुझमें अतिशय प्रेम उत्पन्न हो जाने पर, कान्त प्रेमी को कोमल विसलज की बनी शय्या पर एकान्त में करणीय पापों में वृत्ति नहीं हुई थी ॥ ६६८-६६९ ॥

प्रेरसाप्रहरणयुन्त्या विध्यन्पार्श्वद्वयं नरैर्पूर्वतः ।

चक्रे मां मदनमयीं अततिप्रेरसामिमां समारूढाम् ॥ ६७० ॥

इन सामने डींगने वाली लताओं के झूले पर चढ़े हुए प्रेमी ने; झूले को घान्दोलित करने के ( पींग चढ़ाने के ) बहाने; नगों से नौचकर मुझको कामातुर बनाया था ॥ ६७० ॥

सृष्ट्वाण्योऽयमशोकः सृष्टो यो पल्लभेन हस्तेन ।

अस्मद्वचतंसनार्थं नूतनदलपल्लवान् विदारयता ॥ ६७१ ॥

यह अशोक बहुत भाग्यशाली है, जिसमें प्रियतम के हाथ से छूने पर मेरे कर्णपुल के निचे, टटने कोमल पत्त पूट जाते हैं ॥ ६७१ ॥

अस्मिन्सहकारतने तस्योत्संगे सलीलमासीना ।

अशृणुमहमिति वाचः पश्यन्ती विलसितानि तरुणानाम् ॥ ६७२ ॥

१. कोपप्रभवे भीती त्रयोते पुनरागमे ।

संमोहे च समादत्तेशो विठपेक्ष मुग्धाग्रहः ॥

इसी आस वृद्ध के नीचे प्रियतम की गोद में विलास के साथ बैठे हुए मैंने तरुणों की विलास व्रीडा को देखते हुए कानमें पड़नेवाली इन बातों को सुना था ॥ ६७२ ॥

उत्थापय मानरसे दयितं चरणाम्निपतितं तूष्णम् ।

अत्याकृष्टं श्रुत्यति सुदृढमयि प्रेमबन्धन मूढे ॥ ६७३ ॥

बातें जो सुनी—हे अभिमानिनि । पैरों में पड़े प्रियतम की जल्दी से उठा ।<sup>१</sup> हे मूढ़ ! सुदृढ प्रेमबन्धन भी बहुत अधिक खींचने पर टूट जाता है ॥ ६७३ ॥

तिष्ठन्नपि यातसम किं तेन निवारितेन सखि पशुना ।

यामीति निष्पक्व्या विनि सृता यस्य साऽधरे वाणी ॥ ६७४ ॥

हे सखि ! जिसने मुझ से मैं जाता हूँ, यह कठोर वचन बिना किसी दया के निकल गये, यह नर पशु नैदा हुआ होने पर भी गये हुए के समान ही है, उसकी रोफने से कोई लाभ नहीं ॥ ६७४ ॥

आयु सार यौवनमृतुसारः कुसुमसायकवयस्य ।

सुन्दरि जीवितसारो रतिभोगरसामृतस्वादः ॥ ६७५ ॥

आयु का सार तो यौवन है, ऋतुओं का सार वसन्त है । हे सुन्दरि ! जीवन का सार तो रति भोग-रसामृत का स्वाद है<sup>२</sup> ॥ ६७५ ॥

रम्यं कुसुमस्तवकं कुरु मे प्रिय किंकिरातमयतंसम् ।

तिष्ठतु वा विमनेन प्रत्यग्रमशोककिसलयं चारु ॥ ६७६ ॥

हे प्रिय ! मेरे लिये किंकिरात के सुन्दर फूल के गुच्छे का कर्णफूल बना दो । अथवा इसको छोड़ दो, अशोक का टटका कोमल पत्ता सुन्दर है, उसका कर्णफूल बनाओ ॥ ६७६ ॥

आन्तामास्तामेतत् प्रापय मां सिन्दुवारमभिरामम् ।

नहि नहि, राजति सुतरा चूतद्रुममंजरी कर्णे ॥ ६७७ ॥

१. मोहायुक्ताऽपि वा योपिदमिहृष्टाऽपि वा भवेत् ।

पात्रे पतन्तं पुरुषमनुवर्षेत सर्वदा ॥

२. यौवन—रतिभोगरसामृतको मत्तमस्यैव मत्तताय ।

विधयो युवभावो यस्तयौवनमुदाहृतम् ॥

( अ ) यत्र मध्वः प्रगल्भस्यापास्वरति इति सुधरश्च वयुषि—माधवी-  
भाष्य, १।२९.

( ग ) गीतामें—आमानां मागंशीर्षोऽहं कथूनां कुसुमाक्षर ।

इसको भी छोटी-भुके रमणीय सिन्दुवार के पास ले चलो । नहीं नहीं, आम्रवृक्ष की मंजरी कान में मुन्टर लगती है ॥ ६७७ ॥

धित्कारुख्यमकान्तं धिक्कान्तं यौवनेन रहितं च ।

धित्कद्ध्यमपि मन्मथशाल्वविकासं विना सुरतम् ॥ ६७८ ॥

कान्त प्रियतम के बिना तदृशावस्था की धिक्कार है, यौवन से रहित प्रियतम की धिक्कार है, कान्त और प्रियतम दोनों की धिक्कार है यदि सम्मोग कामशास्त्र के प्रयोगों के बिना होता है ॥ ६७८ ॥

जनितोऽप्यपराधशतैर्जामे तस्मिंश्चिग्रप्रहृदोऽपि ।

अधिगतमधुना सरया न वसन्तमनोत्य वर्तते मानः ॥ ६७९ ॥

हे जामे मुन्डरि ! अपर स्त्री गमन आदि सैकड़ों अपराधों से उत्पन्न, देर से बढ़ता हुआ भी मान वसन्त समय के आने पर उसमें नहा टिक सकता, इस बात को मैंने आज सच्ची से जाना ॥ ६७९ ॥

वर्षरातस्य हि सारः काललवः प्रथममेलनस्थानम् ।

सचकितमागच्छन्ती सोत्कलिका यत्र दृश्यते रमणी ॥ ६८० ॥

सैकड़ों वर्षों का सार वह काल लव है, जिस क्षण में रमणी उत्कलित होकर प्रिय ने साथ मिलने के सज्जत स्थान में चरित, निरमय, भय, कम्प के साथ आती हुई देखी जाती है ॥ ६८० ॥

किं निमित्तोऽसि धारा नरोऽपरः किमु वसन्तगुण एवः ।

कुसुमसारपूर्णनूणः किमुताभवदन्य एव कन्दर्पः ॥ ६८१ ॥

किसी सुन्दर व्यक्ति ने प्रति टलित—स्वा व्रजा ने यह नया ही बनाया है, अपना क्या वसन्त गुण—मल कोमल की बूझ आदि से भिन्न दूतप गुण है, अथवा कामदेव से अलग पुष्पगणों से भरे नतीर वाला दूतप कामदेव है ॥ ६८१ ॥

नो परयसि यदि वरुणः प्रचुरोदलकुसुमसुरभिरमणीया ।

परभूतकूजनमिधं न नृणोपि यदि द्विरेफमंकारम् ॥ ६८२ ॥

१. नारीप्रीतयवन नवरात्राण्युपस्थैर्विहीनपुरतं रम्योन्नतयोः ।

अन्तर्गुणप्रियायुक्तपराधना चेत्येकानि पदस्यव्यसतं दृष्ट्वा स्तु ॥

श्रद्धादीपिका ३१५.

२. दग्धेऽप्यङ्कद्विषा रोषात्पुत्राने पञ्चसाधके ।

नवं विनिर्माणे काव्यमनुराज प्रजापतिः ॥ समवमानुषा ७१४.

गन्धं यदि च न लभसे वासितदिग्न्योम सुमनसां हृद्यम् ।  
 अनुभवसि यदि स्पर्शं नो शीतलदाक्षिणात्यपवनस्य ॥ ६८३ ॥  
 रसनेन्द्रियैकशेषः परसंचार्यो जनेन परिभूतः ।  
 नार्हसि ततोऽपि मुक्त्वा निजाश्रमं गन्तुमन्यतो नितराम् ॥ ६८४ ॥  
 ( कुलकम् )

बहुत से विकसित फूलों की सुगन्ध से भरी दिशाओं को यदि नहीं देखती, कौयलके कूहक से मिली अमरों की झंकार को यदि नहीं सुनती, पुष्पों की दिशाओं में फैली मनोहर सुगन्ध को यदि नहीं सूँघती, शीतल दक्षिण पवन के स्पर्श का यदि अनुभव नहीं करती, तो केवल जिह्वा इन्द्रिय के वश में होकर परार्थीन बनकर अपने आश्रम नियास स्थान को छोड़कर; लोगों से तिरस्कृत होकर अन्यत्र जाना योग्य नहीं ॥ ६८३-६८४ ॥

अस्मिन् सरसि सलीलं करयन्त्रविनिर्यद्वम्बुधाराभिः ।

दयितेन ताडिताऽहं, मयाप्यसावाहतो मृणालिकया ॥ ६८५ ॥

इसी तालाब में हाथों से बनाई पिचकारी द्वारा जब फँककर-लीला-विलास युक्त चेष्टा करते हुए प्रिय ने मुझे मारा था, मैंने भी मृणालिका-कमलनाल से उसे मारा था ॥ ६८५ ॥

पुनरन्तर्जलमग्नां मामुपगम्याधिभावितः सहसा ।

उच्छिद्येप सहासं हासितसन्निहिमपरिवारः ॥ ६८६ ॥

फिर जल में गोता लगाकर-मेरे बिना जाने सहसा मेरे पास में आकर हँसते हुए मुझे ऊपर उठा लिया, इसको देखकर पास में बैठे सब सम्बन्धी जन हँसने लगे ॥ ६८६ ॥

संसक्ताद्रापरणं जघनं ननु पश्यतस्तदा तस्य ।

प्रथमाकांक्षाकृतं भेजे संभोगशृंगारम् ॥ ६८७ ॥

शरीर के साथ सटे-चिपके हुए गीले बखों वाले जघन प्रदेश की देखते हुए; उसमें प्रथम चाह सूचक, संभोग शृंगार उत्पन्न हो गया ॥ ६८७ ॥

काल-प्रदेश-वेप-व्यापार-स्थितिविशेष-घटनाभिः ।

चिररूढोऽपि हि यूनां नवत्वमुपनीयते रागः ॥ ६८८ ॥

मुवाओं का पुराना हुआ स्नेह—काल बसन्त, वर्षा आदि समय, प्रदेश-उद्यान, विहार आदि देश, वेप-पतले महोन बखों के परिधान, व्यापार-शृंगार चेष्टा, स्थिति-शृंगार विक्षेपण अवस्था आदि के कारण फिर से नया हो जाता है ॥ ६८८ ॥



सादरमर्पयतोऽञ्जं गोत्ररात्रलनापराधिनस्तस्य ।

सरयः स्मरामि सहसा धिलक्षताविलग्रहसितस्य ॥ ६८९ ॥

मानपूर्वक मुक्तक्री कमल मेंट करते हुए मल्ली से मेरे नाम के स्थान पर दूसरी खली का नाम लेने के अन्वय के कारण सहसा लज्जा आ जाने पर, आनन्द से हँसते हुए नायक का उत्कण्ठा पूर्वक मैं स्मरण करती हूँ ॥ ६८९ ॥

प्रत्यमनखप्रणितस्तनान्तरे क्षिपति लोचने स्पृहया ।

प्रेयसि तच्छ्रद्धानरुमकरवमहमन्त्रिणीपत्रम् ॥ ६९० ॥

स्तनों के बीच में नूतन त्रिये नखबतों की ललचाई आँखों से देखते हुए प्रियतम के, मैंने उनसे दोनों के लिए अपने हाथ से ही जीलाकमलदल का काम लिया-हाथों से उनसे दाँपा<sup>१</sup> ॥ ६९० ॥

क्षिप्त्वा तर्कितमम्भो गर्भितनलिनीपलाशपुटभावात् ।

आहतया बद्धिरुतं स्वर्वाधिया नैर शक्यते कर्तुम् ॥ ६९१ ॥

प्रियतम के नलिनोपनों के बने सम्पुटों में बद्ध भरकर सहसा दिना मेरी जानकारी के लक्ष से चोट मारने पर जो शब्द निरला, वैसा शब्द स्वयं अस्या में मुझसे नहीं लिया जा सकता ॥ ६९१ ॥

मुद्रिलष्टो हावविधिर्मदनालसगाग्रजम्भीतं ललितम् ।

गूढस्थानप्रस्टनमंगुलिविस्फोटनं, स्मितं सुमगम् ॥ ६९२ ॥

नीर्वायन्धविमोक्षो, मुहुर्मुहुः केशपाशविश्लेषः ।

स्याधरदशनप्रहर्षा, पालकपरिचुम्बनं, रतोत्सुकता ॥ ६९३ ॥

मली प्रकार करती हावविधि ( हाव प्रयोग ), काम के कारण अलसाये अगों से मुन्दर बग्भाई लेना, बख ठीक करने के बहाने से स्थान बाह्यमल-नाभि तरन आदि गुह्य अगों की दिखाना, अँगुलियों का घटाराना, मनेहर मुस्मान, बैधी हुई नीरा की दास्ता करने के लिए गोंठ खोलना, वैधे हुए जूड़े को पुनः बाँधने के पहाने बार बार खोलना,

१. विक्षिप्त—विध्वंसितकपोलान्तमुत्पल्लवामललोचनम् ।

किञ्चिद्विद्विदन्ताप्यं इवियं तद्विद्वि विदुः ॥

२. नखप्रत काज—माने नखीनमुक्ते गिह्ये प्रयासे,

द्वयप्रयेऽथ विरती च मदे प्रयासः ॥

[द्वयप्रये—गुह्यरोपत्य शोभायसज्जिदश वा स्पन्दनकाने]

ग्रपने निचले ओठ को दातो से काटना, गोद में लिये बालक का चुम्बन—ये स्तोसुका कामिनी के लक्षण हैं<sup>१</sup> ॥ ६६२-६६३ ॥

साकाक्षित क्षिपन्त्यास्तरलायतलोचने मुहु कान्ते ।

उद्दिश्य तद्वयस्यक्रमिति शोकग्रस्तवर्णगिर ॥ ६६४ ॥

(कुलकम्)

प्रियतम को चाहभरी दृष्टि ने साय चंचल दीर्घ आँखों से बार बार देखती हुई, उसको लक्ष्य करके, उसके मित्र के साथ शोकग्रस्त बाणी से बात करती है ॥ ६६४ ॥

एकीभाव गतयोर्जलपयसोर्मित्रचेतसोश्चैव ।

व्यतिरेककृतौ शक्तिर्हसाना दुर्जनाना च ॥ ६६५ ॥

पानी और दूध की भोंति एक बने आप दोनों मित्रों के हृदय को अलग करने में, पाड़ने में इस और दुजन ही समर्थ हैं ॥ ६६५ ॥

येन तदा मामूचे परिजनमुत्सार्य विवृतनवमन्यु ।

दर्शितहितस्वरूप परपीडाकरणपण्डित प्रखल ॥ ६६६ ॥

हमारा प्रम स्थिर हो जाने पर इस दुर्जनता के कारण ही नौकर चाकर आदि को हटाकर—नवीन क्रोध को दिखाते हुए, मेरे प्रति मुहृद्भाव प्रगट करते हुए आपका मित्र मुझे कहने लगा—क्याकि अतिशय दुष्ट व्यक्ति दूसरे को दुःखी करने में पण्डित होते हैं ॥ ६६६ ॥

अतिकोमलमतिपरिमितवर्णं लघुतरमुदाहरति शठ ।

परमार्थत स हृदय दहति पुन कालकूटघटित इव ॥ ६६७ ॥

धूर्त मनुष्य बहुत ही कोमल एवं बहुत ही थोड़े शब्दों में एवं सक्षेप से कहता है, यह वचन कालकूट महाविष की भोंति वास्तव में हृदय को जलाता है<sup>२</sup> ॥ ६६७ ॥

अविदितगुणान्तराणां नो दोष प्राप्तदेशवासानाम् ।

स्वाधीनकुकुमा अपि यद्विदधति बहुमतिं नोले ॥ ६६८ ॥

- १ स्त्री का त बोध्य नाभिं प्रकटयति मुहुविश्वपन्ती कटान्नाम्, दामूल दशयन्तो रचयति कुसुमपीडमुक्षिप्तपाणिम् । रोमावस्वेदशृङ्गमा श्रवति कुचतटप्रशि वस्त्र विवच, सौःकण्ठ वस्त्रि, नावो रक्षययति, दशव्याहमय भिनसि ॥

(ख) पद्यसायक (४३०) और अनगरग (४३८) में ये छक्षण दिये हैं ।

- २ मधुरिमरुचिर यव खड्गानाममृतमहो प्रथम पृथु ध्वनक्ति ।

अथ कथयति मोहहेतुमन्तगतमिव हाव्याइल विष तदेव ॥

दूसरे देश में रहने वालों को दूसरे के गुणों का यदि ज्ञान न हो तो इसमें कोई दोष नहीं। विन काश्मीरियों को केशर सुब्रम है, वे भी नील की चाद करते हैं ॥ ६६८ ॥

क्व महीतलरम्मा त्वं न्यक्कृतचन्द्रप्रभा स्वदेहत्वा ।

चित्रलता क्व बराको नीचैरूपसेवितारोहा ॥ ६६९ ॥

कहाँ तुम रम्मा की रम्मा, विघने अपनी देह की कान्ति से चन्द्रमा की प्योत्स्ना को भी नीचा दिखा दिया। कहीं रम चित्रलेखा को भी नीचा से उपसेवित है। (रम्मा-रम्मा नामक अक्षर और कटली, चित्रलेखा नामक अक्षर एवं मजिडा-मजोड की लता, आरोह ऊपर चढ़ना और नितम्ब) ॥ ६६९ ॥

यस्यार्थ न विगणितः प्रह्लात्मानो महावनाः कुलजाः ।

सोऽद्य हृदयेन तस्यां, त्वयि तिष्ठति बाह्यवृत्तेन ॥ ७०० ॥

जिसके लिए गुनने आसक्ति से नष्ट बने, कुलीन एवं अतिगुण वनवान् मनुष्यों को भी छोड़ दिया, वही पानुक आज हृदय से दूसरी सपत्नी को चाहता है, तुम्हारे लिये तो केवल बाहरी दिखावे से बसता है ॥ ७०० ॥

तामेव समाचरणां सद्भावेन प्रयतितां निपुणाः ।

चिन्दन्ति तत्र कुशलाः स्नेहविरूपे अभेदेन ॥ ७०१ ॥

उससे सद्भाव-प्रेम आदि के दिखावे पर बिलास आदि चिह्नों से मैंने इस बात को जाना है; जिस प्रकार कि प्रेम के न रहने पर व्यवहार की भिन्नता से कुशल व्यक्ति प्रेम को न्यूनता जान लेते हैं, उसी प्रकार निपुण व्यक्ति बिलास आदि लक्षणों से प्रेम को भी जान लेते हैं ॥ ७०१ ॥

भवतु, विरुद्विरेष्यः सत्कर्मविवेचने मनोवृत्तिः ।

नारोहतीति सर्वं निवेदितं पारिचित्येन ॥ ७०२ ॥

ठीक है, रहने दो, क्योंकि प्रेम के अङ्कुरित हो जाने पर सत्कर्म के विवेचन में मनोवृत्ति नहीं लगती, मैंने तो यह बात नेत्र पर परिचित होने के सम्बन्ध से ही कही है ॥ ७०२ ॥

इति दुर्जेनाहिनिःसूत्राग्निपदूषितसमस्तवपुषो मे ।

ईर्ष्यारूपः प्रहृष्टादिविरुद्विरेष्यखण्डनप्रभवाः ॥ ७०३ ॥

इस प्रकार साँप की मौँटि दुर्जन के मुख से निकली विष दूषित बाणी से मेरा सारा शरीर जल गया, इससे विरुद्विरेष्य के टूटने के कारण ईर्ष्या से उत्पन्न क्रोध उत्पन्न हो गया ॥ ७०३ ॥

१. स्वदेशजातस्य नरस्य नूनं गुणाधिकस्यापि भवेदनृहा ।

निर्जागता यद्यपि रूपराशित्वापि लोकाः परादासक्तः ॥

लघुहृदयतया तस्माद्भोपितवमपातविहतानाम् ।

वक्तृविशेषवितर्को न स्पृशति प्रायशो मन स्त्रीणाम् ॥ ७०४ ॥

इसलिये दुष्टों के वज्ररूपी कष्ट वचनों से चोख साइ खियाँ, हृदय के छोट्य होने के कारण कहने वाले की बात की बहुत अधिक छानबीन नहीं करती ॥ ७०४ ॥

प्रियमपि वदन् दुरात्मा क्षिपति विपत्सागरे दुरुत्तारे ।

आसाद्य प्राणभृतो मृतये परितोढि निहत्या खड्ग ॥ ७०५ ॥

दुष्ट आदमी मीठा बोलते हुए अति दुस्तर आपत्तियों के समुद्र में गिरा देता है । मनुष्य के पास पहुँची तलवार स्पर्श मात्र से ही मृत्यु का कारण बनती है ॥ ७०५ ॥

हितमधुराक्षरवाणी व्यवहारमनुपविश्य तल्लीनाम् ।

सरला दुराशयानामुपवातफनेन विन्दन्ति ॥ ७०६ ॥

दूषित मन वाले मनुष्यों की हिाकारी एवं कर्णप्रिय मधुर वाणी के बशी भूल, उसी में पूर्ण विश्वास रखने वाले सरल हृदय वाले मनुष्य, विनाश के परिणाम से ही उसको पहचानते हैं ॥ ७०६ ॥

परसन्तापविनोदी यत्राहनि न प्रयाति निष्पत्तिम् ।

अन्तर्मना असाधुर्न गणयति सदायुषो मध्ये ॥ ७०७ ॥

दुष्टव्यक्ति जिस दिन दूसरे को दुःखी देखकर प्रसन्न नहीं हो लेते, व दुःखित मन से आयु के दिनों में उस दिन की गणना नही करते ॥ ७०७ ॥

दिशसास्तानभिनन्दति बहु मनुते तेषु जन्मनो लाभम् ।

ये यान्ति दुष्टयुद्धे परोपतापाभियोनेन ॥ ७०८ ॥

दुष्ट व्यक्ति के जितने दिन दूसरों को दुःखी करने में जाते हैं, उतने ही दिनों को वह सफल दिन मानता है, उन्हीं दिनों में अपने जीवन को धन्य समझता है ॥ ७०८ ॥

विफसितवदन पिशुन प्रोक्तुल्लविलोचनो यथा भ्रमति ।

मन्ये तथा न जात सदहितकरणश्रमो वन्ध्य ॥ ७०९ ॥

१ स्पृशति अपि राजा हान्त जिह्मपि भुजगम् ।

हसति च वेताञ्जो मानयन्नापि दुर्जनम् ॥

२ को वेषि गुणविभाग, हस्तेन कथं परीक्ष्यो जाति ।

दुर्जयं कुटिबानां चेष्टितमन्यद् वचनान्तम् ॥ समयमातृका ८१४८

(च) प्रविश्य हि भ्रन्ति शठास्तथाविधानसङ्गनाङ्गान्निशिता इवेपव ।

किरात ११२०.

कपरी व्यक्ति प्रसन्न मुग्न और आँखों को विकसित करके जिस प्रकार से धूमता है, इससे म अनुमान करता है, सज्जनों को ग्रहित करने में उसका प्रयत्न निष्फल नहीं गया ॥ ७०६ ॥

शठमृगयु कुसृतिशरैरज्ञातप्रतिविधानसाधुमृगान् ।

अभ्यस्तलक्ष्यवेधो निघ्नन् न परिभ्रम ब्रजति ॥ ७१० ॥

धूर्त व्यक्ति बाण चनाने में सिद्धहस्त व्याध की भाँति, प्रतिरोध के उपाय को न जानने वाले साधु पुरुषों की मृगों की भाँति अपने उपनाप (मेदनाति) आदि दूषित नाशों से मारते हुए थोड़ा भी भ्रम अनुभव नहीं करता ॥ ७१० ॥

अनुकूलपरपुरन्ध्रोपु पुरपाणा ददमूलरागाणाम् ।

नयति मनो दुःशील कुसुमाक्षो हीनपात्रेषु ॥ ७११ ॥

अनुकूल—चित्त के अनुसार नखने वाली, सुन्दर, स्त्रियों म अतिशय स्नेह रखने वाले पुरुषों के मन को भी, दुष्ट स्वभाव वाला कामदेव नीच स्त्रियों में ले जाता है ॥ ७११ ॥

सावसर ब्रजतोऽन्या कौतुकदृष्टयः प्रसगतो दयितान् ।

बुद्ध्याऽपि विदग्धधियो वर्तन्ते नादयधर्मेण ॥ ७१२ ॥

कुतूहल दृष्टि से अन्य स्त्री से गुप्त रूप में प्रसगवश मिलते हुए अपने प्रिय तमों को दूसरों से जानकर भी, चतुर बुद्धिवाली स्त्रियाँ, नास्त्य धर्म से—बाध दियावे से पूर्व की भाँति उनसे वरतती हैं ॥ ७१२ ॥

सत्य प्रेमणि घृद्धे व्यथयति हृदय मनागपि स्खलितम् ।

अवधृतनिजमाहात्म्यास्तदपि न धीरा विगुह्यन्ति ॥ ७१३ ॥

प्रेम के अतिशय उदने पर, हृदय में उत्पन्न थोड़ी सी भी शका, अत्यन्त पीडा उत्पन्न करती है, यह सत्य है । तथापि उदार चित्त वाले धीर मनुष्य इसमें भी विचित्र नहीं होते ॥ ७१३ ॥

स्वच्छन्द पितु रस भ्रान्त्वा नानावनानि कुसुमेषु ।

अनुभूतगुणविशेष पुनरेष्यति भालती मधुप ॥ ७१४ ॥

भ्रमर अनेक वनों म धूमकर इच्छानुसार फूलों का रस भले ही पीता रहे, फिर भी अनुभूत गुणविशेष के कारण वह भालती पर ही फिर लौटेगा ॥ ७१४ ॥

१ यथा रत्नावली में—प्रकृष्टस्य प्रेम्ण स्खलितमविपश्य हि भवति—२।१२.

२ (क) नव नव गुणरागी प्रायशो जीवलोका —

(ख) भ्रमर कौतुकास्वादमात्रो नवनवान्मुक्त —समयमावृत्ता २।१२

(ग) कुसुमस्तवकैर्नद्या सन्त्येव परितो घटा ।

तथापि भ्रमरभ्रान्ति हरत्येकैव भावतो ॥

मालत्या गुणवार्ता नो सम्यग्वेत्ति मधुकरस्तावत ।

अनुभवमेति न यावत् सुमनोन्तरसगमास्वाद ॥ ७१५ ॥

मालती के गुणों को भ्रमर तब तक ठीक प्रकार से नहीं जानता, जब तक वह दूसरे फूलों के रस को नहीं चख लेता<sup>१</sup> ॥ ७१५ ॥

कोमलमानकदुत्त्व भजमानो भजति दीप्ततामधिकाम् ।

सचाल्यमानदारु पावक इव सुप्रभ स्नेह ॥ ७१६ ॥

थोड़ा सा तीव्र रस खा लेने पर उत्तम स्नेह अधिक तेज बन जाता है (नमक के साथ घी की माना अधिक खाई जाती है) जिस प्रकार कि लकड़ियों के हिलाने से अग्नि अधिक तीव्र हो जाती है<sup>२</sup> ॥ ७१६ ॥

य पुनरतिकोपानलसन्तापवशेन दूरमाकृष्ट ।

काचमणि खलु स यथापरिणाम सख्यसख्यमुपयाति ॥ ७१७ ॥

अतिशय कोपान्नि के सताप के कारण जो बहुत दूर हो गया है,—वह स्नेह अवश्य टूट जायेगा, जिस प्रकार कि अग्नि की उष्णिमा से काचमणि—काच टुकड़े टुकड़े हो जाता है ॥ ७१७ ॥

चेतनलाभाद्बहव सेव्यन्ते सौष्ठवेन पचजना ।

विश्राम्यति यत्र मन स तु दुःप्राप सहस्रेषु ॥ ७१८ ॥

वतन—धन के लाभ की दृष्टि से बहुत से मनुष्य भली प्रकार सेवा करते हैं । परन्तु मन को जहाँ शान्ति मिले, ऐसा मनुष्य हजारों में विरला हो कोई होता है ॥ ७१८ ॥

मन्वादिमुनिवरैरपि कालत्रयवेदिभि सुदर्शयम् ।

तत्सुकृत यम्य फल रभसागतवल्लभाश्लेष ॥ ७१९ ॥

भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालों की बात जानने वाले मनु आदि मुनियों से भी यह शुभ कर्म दुर्लभ है, जिसका फल प्रेमी का उत्कण्ठापूर्वक आकर प्रियतमा का आलिंगन होता है ॥ ७१९ ॥

- १ दूग्गदुग्धकति चम्पक, न च भज यंभोजराजीरशो,  
नो जिघ्रयपि पायुष्मापरिमल, चूते न घक्त रक्तिम् ।  
मन्वारेऽपि न सादरो विचकिष्णाप्रोदेऽपि सन्तप्यते,  
तन्मन्ये ष्वचिदङ्ग भृगतस्तेनास्वादात्ता माजती ॥

- २ (क) मन्मथो नेपथ्या विना,  
(ख) अवशोपहिता स्नेहा स्नेहयन्त्यचिरात्तरम् ॥ चरक सू अ १३।९८

यातेऽपि नयनमार्गे प्रेयसि यस्या स्मृतिर्व्यलीकेषु ।

मन्ये सा प्रतिनियतं कुण्ठितरसपचको मदन ॥ ७२० ॥

प्रियतम के दिखाई पड़ने पर तिस स्त्री का स्मृति उसने अपराधों में जाती है, मैं मानती हूँ कि अगस्त्य उसने प्रति कामदेव ने सन बाण निराल हो गये हैं ॥ ७२० ॥

जीव्यत एव कथचिद्विगृप्तिमिमा महद्विरवगीताम् ।

विजहाति यन्मणालिका तद्वाञ्छितरमणलाभलोभेन ॥ ७२१ ॥

किसी प्रकार से जीना है, इसी कारण रूपाजीवा-वेश्या अतिशय शक्ति इस वृत्ति को स्वीकार मिये हुए हैं, फिर भी इस निन्दनीय वृत्ति को वेश्या जो नहीं छोड़ती, उसका एक ही कारण है, वह समझती है कि शायद भाग्य से कोई इच्छित मन पसन्द कामुक मिल जायेगा ॥ ७२१ ॥

कण्टकित कटुरसान् करीरघनरादिविटपतङ्गुल्मान् ।

उपभुजाना करभी दैवादाप्नोति मधुरमधुजालम् ॥ ७२२ ॥

ऊँटनी काटे एवं कटुरस वाले करीर, बर आदि वृक्ष, भाड़ी आदि को खाते हुए भा भाग्यवश शहर ने छूते को प्राप्त कर ही लेती है ॥ ७२२ ॥

का स्त्री न प्रणयिवशा, का विलसितयो मनोभवविहीना ।

को धर्मो निरुपशम, किं सौख्य वल्लभेन रहितानाम् ॥ ७२३ ॥

ऐसी कौन सी स्त्री है जो मत्ता के अधीन नहीं ? ( सन मत्ता के अधीन है ), काम से रहित विलास कौन से हैं ( सन विलास कामपुत्र होते हैं ), जिसमें शान्ति नहीं ऐसा कौन सा धर्म है ( सब धर्मों में शान्ति है ), प्रिय स रहित कौन सा सुख ( सब सुख प्रिय के साथ में ही ) है ॥ ७२३ ॥

ह्याच्छन्द्यफल वाल्य, तारुण्य रुचिरसुरतभोगफलम् ।

स्वविरत्वमुपशमफल, परहितसंपादन च जन्मफलम् ॥ ७२४ ॥

बाल्यावस्था का फल है स्वच्छन्दता है, तरुणावस्था का फल सुन्दर सम्भोग, वृद्धावस्था का फल शान्ति और ब्रम का फल दूसरों का हित करना है ॥ ७२४ ॥

१ पराधीना निद्रा परपुरुषचिन्तानुसरणम् ।

मुद्राशून्य हास्य रुदितमपि शोकेन रुदितम् ।

पथे न्यस्त काय करजदुःखनैमिषवपुषा—

मदो कष्टा वृत्तिर्जगति मणिवाना बहुमया ॥ चाख्ययनोत्तिष्ठत

२ कामसूत्र में कहा है—

काम च यौवने ( २।१।२।३ ), स्वविराधममोक्षं च, ( २।१।३।४ ) ।

अभिदधतीमिदमालीभवकर्णं गृहीतयेव भूतेन ।

यौवनसुप्तेन सार्धं मयैव यूय परिच्छिन्ना ॥ ७२५ ॥

सखी से कही उपर्युक्त आर्या को सुनकर मानों मुझमें भूत का आवेश हो गया हो मैंने आपके साथ में यौवन सुप्त का अनुभव किया ॥ ७२५ ॥

अधुनाऽनुतापपापकर्मध्यगता पन्यमानसर्वांगी ।

निष्फलजन्मप्राप्तिर्जीवाम्युच्छासमात्रेण ॥ ७२६ ॥

अब विरह काल में पश्चात्ताप रूपा अग्नि ने बीच में पूर्ण रूप में जलती हुई, निष्फल जीवन से केवल स्वाम लेती हुई बी रही हू ॥ ७२६ ॥

स्थानेषु येषु युष्मत्सगत्या क्रीडित चिर धृत्या ।

तानि खलु वीक्षमाणा भवामि कण्ठस्थितप्राणा ॥ ७२७ ॥

आपके साथ जिन स्थानों में मन सतोष के साथ देर तक आनन्द किया था, उन स्थानों को देख देखकर गले में प्राणों का रोने हुए हूँ ॥ ७२७ ॥

अन्यघशेन विसृष्टा वृत्तभूषा यन्त्रसुखसंचारा ।

वारुमयीय प्रणिमा विदधामि विडम्बना वल्ली ॥ ७२८ ॥

निश्चय होकर दूसरों के द्वारा की हुई वशभूषा से यत्र वत्र से हिलती झुलती फठपुतली की भाँति मैं प्रकृता की हँसी या पाव उनी हुई हूँ ॥ ७२८ ॥

यदि नामोदरमरणप्राप्त्यै कुरुतेऽन्यपुरुषसहलेपम् ।

तदपि न पुष्टिर्भूगया अपिबन्त्या अ (आ) रविन्दमकरन्दम् ॥ ७२९ ॥

यद्यपि भर्गा केवल पेट भरने के लिये ही दूसरे पुरुषों का आलिंगन करती है, तथापि उसका सतोष तो कमल के मकरन्द के पीन से ही होता है ॥ ७२९ ॥

आस्तामपरो लोक व्रीडापेक्षी परापदि पीत ।

व्यसनार्णवे पतन्ती न वारिता परिजनेनापि ॥ ७३० ॥

बुनिया तो तमाशा देखती है तथा दूसरों के दुःख में प्रसन्न होती है । दुःख में गिरती हुई मुझको सम्बन्धी वनों ने भी वहाँ रोका, श्रीरों की बात छोड़ दो ॥ ७३० ॥

किं वा बहुभि कथिते, सम्प्रति हि मयाऽपि नियमिता बुद्धि ।

स्थास्यामि सन्नियुक्ता भवद्गृहे प्रेक्ष्यभावेन ॥ ७३१ ॥

अधिक कहने से क्या लाभ । अब मैंने भी हठ निश्चय कर लिया कि आपके घर में ही नौकर बनकर रहूँगी ॥ ७३१ ॥



इति नेत्रादिविकारवशमुपनीतं प्रलीनवैर्यान्त्रम् ।

मारप्रहाभिभूतं परिमृष्टप्राङ्निराकृतिस्मरणम् ॥ ७३२ ॥

इस प्रकार नेत्र विक्षेप आदि अनुराग सूचक-भोहोत्सादन विलासों से उत्पन्न वैर्य रूपी अस्त्र को व्यर्थ बनाकर, अपने वश में ले आये । कामदेव से पीड़ित होने पर वह पहले मित्रा दुःखा सत्र अपमान भूल जायेगा ॥ ७३२ ॥

प्रादुर्भूतरिरंसं क्षणे क्षणे जघनदेशगतदृष्टिम् ।

पञ्चाम्रमिव विमोक्ष्यसि पूर्ववदाचूष्य मुञ्चु निःशेषम् ॥ ७३३ ॥

( युग्मम् )

हे मुञ्चु ! रमणोच्छा ने उत्पन्न हो जाने पर, थोड़ी थोड़ी देर में जघन देश पर दृष्टिपात करने हुए, उमकें, पके हुए आम का भोजन पहले की तरह चूमकर निर्जन हो जाने पर निराल देगी ॥ ७३३ ॥

म्वशरीरामिपङ्क्तिर्ध्वं चक्रस्मितदंष्ट्रिपातवाग्रदृशम् ।

प्रक्षिप्याकृष्य जडं स्फुरणेन विवर्जितं मुपरिपुष्टम् ॥ ७३४ ॥

हन्तद्वयान्तरागतमुपचारपरिव्ययेन संरुन्ध्य ।

भुक्त्वा यावन्मांसं त्यज्यसि चर्मास्थिगोपितं मत्स्यम् ॥ ७३५ ॥

अपने शरीर रूपी मांस को [उसी में] लगाकर, उपहास सूचक मुस्कराना, धक दृष्टिपात—कटाक्ष, एवं वनोक्ति रूपी गडिष को पँकड़-मूर्ख, यदि रहित, अतिशय पुष्ट मछली का मुक को [पँकड़-दोनों हाथों के बीच में पकड़कर (कामुक का छाती से आलिंगन करके); अनुकूल आचरण से, बेशरार मसाले से बनाकर (कामुक को अनुकूल आचरण-व्यवहार आदि से वश में करने), मांस को सम्पूर्ण रूप में खाने (कामुक का सब धन लेने), चर्म और अस्थि मान रहने पर (कामुक के निर्जन होने पर) पँकड़ देगी (कामुक को निराल देगी) ॥ ७३४-७३५ ॥

शृणु मुञ्जोणि यथाऽस्मिन् समलेश्वरपादमूलमंजया ।

प्रवराचार्यदुहित्रा राजमुतदचर्वितश्च मुत्तश्च ॥ ७३६ ॥

१. जघन—मगस्य माल जघनं विलोपे तुङ्गमांसकम् ।

मृदुलं मृदुरेमाद्यं इतिपातचर्मोदितम् ॥

२. विस्तारितमकरवेतनधीवरेण क्षीर्मांजितं कविशमन्नं भवाम्बु राशी ।

येनाधिराजदधरासमिपक्षोक्षमत्यंमत्स्यान् विहृष्य निपचत्यनुरागवद्भी ॥

हे सुन्दर नितम्ब वाली ! सुनो, प्रवर आचार्य की कन्या एवं कमलेश्वरपाद नामक किसी मठाधीश से उत्पन्न मंजरी ने इसी वाराणसी में राजपुत्र का भोग करके-सम्र वन लेकर धक्का दे दिया था । ( कमलेश्वर पाद से उत्पन्न एवं प्रवर आचार्य की कन्या के नाम से प्रसिद्ध व्यभिचार से उत्पन्न होने के कारण वह भी व्यभिचारिणी थी—यह सूचित किया ) ॥ ७३६ ॥

आसोच्छ्रुसिंहभटो नाम्ना नृपतिर्महोयसो श्रेष्ठः ।

तस्यात्मजोऽधितस्थौ ( छौ ) निवेशनं देवराजसंबद्धम् ॥ ७३७ ॥

महान् पुरुषों में श्रेष्ठ सिंहभट नामक एक राजा था, उसका पुत्र समर भट देवराज से सम्बद्ध ( पाठान्तर में देवराष्ट्र-देवगिरि के पास ) सेना शिविर में रहता था ॥ ७३७ ॥

स कदाचिद्वृषभध्वजदिदृक्षया परिमितामपरिवारः ।

अनुवर्तमान आगात्तारण्योद्गीर्णवैपचरितानि ॥ ७३८ ॥

समरभट कभी वृषभध्वज शिवजी की पूजा देखने की इच्छा से, थोड़े से विश्वस्तनीय साथियों के साथ, युवावस्था के योग्य स्त्रिलते हुए वैप-सनोदर वस्त्र अलंकार आदि धारण करके, युवावस्था के योग्य अवलोकन प्रलोभन आदि कार्यों को करते हुए, काशी विश्वनाथ मन्दिर में पहुँचा ॥ ७३८ ॥

मूर्धन्निभागसंस्थितवृहदम्बरचीरकेशसंयमनः ।

अल्पाच्छगाग्रगतो घनकुङ्कुमलितकर्णकेशाग्रः ॥ ७३९ ॥

समर भट का चेप—एक बड़े भारी रुमाल से कानों के ऊपर शिरका १/३ भाग दँधा हुआ था, शरीर पर थोड़ा और स्वच्छ अंगरग पुता था, बाहों के सिरों पर तथा कान में गाढ़ा केशर लगा हुआ था ॥ ७३९ ॥

धृतवेत्रदण्डकूर्चकपरिवेष्टितसासिवेनुसङ्ग्रह ।

मृदुतरपटिकावरणः शब्दोल्लङ्घनचुर्चुरांगचरणत्रः ॥ ७४२ ॥

हाथ में श्रेत की छड़ी थी; जिसका शिरोभाग कमर में बँधे वस्त्र में लगा था; कमर में कयरी और तलवार लटक रही थी । कोमल छोटा वस्त्र—उत्तरीय दुपट्टा ओढ़ा हुआ था; पैरों में चुर-चुर करने वाला जूता पहने हुए था ॥७४२॥

विश्वनाथ मन्दिर में आते हुए वियों की बात-चीत :—

गम्भीरेश्वरदास्या लम्नः किल तव चयस्यको वीरः ।

प्राप्स्यति साऽपि दुराशा यपत्रितयेन चन्मया प्राप्तम् ॥ ७४३ ॥

वीर नामक तेरा मित्र गम्भीरेश्वर नामक वेश्या ( अथवा गम्भीरेश्वर नामक देवालय की देवदासी ) में आसक्त हुआ है, वह उसी प्रकार से निष्फल होगा—जैसे मैं तीन साल तक उसके लिए कोशिश करके निष्फल हुआ हूँ ॥७४३॥

दर्शयति दिशः फलिता अमृतगमरिति करेऽवतारयति ।

सुरदेवि चन्द्रवर्मा निर्वस्तुकयाक्प्रपंचेन ॥ ७४४ ॥

हे सुरदेवि ! चन्द्रवर्मा व्यर्थ की बातों का बाल पैसा कर दिशाओं का फलवाली दिखाता है और चन्द्रमा को हाथ में लाता है; सरसा हाथ पर उगाता है, बातें ही बनाता है—उनमें कुछ सार नहीं ॥७४४॥

त्वामनुयान्तं सम्प्रति पश्यामि कुरंगि यमुपेणम् ।

मुनिरुपिता भविष्यति विपमा गुहजिह्विका तस्य ॥ ७४५ ॥

हे कुरङ्ग ! यमुपेण को तुम्हारे पीछे लगा अब देखती हूँ; उसकी मीठी वाणी कैसी झूठी है, वह तुझे भी पता लग जायेगा ॥७४५॥

वचयति ज्ञनं योऽसौ हरिणि हरो धूर्तताभिमानेन ।

लिखति शतं दशमृदया स निमग्नस्तरलिकायते ॥ ७४६ ॥

हे हरिणि ! धूर्तता के अभिमान से जो वह हर मनुष्यों को एक सी के स्थान पर एक सौ दस लिखकर ठगता है; वह तरलिका के भँवर में—चक्कर में पँस गया ॥७४६॥

गृह्णासि यत्पटान्ते मम पश्यत एव मन्द मदिराक्षीम् ।

अत आद्ययोरवश्यं सा वक्ष्यति नोक्तमन्तरं भक्ता ॥ ७४७ ॥

मेरे देखते हुए जो तू मदिराक्षी ॥ प्रांचल पण्डित है; हे मूर्ख ! हम दोनों की गोपनीय बात की वह अन्वय बदेगी ॥७४७॥

योऽयं गृहीतवृत्तिकः कुशाकर्णो विधृतदण्डकापायः ।  
 लोकस्पर्शार्शकी कृतापसारो विलोक्यन् पार्श्वो ॥ ७४८ ॥  
 कुर्वाणो मौनघृतमुत्पादितसकलवैष्णवप्रीतिः ।  
 हरिशासनं प्रपन्नास्त्रिपुरान्तकदर्शनापदेशेन ॥ ७४९ ॥  
 स्त्रैणं पश्यति युक्त्या साकांक्षं वर्जितान्यजनदृष्टिः ।  
 कुमुदिनि मम हृदयगतं भवितव्यं व्याजलिङ्गिनाऽनेन ॥ ७५० ॥  
 ( अन्तर्विशेषकम् )

सन्धासियों का आसन लिये, कानों में कुशा छाये; दण्ड और कापाय-  
 गेरुका घन धारण किये; मनुष्यों से स्पर्श न हो जाये इसलिए लोगों को दूर  
 हटाकर-दायें-बायें देखते हुए; मौनघृत धारण करके सब वैष्णवों का भद्रा-  
 भाजन बना, मोक्ष की प्राप्ति के लिए विष्णु के शरण में पहुँचा है, वह पर  
 दण्डी [ अथवा कुशाकर्ण नामक साधु ] महादेव के दर्शन के बहाने से, दूसरे  
 मनुष्यों से श्रोत्र बचाकर नष्ट चाव से स्त्रियों के समूह को देख रहा है, हे कुमु-  
 दनी ! इस कपट घेपधारी साधु से अवश्य मेरी मनोकामना पूरी होनी  
 चाहिए ॥ ७४८-७५० ॥

पर्यत्यदृश्यमानो, निरीक्षितो वीक्षते परां ककुभम् ।  
 भूते किञ्चित्सृष्टहमभियुक्तो भवति कीलितध्यानः ॥ ७५१ ॥

अभियुक्त व्यक्ति स्त्री को देखते हुए कोई न देखे, इस प्रकार से श्रोत्र  
 बचाकर देखता है; पकड़ा जाने पर खाली दिशाओं को ( इधर-उधर ) देखने  
 लगता है, असृष्ट अभिलाषा सूचक बात करता है, पृष्ठ पर मर्पई  
 आवाज में बात करता है ( या मौन धारण कर लेता है ) ॥ ७५१ ॥

न जहाति सभासन्नं, भोत्सहते पार्यगोचरे स्थातुम् ।  
 एष मनुष्यो मन्ये निष्पतिभः सामिलापश्च ॥ ७५२ ॥  
 ( अन्तर्गुणलक्षम् )

पास में बैठ जाने पर उठना नहीं चाहता, समीप में खड़ा होना पसन्द  
 नहीं करता, ऐसा मनुष्य प्रतिमा ( मुष्क ) रहित एव स्पर्शा समागम के लिये  
 इच्छुक होता है, ऐसा मैं मानती हूँ ॥ ७५२ ॥

तेऽतीताः खलु दिवसाः क्रियन्ते नर्म त्वया समं येषु ।  
 अधुनाऽऽचार्यानी त्वं पाशुपताचार्यसंघन्धात् ॥ ७५३ ॥

वे दिन चल गये, जिन दिनों में तुम्हारे साथ हास-यहास किया जाता था ।  
 पाशुपत आचार्य से सम्बन्ध होने के कारण तुम भी अब आचार्यानी हो गई ॥ ७५३ ॥

भ्रमसि यद्येष्ट तावत् कुर्वाणो युजती पल्लवप्रहणम् ।

लोलिकदास न यावन्नरदेवी पानिका प्रवृत्ति ॥ ७५४ ॥

हे लोलिक दास ! जब तक नरदेवी प्याऊ पर नहा जाती, तब तक तुम युन-  
तिथी के आंचल को पण्ड कर इच्छानुसार घूमते रहते हो ॥ ७५४ ॥

एवप्रकारयाच्यप्रोक्तचेटिकासमासीर्णम् ।

सेवाचतुरपुरसरविजनीकृतवर्त्म देवकुलम् ॥ ७५५ ॥

( आदिमहाकुलकम् )

इस प्रकार का सारी रातें सुनते हुए नि और चेष्टिका-नाचिका से भरे,  
नीकरी द्वारा खाली जनाये मार्ग से मन्दिर में पहुँचा ॥ ७५५ ॥

सपादितहरपूजो निन्दुरयाष्टीकनियमिते लोके ।

त्यरितनियोगिस्थापितमासनमध्यास्त समरभट ॥ ७५६ ॥

निन्दुर दण्डभारिका द्वारा जन-समूह न रोक दिये जाने पर, महादेव की  
पूजा करन, सेवकों द्वारा नञ्ज से निष्ठाये आसन पर समरभट बैठ  
गया ॥ ७५६ ॥

अप्रोपनिष्ठनर्तकराशिर्गतात्प्रकाशयुजविगण ।

श्रेष्ठिममुखनशिग्जनदीकिताम्बूलकुसुमपटवास ॥ ७५७ ॥

उत्तर सामने में नर्तक, पैण्ड-बाण्ड, गायक, यक्षगाने बैठ गई । प्रमुख सट  
तथा वणिक् समूह पान, मुगाठ-पूल, इन आदि मुगाठ लहर आये ॥ ७५७ ॥

विबिधविलेपनसदितचक्रधरसूदगधारिणा शून्य ।

प्रपुत आत्तकृपाणै शराररक्षैश्च निरस्तै ॥ ७५८ ॥

माना प्रकार के अनुलेपनों से चिनिन, चक्र ( अगुती पर घुमा कर पैका  
जाने वाला शक्र ) तनवार का धारण किए, तनवार खांचे निधासनाय अक्र  
रक्षक उसके पीछे खड़े थे ॥ ७५८ ॥

साम्बूलरकरभृता सन्दशगृहीतधीटिकाग्रहणे ।

ईपत्सष्ट कुर्वन् मन् सटनसुरेन वामेन ॥ ७५९ ॥

साम्बूल की फिगरी का धारण करने वाल क हाथ स पान न बाडा लने के  
लिए अंगूना और अगनी दो अगुलिया का मिनाकर मुन्दर रूप में धीमे से धान  
सा धूते हुए उसने पान लिया ॥ ७५९ ॥

१ सटन-चिमटा-उसके आकार में-सटन का लक्षण—

तपयगुह्ययोगवराहस्य पदा भवेत् ।

अमुप्रजलमध्यस्थ स सदस्य इति स्थूय ॥

पार्श्वस्थितनर्मप्रियसचिवन्यस्तपूर्वतनुभागः ।

पप्रच्छ कुशलवार्तां स वशिग्जननर्तकप्रभृतीन् ॥ ७६० ॥

( कुलकम् )

अपने बगल में बैठे नर्म प्रिय सचिव ( जिसके साथ खुले रूप हास परिहास हो सकता था ) की गोद में शरीर के ऊपर के भाग—शिर को रखे हुए—वशिग्जनों एवं नर्तकों से कुशल भगल पूछने लगा ॥७६०॥

अथ वैतालिक उच्चैरुपसंहृतलोककलकले धीरम् ।

अभितुष्टाव समित्थं प्रसन्नगम्भीरया वाचा ॥ ७६१ ॥

इसके पीछे जन-समूह का शोर शान्त हो जाने पर; स्वस्थ मन वाले राज-पुत्र को वैतालिक ने प्रसन्न ( विमल-कीमल ) एव अर्थ से भरी ऊँची आवाज से इस प्रकार से प्रसन्न किया ॥७६१॥

जय देव परधलान्तरु गुरुचरणाराधनैककृतचित्त ।

वरचनिताजनमोहनं वारिद्रयतमप्रचण्डकरजाल ॥ ७६२ ॥

हे देव आपकी जय हों, आप शत्रु सैन्य के लिए मृत्यु रूप हो, गुरुजनों की सेवा में एकाग्र चित्त रहने वाले हैं, सुन्दर यनिताओं को मोहने वाले, निर्धनों की अन्धकार रूपी दरिद्रता को नष्ट करने में सूर्य की भांति हैं ॥७६२॥

रणवीर-वंशभूषण गुरु-वसुधादेव-पूजन-प्रह्व ।

शरणागताभयप्रदं हितवाग्धवबन्धुजीयमध्याह्न ॥ ७६३ ॥

शरवीरों के वंश के भूषण ! गुरु-ब्राह्मणों की पूजा में नम्र, शरणागत को अभय देने वाले, हित चिन्तक, सम्बन्धीजन, मित्रों के लिए दुपहरिया के फूल की भाँति हो ॥७६३॥

तादृक् प्रतापदहनः स तावको व्याघ्रगगनदिक्चक्रः ।

दृष्टो जलायमानो रिपुवनितातिलकशोभासु ॥ ७६४ ॥

आपना सम्पूर्ण दिशाओं में पैला प्रताप ऐसा है कि उससे शत्रु नियों की तिलक भी पानी में धुल सा गया है—धोख गया है, वे विधवा हो गई हैं ॥७६४॥

कट्टामुख - कट्टामुख—तत्रेनीमन्त्रमानये पुंल्लोऽङ्गदेन पीडयते ।

यस्मिन्ननामिद्ययोगः स हस्तः कट्टामुखः ॥

पुंल्ल—शस्त्रं यत्रपाली ।

१. वेताल—तत्तत्प्रहरकयोग्ये रागीभरत्तजवाविभिः रक्षोदैः ।

सरमयमेव विनालं मयन् वैतालिको भवति ॥

एष विरोधः स्पष्टो बह्वैश्च त्वत्प्रतापबह्वैश्च ।

अंकुरति तेन दग्धं दग्धस्यानेन नोद्भवो भूय ॥ ७६५ ॥

अग्नि और आपके प्रतापअग्नि में यह अन्तर देखने में आता है, कि अग्नि से जली बनत्यति निर अंकुरित हो जाती है, परन्तु आपके प्रतापअग्नि से जली वस्तु निर अंकुरित नहीं होती ॥ ७६५ ॥

श्रीफलभुक् पश्यतो विग्रहरसिको विमुक्तशस्त्ररतिः ।

राज्यस्थिति न मुंचति हस्तलक्ष्मीरुपि तव विपक्षगणः ॥ ७६६ ॥

साम्राज्य सुख का उपभोग करनेवाला, वाहनों से युक्त, युद्ध का प्रेमी, राज्य का त्याग करने वाला शत्रुसमूह, लक्ष्मी ऐश्वर्य का हरण हो जाने पर भी राज्यस्थिति को नहीं छोड़ता । ( मित्य फल को पाने वाला, पत्नी से मुक्त, शरीर की रक्षा में प्रेम करने वाला; राज्य त्याग करके शत्रुगण लक्ष्मी का हरण होने पर भी राज्यस्थिति को नहीं छोड़ता ) ॥ ७६६ ॥

ददतो वाञ्छितमर्थं सदाऽनुरक्तस्य तव गृहं त्यक्त्वा ।

स्त्रीचापलेन कीर्तिर्न प्राप्तका गता ककुभः ॥ ७६७ ॥

इच्छित वस्तु का दान करने के कारण, सदा स्नेह रखने वाले आपके घर का त्याग करके; स्त्री रमान की चरलता से ही कीर्ति यदिप्राप्त—स्तुति करनेवालों के द्वारा सदा दिशाओं में फैल गई ॥ ७६७ ॥

भवतो भवतो धैर्यं, तेन हि भिन्नोऽन्धको रिपुः प्रणतः ।

मुक्तास्त्वया तु बहवो रिपवोऽपि प्रेक्षकाः समरे ॥ ७६८ ॥

आप में शिव से भी अधिन धैर्य है, क्योंकि शिव ने अतिशय नम्र बने अपने शत्रु अन्धक का प्रां वध किया था । आपने तो युद्ध में बहुत दूर तक शत्रुओं को भी छोड़ दिया ( लड़ने वाले शत्रुओं को तो क्षमा कर ही दिया ) ॥ ७६८ ॥

अटता जगतीमखिलामिदमाश्चर्यं मया परं दृष्टम् ।

धनदोऽपि नयननन्दन परिहरति यदुग्रसपक्वम् ॥ ७६९ ॥

हे यात्री को आनन्द देने वाले ! सम्पूर्ण पृथ्वी का अमण करते हुए मैंने यह आश्चर्य देखा कि धन देने वाले होने पर भी आपका उग्र पुरुषों के साथ सम्बन्ध नहीं । ( धनद-कुवेर, उग्र-भृगादेव, कुवेर और भृगादेव का मैत्री प्रसिद्ध है, यथा—'मन्या देव धनपतिस्तत्र यत्र साक्षाद् वसन्त'—मेघदूत-७६; 'कुवेरस्य मरुसखो'—अमरकोश ) ॥ ७६९ ॥

इदमपरमद्भुततमं युवतिसहस्रैर्विलुप्यमानस्य ।

शुद्धिर्भवति न हानिर्यच्च सौभाग्यकोपस्य ॥ ७७० ॥

यह भी बहुत बड़ा आश्चर्य है कि तुम्हारे सौभाग्य कोप का हजारों युवतियों द्वारा उपभोग करने पर भी उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं होता, अर्थात् और भी अधिक वृद्धि होती है ॥७७०॥

अपर विस्मयजनन घवलत्व नायाति यद्भवत ।

ललनालोचनकुवलयदलत्विपा शवलितम्यापि ॥ ७७१ ॥

यह दूसरा आश्चर्य है नियों के नेत्रमल्लो की काति से कर्तुरित होने पर भी तुम्हारी श्वेतिमा क्षुप्त नहीं जाती, वैसा की वैसी बनी रहती है ॥७७१॥

हृदयेषु कामिनीनामेकोऽनेकेषु वससि येन त्वम् ।

जनक कुसुमास्त्रभूत पुरुषोत्तम तेन विश्वरूपोऽसि ॥ ७७२ ॥

क्योंकि तुम एक होने पर भी बहुत सी स्त्रियों के हृदयों में रहते हो, इसलिए तुम कामदेव के जनक, पुरुषोत्तम, विश्वरूप नारायण हो । ( पुरुषोत्तम कृष्ण, कुसुमास्त्रभूत प्रद्युम्न, कृष्ण प्रद्युम्न के पिता हैं, आप भी काम का उद्दीप्त करते हैं, इसलिए आप भी कृष्ण नारायण हैं ) ॥७७२॥

किं वहसि घृथा गर्व प्रियोऽहमिति योपिता नराधीश ।

काक्षन्ति स्म मुरारि षोडशगोपीमहस्राणि ॥ ७७३ ॥

हे राजन् ! किसलिए व्यर्थ का यह अभिमान करते हो कि मैं स्त्रियों का प्रिय हूँ—मुझे स्त्रियों चाहती हैं, यह व्यर्थ का अभिमान भिखालाप करते हो । कृष्ण को सोलह हजार गोपियाँ प्रेम करती थीं ॥७७३॥

कार्पण्येन ययाचे भयसमये यो बलि हृषीकेश ।

न स भवति समो भवता दानैरुनिपणहृदयेन ॥ ७७४ ॥

यह व समय दीनता से विष्णु ने बलि से ओं भात माँगी थी, उसके कारण वह निरन्तर दान करने वाले आपने समान नहीं हो सकता ॥७७४॥

भूमिभृतामुपरिस्थित उन्नतये सकलनीललोकस्य ।

दृष्ट सन्तापहरो मेघवदासारदानदक्षस्त्वम् ॥ ७७५ ॥

सम्पूर्ण ससार की उन्नति के लिए आप सत्र राजाग्रा के ऊपर स्थित हैं । मेघ की भाँति धारा रूप में दान की शृं करके आप ससार के सन्ताप दुःखों को दूर करते हैं ॥७७५॥

बहुभागो भद्रयुत कुसृतिपरो गोत्रभेदकरणपटु ।

गगानलप्रवाह पुण्यवशात्केवल तव समान ॥ ७७६ ॥

१. दण्डमारुचि में—दण्डाभस्य पादशासद्विद्वान्त पुत्रविहार —दण्डाभ १



बहुत मार्गों वाला, कल्याणकारी, पृथ्वी पर पैलने वाला, पर्वतों के तोड़ने वाला गंगाजल ही पुष्पशाली होने से आप के सम्मान है। आपके बहुत से मार्ग-व्यवहार रीति हैं, आपके पास भी भद्र जाति के हाथी हैं, आप भी पृथ्वी पर पैले हैं ( कुसति शठता, दुष्टों से शठता करते हैं ), कुलों के नष्ट करने में चतुर हैं ॥७७६॥

दुर्व्यवहारोत्पत्तिर्मौग्यप्रसरो विवेकिताप्रसहः ।

एकस्त्वं दोषज्ञः कृती कृतो येन कलिकालः ॥ ७७७ ॥

अकेले आप ही ऐसे दोषज्ञ-दोषों को जानने वाले एवं निवारण करने वाले परिदृष्ट हैं, जिनके कारण दुष्ट क्रियाओं का जनक, मूढ़ता को पैलाने वाला, अविद्वेकी कलिकाल-कलियुग भी सत्ययुग बन गया ॥७७७॥

सुगतोऽपि नाजियिमुजो, वृषध्वजोऽपि न विपादितायुक्तः ।

उत्तमशस्त्रोऽपि रिपो कथमसि सन्नासिको जातः ॥ ७७८ ॥

सुगत—शोभन मति वाला होने पर भी अति शूर होने के कारण युद्धों से मुक्त नहीं मोड़ते, धर्मप्रधान होने से विपाद अनुताप से युक्त नहीं, आप उत्तम नासिकायुक्त हैं। ( सुगत-बौद्ध दयाशील होने के कारण युद्ध से विमुक्त रहते हैं, वृषध्वज महादेव, विप को खाने वाले हैं, शठ के शस्त्र उठाने पर आप किस लिए तलवार को शेके हुए हैं—सन्मः प्रतिबद्धः असिः—विरोधालंकार ) ॥७७८॥

सन्मणिरनेकमोगो गुग्गुमारसहः स्थिरात्मतास्थानम् ।

नरदेव चित्रमेतद्यदशेषगुणैस्त्वमारिगणैः ॥ ७७९ ॥

हे नरदेव ! यह आश्चर्य है कि आप में शेषनाग के सब गुण उपस्थित हैं, शेषनाग में उत्तम मणि है, उसके हजारों पण हैं, पृथ्वी के मार को उठाये हुए हैं, अपने स्थान पर स्थिर है, आप के पास भी उत्तम भ्रेष्ठ मणि है, अनेक प्रकार का—ताना प्रकार का मोग-सुख प्राप्त है, पृथ्वी का आप पालन करते हैं, धैर्य-स्थिरता दृढ़ता के स्थान हैं, इस प्रकार से शेषनाग के सब गुण आप में हैं ॥७७९॥

प्रकृतिप्रार्थनेन कृता जघन्यवर्णस्य गौरवपत्तिः ।

जघनचपला यदार्था ल पिगलस्ते कथं तुल्यः ॥ ७८० ॥

जिसने स्वरूप से लघु ( हीन जाति ) बनाया, अन्तिम वर्ण ( द्राक्षणादि वर्णों में अन्तिम एवं अधर ) शूद्र को गौरव दिया (अन्तिम अधर को गुरु किया)

१. यथा सुश्रुत में—मद्वर्णा पण्डित्याणां प्रसूतानामनेकधा ।

कुत्राणां सदस्य बलं समाधिगच्छति ॥

वह पिंगल ( छद्दशास्त्र के कर्ता ) जघनचपला ( व्यभिचारिणी स्त्री, एवं जघन चपला नामक आर्या छन्द ) के बराबर कैसे हो सकते हैं<sup>१</sup> ॥७८०॥

वस्य न जातिर्नात्मा नार्थज्ञान न मानसे प्रशम ।

भवसि भवसाररत्न तेनाद्वयवादिना सदृश ॥ ७८१ ॥

भगवान् बुद्ध से पृथक् करने स्तुति करता है—आप किसके सजातीय बन्धु नहीं हैं, किसके मित्र नहीं हैं, आपसे किसको धन का लाभ नहीं होता, आप किसके मन में नहीं हैं, [ आप सबके सजातीय बन्धु हो, सबकी आप से धन मिलता है और सबके मन में रहते हों ] इससे आप ससार के उत्तम रत्न हो, इस कारण आप अद्वयवादी विज्ञानवादी बुद्ध के असमान हैं। आपके साथ उसकी उपमा नहीं दी जा सकती<sup>२</sup> ॥७८१॥

तत्रापि वृद्धियोगस्तस्मिन्नपि पुरुषगुणगणरयाति ।

परिभाषा तत्रापि व्याकरणान्तातिरिच्यसे तेन ॥ ७८२ ॥

व्याकरणशास्त्र में भी वृद्धि का योग रहता है, व्याकरणशास्त्र में पुरुषों के गुणों के गणों की प्रसिद्धि है, व्याकरण में परिभाषा नियम भी है, इस प्रकार आप व्याकरण से भी अधिक नहीं हैं [ आप में वृद्धि-उत्कर्ष है, आपमें पुरुष के शौर्यादि गुणों का समूह रहता है, आप में भी परिभाषा-नियम है, इसलिये व्याकरणशास्त्र से भिन्न नहीं है। व्याकरण में आदैच् को वृद्धि कहते हैं, व्याकरण में प्रथमादि पुरुष, गुण नामक संज्ञा, भ्वादि आदि गण रहते हैं, व्याकरण में परिभाषा नियम है, यथा 'इको गुणवृद्धी' यह परिभाषा व्याकरण

१ जघनचपला--आर्याछन्द का भेद है--देखिये ३३३ आर्या की टीका, इसका उद्देश्य--

स्रस्मैशसप्तगणा गपेता भवति नेह विषमे ज. ।

पष्ठो जघ्न न छन्दु वा प्रथमार्थे नियतमार्थाया ॥

२. अद्वयवादी--विज्ञानवादी बौद्ध के मत में सबके मिथ्या होने से जाति आदि कुछ नहीं है, आप भी सब हैं। बुद्ध के पक्ष में जाति, आत्मा, अर्थ ज्ञान-पदार्थों का ज्ञान, मन में चमत्कृत नहीं आर्याव शान्ति अर्थ है, बौद्धों के अनुसार न जाति है, न आत्मा है, क्षणिक पृथ मिथ्या होने से पदार्थों का ज्ञान भी नहीं, मनमें शान्ति है। उनके मत में बुद्ध धर्म और संघ ये तीन रत्न हैं, ( बुद्ध शरण गच्छामि, धर्म शरण गच्छामि, संघ शरण गच्छामि ), रत्न शब्द दोनों में समानार्थक है।

में लागू होती है—बिस प्रकार से ये बातें व्याकरण में उसी प्रकार आप में भी हैं—इसलिये आप व्याकरण से प्रयत्न नहीं हैं ] ॥७८२॥

निर्व्याजस्तवनोऽपि त्यक्ताक्षेपो निरुपमानोऽपि ।

सद्रूपकजातिगुणैर्नार्थं त्वं गामलकुरूपे ॥ ७८३ ॥

हे स्वामी आप ! कष्ट रहित स्तुति द्वारा, मिथ्या निन्ना का त्याग करने से, अनुपमेय होने से, उत्तम रूप, जन्म जन्त शीघ्राणि उत्तम गुणा न कारण प्रथ्वी को एवं वाणी को शोधित करते हैं ( गान् का पृथ्वी और वाणी दोनों अर्थ हैं—वाणी कष्टरहित स्तुति करती है, मिथ्या निन्ना नहीं करती, अनुपमेय है, उत्तम रूप, माधुर्य प्रसाद आदि जन्म जन्त गुणों वाली है ) ॥७८३॥

अन्यैव वर्णनैषा दूराल्लोकोचराऽस्तित्ता काऽपि ।

वामो यथैव शत्रुषु मित्रेषु तथैव वामोऽसि ॥ ७८४ ॥

यह आगे वही जाने वाली स्तुति अतिशय विलक्षण ( सब लोकों से मिल कर ) है, आप जिस प्रकार शत्रुओं से निस्सीत हैं, उसी प्रकार मित्रों में भी वाम-सुन्दर हैं ( शत्रु और मित्र दोनों में वाम है—यही मिलकरता है ) ॥७८४॥

पूजयसि येन गुरुजनमभिनन्दसि येन साधुचरितानि ।

मोक्षयसि येन विप्रान् नृपनन्दन तेन वृषभस्त्वम् ॥ ७८५ ॥

क्योंकि आप गुरुजनों की (माता पिता चैव माइ की ) पूजा करते हैं, साधुओं के—सब जन गुरुओं के आचरणों की प्रशंसा करते हैं, ब्राह्मणों को मुक्त करते हैं, हे नृपनन्दन ! इसलिये आप वृषभ—धर्म एवं भद्र हैं । ( वृषभ का अर्थ धर्म और भद्र दोनों हैं ) ॥७८५॥

ईदृगमिदं यच्छृत्वा धा क्रियते ते रक्षसाऽपि न समस्य ।

न स बलमकरोद्योषिति भवास्तु भुक्ते प्रसह्य रिपुलक्ष्मीम् ॥ ७८६ ॥

गदस राज शवण के पराक्रम की जो स्तुति मनुष्य करते हैं, वह भी आपने पराक्रम के समान नहीं है, अपितु उससे कम ही है, क्योंकि—रावण ने परछी सीता के लिये पराक्रम नही किया था, आप तो शत्रुओं की लक्ष्मी—उनका ऐश्वर्य वनपूर्वक उपभोग करते हैं ॥७८६॥

रमणीय चाटुवचनस्तवनं यल्लामहेतुरस्माकम् ।

तत्पतति ते स्वरूपे, यामि, नमः सन्तु सौरयानि ॥ ७८७ ॥

१ व्याजस्तुति, आक्षेपलक्षार, उपमालक्षार, ये लक्षार रूप प्रसाद समया माधुर्य, सुकुमारता, अक्षण्यावत, उदारत्व, आज्ञा, कान्ति और समाधि ये इस गुण आपकी वाणी में जन्मतिष्ठ है ।

हे रमणीय ! श्लाघा परक वचनों से स्तुति करने में हमारा जो घनादि प्राप्त करना लाभ है, वह आप में मिया नही, अपितु आप वास्तव में उस स्तुति के योग्य ही हैं। हम जाते हैं, नमस्कार, आप सब प्रकार से सुखी हों ॥७८७॥

श्रुत्योत्तरमधदत्त वन्दिनमभिनन्द्य साधुवादेन ।

आस्त्व किमाकुलता ते, यास्यसि तुष्टो मया प्रहित ॥ ७८८ ॥

स्तुति का मुनने के पीछे प्रशंसा करने वाले वदी का साधुवाद देकर अभि नन्दन किया, और कहा बैठो, क्या जल्दी है, मुझसे दिये पारितोषिक आदि से प्रसन्न होकर, मेरे कहने पर जाओगे ॥७८८॥

पुनरपि पठ सद्युगल गीतिकार्योयत्स्वया पुरा पठितम् ।

कक्षान्तरितेन मम स्थितस्य कुलपुत्रिकारामे ॥ ७८९ ॥

कुलपुत्रिका ( कुलकन्यका के लिये बनाया घर का उपवन, पीछे इसी नाम से प्रसिद्ध ) उपवन में मेरे रहने पर खोदी में स्थित होकर पहले मुझे जो दो गीतिकार्यें पढ़ी थीं, उनको एक बार फिर से पढ़ो ॥७८९॥

त्ययि यदति साधुवार्द यागियमुन्मुद्रिता बुधसमाजे ।

अभिधायेति पपाठ त्रिस्थानविशुद्धनादेन ॥ ७९० ॥

बन्दी ने कहा—इस विद्वद्गोष्ठी में आपके दिये साधुवाद से मेरी यह वाणी फिर से विकसित हुई ( आपसे मुझे नया प्रोत्साहन मिला )। पढ़ो कहने से मुझे नई प्रोत्साहन मिली। उर-कण्ठ शिर इन तीन स्थानों से शुद्ध स्वर से बन्दी ने गीति पढ़ी ॥७९०॥

एका खण्डनकुपिता, विरासाऽन्या प्रणयमगीलक्ष्यात् ।

काचिन्निकटतरासनमप्राप्य विभर्ति निर्वेदम् ॥ ७९१ ॥

अन्या कलहान्तरिता, नयपरिणयसज्जया परा सहिता ।

रमणीगणमध्यगत स्मरातुर किं करोतु बहुजानि ॥ ७९२ ॥

( सदानितकम् )

[ नायक चतुर (दक्षिण) है वह अनेक स्त्रियों में समान प्रीति रखता है, उसकी] एक अन्त पुर रमणी निराकरण के कारण कुपित है। दूसरी सुदरी प्रणय की मींग

१ खण्डिता नायिका—पारवमेति प्रियो यस्या अन्यभोग विहित ।

सा खण्डितेति कथिता चीरीरीर्षाकपायिता ॥

सा ६ २।७२

(ख) निद्राकपायमुकुलीकृतताम्रनेत्र्यो  
नारीनखमणविशेषविचित्रिणा ॥

यस्या कुतोऽपि गृहमेति पति प्रभाते

सा खण्डितेति कथिता कविभिः पुराणैः ॥ रसमञ्जरी.

की प्रसीद्धि से हृष उत्सुकता आदि रहित है, प्रणय कुपित है । तीसरी स्त्री पास में आसन न मिलने से दुःखी है । चौथी स्त्री प्रेमी से झगडा नये बैठी है । अन्य स्त्री नया निगाह होने से शर्मायी हुई है । इस प्रकार बहुत सी नियों में बैठा, बहुत सी पत्नियों वाला कामातुर मनुष्य; क्या करूँ इस चिन्ता में पड़ा है ॥७६१-७६२॥

अभ्युपपत्त्यवबोधकमस्तकचलनं विधाय विकृतभ्रूः ।

नृत्याचार्यमवादीदेतस्मिन्विन्दु संगीतम् ॥ ७६३ ॥

स्वीकृति सूचक रूप में सिर को हिलाकर, भ्रुओं को टेढ़ा करके नृत्याचार्य से पूछा—कि बहो; संगीत कैसा रहा ॥७६३॥

स उवाच ततो यणिजो नेतारो यत्र, यत्र पात्राणि ।

शाठ्यायतनं दास्यस्तत्र कुतः सौष्ठवं नाट्ये ॥ ७६४ ॥

नृत्याचार्य ने कहा—जब नाटक में कय-प्रिकय करने वाले; सीदा करनेवाले बनिये नेता बने; ठगाईं भूचंता का स्थान केश्यायें जिसमें पात्र हों, ऐसे नाटक में सुन्दरता वहाँ से आ सकती है ॥७६४॥

काचिद्वलिना क्रान्ता, काचिन्न जहाति कामिनं रुचिरम् ।

अन्या पानकगोष्ठ्यां नयति दिनं प्रीतयैः सार्धम् ॥ ७६५ ॥

नोत्सृजति सततमेका पुरुषागमनाशया गृहद्वारम् ।

श्लापालः कथयति लब्धोक्तोचो रजस्वलामपराम् ॥ ७६६ ॥

कोई तो घेरया बलवान्—अधिक प्रभुता वाले पुरुष से आक्रान्त है; उसके अधीन है । कोई घेरया मुन्दर कामुक को छोड़ना नहीं चाहती; कोई दोस्तों के साथ मद्यपान गौणी में बैठी समय व्यतीत करती है । एक जो है, वह कामुक के आने की आशा में घर की देखरी छोड़ना नहीं चाहती । घेरयाध्यक्ष रिश्वत

१. कण्ठान्तरिता—चाटुकारमपि प्राणनाथं रोषादपास्य वा ।

पञ्चात्तापमवाप्नोति कण्ठान्तरिता गुप्ता ॥ सा ७६० ३।८१.

(ख) प्राणेश्वरं प्रणयकोमलमंजुवाम्भियां चाटुकारमचिराद्वधीयं पाति ।

संतप्यते मदनवद्विशिखामहर्षिर्वाय्वाकुला कण्ठान्तरिता दि सा स्यात् ५

(ग) इसी की भाँति प्रसिद्ध रसोक्त—

स्नातां तिष्ठति कुन्तलेस्वामुता, वारोज्ज्वराजस्वतुः

सूते रात्रिरियं जिता कमलया, देवी प्रसाद्याऽथ च ।

इत्यन्त पुरसुन्दरीः प्रति मया विज्ञाय विज्ञापिते,

देवेनाप्रतिपत्तिमूढमनसा द्विधा स्थितं नाटिकाः ॥

लेकर किसी को रखस्वला बता देता है ( रखस्वला के लिये नृत्य निषिद्ध है )<sup>१</sup> ॥७६५-७६६॥

रगगताऽपि क्षुद्रा शृणोति यदि परिचित गृहायातम् ।

उद्दिश्य चापि कार्यं व्रजति ततः प्रकृतमुत्सृज्य ॥ ७६७ ॥

रगशाला में आई हुई वरया यदि परिचित के घर में आने की राह सुनती है, तो कोई उद्धाना बनाकर उपस्थित कार्य को छोड़कर घर की ओर भाग पड़ती है ॥७६७॥

आ तारण्योद्भेदात्कांते हृष्यिया न्यस्ता ।

सामानिकमध्यस्था कथमन्या समुपयाति परभागम् ॥ ७६८ ॥

जो वरया जवानी आने के समय से ही मुन्दर युवक में अनुरागवती हो गई है, यह सामाजिक जनों के बीच में किस प्रकार से अतिशय शोभनीय प्रशसनीय हो सकती है ( उसका मन तो मुन्दर युवक को ढूँढने में ही लगा रहेगा, काम में मनोयोग नही करती ॥७६८॥

चेतोन्तरा न सत्त्व, सत्त्वे सति चारुता प्रयोगस्य ।

न भवति सा वेश्याना मद्यामिपपुरुषनिहितहृदयानाम् ॥ ७६९ ॥

असावधानता से मन एकाग्र नहीं होता मन रु एकाग्र होने पर ही अभिनय में रमणीयता आती है । मद्य मास एव पुरुष में आसक्त मन वाली वेश्याओं से यह सम्भन नहीं ॥७६९॥

वयमपि दयनिनेतनमनगहर्षे गते त्रिदिवलोकम् ।

आश्रितवन्तो गत्वा तीर्थस्थानानुरोधेन ॥ ८०० ॥

अनग हर्ष ( आहण ) के स्वर्ग चले जाने पर हम भा तीर्थ स्थान के कारण यहाँ वाराणसी में आकर इस देवालय में ठहर गये हैं<sup>२</sup> ॥८००॥

१ क) शृणोति श्रुति यात आत्मशरीर हात श्रुति पण्यवोपि—  
ता पाशयति इति श्रुतिपाश, वेश्याधिपति ।

(ख) अहंशुभा जनदा, शिवश्रुति इत्येतत् ।

प्रदा केशश्रुति वा, अत्यन्त अच्छी युगे ॥ हरिवंश

अहमस्ममति प्रोक्त श्रुति विक्रय उच्यते ।

शिव वेद इति प्रोक्त केशो मग इतीयते ॥

२ श्रीरूप के लिये अनङ्गद्वय प्रसिद्ध है—रत्नावली के इस श्लोक के कारण आहण वद्वानों में अनङ्गद्वय नाम से प्रसिद्ध है—

अनङ्गोऽयमनङ्गस्वमाय त्रिदिव्याय ध्रुवम् ।

यदनेन न ह्यप्राप्त पाण्डिस्पर्शोऽस्तवत्तव ॥ रत्नावली १।२२

इह तु कदाचित् किंचिद्वृत्तिनिरोधाभिशक्त्या निरुत्साहा ।

रत्नावल्यामेता विदधति करपादविक्षेपम् ॥ ८०१ ॥

यहाँ वाराणसी में जीविका के लिये ही, बिना उत्साह के रत्नावली नाटिका का अभिनय करते हुए हाथ पैरों का चालन करते हैं ॥८०१॥

घत्सेशभूमिकाऽप्या इयमनुकुर्वते नरेश्वरवयस्यम् ।

वासवदत्ताचरितप्रयोगमेवा विदधत्यति ॥ ८०२ ॥

यह नटी घत्सेश्वर उदयन का अभिनय करती है, यह नटी राजा के मर्म सचिव वसन्तक का यह नटी वासवदत्ता के चरित्र का अभिनय करने में वासवदत्ता को भी पीछे छोड़ती है ॥८०२॥

उद्यमसाहित्यवशाच्छोभातिशयेन मदनुरन्धेन ।

अनया प्रसिद्धिरामा सिंहलराजात्मजानुकृती ॥ ८०३ ॥

प्रयाग में परिश्रम एवं सहभार—तत्त्वित्ता के कारण एवं शोभा का अधिकता से तथा मरे आमह से इसने सिंहल राजकुमार रत्नावली का अनुकरण करने में प्रसिद्धि पाई है ॥८०३॥

विविधस्थानकरचनापरिक्रमं गात्रबलनलालित्यम् ।

काकुविभक्तार्थगिरो रसपुष्टिं वासनारथैर्यम् ॥ ८०४ ॥

सात्त्विकभावोन्मीलनमभिनयमनुरूपवर्तनाभरणम् ।

मिश्रामिश्रे नाट्ये लयच्युतिं वर्णयन्ति मज्जर्या ॥ ८०५ ॥

अनेक नाना प्रकार के स्थानों की रचना म किये पैरों व विक्षेप भ्रमण में, अर्गा के माउने में सौन्दर्य को, नाना प्रकार की कण्ठध्वनि से कहे जाने वाली भिन्न भिन्न अर्थ सूचक वाणी की अभिनय आदि द्वारा गृहाद्यदि रस का पोषण करने में न एव सामाजिक जनो की भावना को दृढ़ करने में, स्तम्भ-स्वेद आदि सात्विक भावों का विकास करने में, अभिनय के अनुरूप भूमिका के योग्य वर्तन अग विक्षेप एवं आमरण उपचार धारण करने में, लयच्युति-तालद्रुति में, मिश्र-मेघ नृत्यादि अमिश्र शुद्ध पटनोय नाटक में मज्जरी की प्रशंसा करते हैं ॥८०४-८०५॥

१. काकु—मिश्रकण्ठध्वनिर्घोरे काकुलिस्थमिधोयत, काकु वक्षोक्ति, यथा—

इति, स्वया वृत्तमहो निखिल मनुक,

न त्वादत्तो परहितप्रवर्णास्तित्तोक्ते ।

अन्तामि दन्त मृदुजाहि मत्ता मदर्श,

सिग्नन्ति कुत्र सुहृन्तानि विना प्रमेण ॥

एषाऽभिधानकीर्तनगुणितस्वशरीरकुसुमशररोषा ।  
 सहस्रोद्भिन्नमनोभवमायदशा सिन्दुवारविवरेण ॥ ८०६ ॥  
 पर्यन्ती चत्तेश्वरमनुकार्यानुकरणभेदपरिमोषम् ।  
 साधुध्यनिमुत्तराननसामाजिकजनमनसु त्रिदधाति ॥ ८०७ ॥

(युगलकम्)

यह मजरी उदयन का नाम मुनते ही अपने शरीर में कामदेव के कोप के बढ़ने से सहसा प्रकृति, काम जय भावदशा-चित्तवृत्ति विरोध के कारण सिन्दुवार वृत्ति के पत्ता में से या उसकी ओर में से चत्तेश्वर-उदयन को देखती हुई, अनुकार्य-रत्नावली का अनुकरण पूर्ण रूप में कर, सामाजिक जना के मुलों से साधुवाद पाती है ॥ ८०६-८०७ ॥

चत्सपतिमालिन्ती कामाग्रस्था क्रमेण भजमाना ।

प्रेषयुलकस्वेदैराग्रहति त्रिसष्टुल हस्तम् ॥ ८०८ ॥

काम की प्रत्येक दशा का क्रमशः अनुभव करती हुई, उदयन का चित्र बनाने में-कम्पन, रोमाच, स्वेद हाने के कारण इसका हाथ अस्थिर है ॥ ८०८ ॥

(ख) सात्त्विक भाव—

रत्नम स्वेदाग्रहोमाञ्च स्वरभगोऽथ ययु ।

वैषम्यमभ्युपगच्छति हस्तौ सात्त्विका स्मृता ॥

(ग) छय—ताला-तराजवर्ती य कालाऽसौ छय ईरित ॥

(घ) रस तानमकार के हैं—

१ सात्त्विक रसानुरूपैराद्यापै रत्नाकैशक्यै पदैस्तथा ।

नानालकारस्युक्तेर्वाचिको रस ज्ञप्यते ॥

२-नेपथ्य—कर्मरूपवयोजातिदेशकालानुवर्तिनि ।

माहवभूषणवच्छाद्यै नेपथ्यरस उच्यते ॥

३-स्वाभाविक-रूप-यौवन छात्रप्रस्थैर्धर्मैर्वादिभिर्गुणैः ।

रस स्वाभाविको ज्ञेयः स च माद्रे प्रशस्यते ॥

(ङ) मिश्र गेय नृत्यादि सहित नाटक—यथा चिकित्सोर्वशी,

अभिष-गेय रहित पठनीय मात्र—यथा माहतीमाधव ।

१ रत्नावली नाटिका में—तद्नेन सिन्दुवारवितपेन अपवारितशरीरा भूत्व प्रचे-

२ यद्यपि मे अतिसाध्वसेन चेषते अथ अतिमात्र अग्रदूत, तथापि तस्य जनस्य अन्यो दर्शनेषायो नास्तीति यथा तथा आखिर्य एव प्रेक्षिष्ये ॥



सदृशोऽप्यनुभावगणे कर्णरसं विप्रलम्भतो भिन्नम् ।

दर्शयति निरभिकांचित्तसौख्यं ननु गोचरापन्ना ॥ ८०६ ॥

अभिनय सूक्ष्म प्रदर्शन के कौशल से एक समान दिखाई पड़ने वाले, कर्ण रस और विप्रलम्भ शृंगार परस्पर भिन्न हैं, इनमें कर्ण रस संयोग मुद्र की आशा रहित होता है, (कर्ण रस में संयोग मुद्र की आशा नहीं रहती, विप्रलम्भ शृंगार में संयोग मुद्र की आशा बनी रहती है, यह दोनों में भेद है) । निःस्वात्त आदि अनुभाव दोनों में समान हैं ॥ ८०६ ॥

अस्मिन्दर्शयतीत्यं मंजरिकां साभिलाषमवलोक्य ।

परपरी राजपुत्रः किमसाविति वैत्रदण्डेन ॥ ८१० ॥

नृत्याचार्य द्वारा इस प्रकार मंजरी को दिखाने पर समरभट ने चाव के साथ मंजरी को देखकर; वैत्रदण्ड से छूते हुए पूछा कि “क्या यही है” ॥ ८१० ॥

बुद्ध्याथ तस्य भावं प्रसारयन् युवतिसंकथाकेलिम् ।

न्यक्कुर्वन्धारयधूः सचिवः प्रसारांस बन्धकीगमनम् ॥ ८११ ॥

राजपुत्र के मन के भाव को जानकर, मंत्री ने अन्य युवती नायिकाओं की कथा का प्रारम्भ करके; धारयधू की निन्दा करते हुए, बन्धकीगमन परदार गमन की प्रशंसा की ॥ ८११ ॥

दाररतिः संततये व्याधिप्रशमाय चैदिकारलेपः ।

तत्पल्लु सुरतं सुरतं कुञ्जप्राप्यं यदन्यनारीपु ॥ ८१२ ॥

सन्तानोत्पत्ति के लिये अपनी पत्नी के साथ सम्भोग किया जाता है, पित्त-

1. जबभूति ने कर्णरस और विप्रलम्भ को एक ही कहा है—एक रस; कर्ण एवं निमित्तभेदात्—उत्तररामचरित ३।१२१, जिस प्रकार आवर्त और बुद्धि में बाहर के आकार में भेद है, परन्तु दोनों में एक ही अक्ष के अंग हैं; उसी प्रकार कर्ण और विप्रलम्भ में आकार का भेद है, वास्तव में अन्तः भाव एक है । विप्रलम्भ चार प्रकार का है अभिलाषा, विरह, ईर्ष्या और शापजन्य । कुछ शाप के स्थान पर कलह जन्य मानते हैं । दूसरे भाचार्य, पूर्वानुराग मान, प्रवास, कर्णालम्क चार प्रकार का विप्रलम्भ मानते हैं ।
2. बन्धकी का धर्म—कुछटा, मुक्ता, पुरचली, स्वरिणी है, यह छै प्रकार का है—विदग्धा, मुदिता, क्षिपाञ्जुशयावस्थ क्षतिता । गुता च कुक्ष्य चेति षट्प्रकारोदिता युवैः ॥

ज्वर आदि रोग शान्ति के लिये दासी का आलिंगन किया जाता है ।<sup>१</sup> परल्लियों में कठिनाई में वो सम्भोग प्राप्त होता है, वही वास्तव में सु-रत सुन्दर रति है<sup>२</sup> ॥८१२॥

स्वव्यापारैकमतेः परचिन्ता नास्ति मे कदाचिदपि ।

पर्यंत्यास्त्वामीदृशमद्य तु मे मानसं व्यथितम् ॥ ८१३ ॥

दूतिका का नायक को परनारी के लिये प्रलोभित करना अपने ही काम में लगे रहने से मुझे दूसरों के विषय में चिन्ता या सोच विचारने का जरा भी समय नहीं मिलता । आज तुमको ऐसा कमजोर देखकर ही मेरे मनको दुःख हो गया ॥८१३॥

यदि वेद्य तस्य वसतिं सामर्थ्यं यदि भवेत्ततोऽप्यधिकम् ।

तद् गत्वा दग्धविधिं लगुहैः संचूर्णयाम्यधुना ॥ ८१४ ॥

यदि मैं उस ब्रह्मा के निवास स्थान को जान सकूँ और ब्रह्मा से अधिक शक्ति मुझमें आ जाये, तो अग्नी जाकर उएहों से उस मुँह जले का तिर फोड़ दूँ ॥८१४॥

अपुरिदमनुपमभीष्टम् यदि विहितं तेन ते धात्रा ।

अनुरूपरमणधिरहात् किमिति कृतं बन्धं जन्मफलम् ॥ ८१५ ॥

उस ब्रह्मा ने यदि ऐसा सुन्दर यह शरीर बनाया था, तो अनुकूल रमण-विलास लालसा के अभाव में जन्म-फल को निष्फल क्यों किया ( सुन्दर शरीर के अनुरूप विलास भी देना चाहिये था<sup>३</sup> ) ॥८१५॥

शैशवमस्तु जरा वा व्याधिर्वा क्षेत्रियप्रणारी वा ।

स्थाकारं सारुण्यं न तु कुपतिरुद्धर्थाप्रस्तम् ॥ ८१६ ॥

१. अपर्ययं धर्मकार्णवे शुभ्रपारतिरत्नमा ।

वाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृपुत्रात्मात्मनश्च ह ॥ मनु—१.२८

(ख) वेपं त्रिधाया मुखमेव च वलं क्षोक्षिभ्यरात्रेन सदानुभूतम् ।

(ग) कन्या कौतुकमात्रेण, विधवा संमर्दमात्रार्थिनां,

वेश्या वित्तलवेच्छया, स्वगृहिणी गत्यन्तरासंभवात् ।

वाञ्छन्तीत्यमनेककारणवशात् पुंभिः क्षिप्तः संयमं,

हृदस्नेहनिबन्धता परवधूः पुण्यैः परैः प्राप्यते ॥

२. स्थावण्यद्विद्युव्ययो न गच्छतः क्लेशो महान् स्वीकृतः

स्वच्छन्दस्य सुखं जनस्य वसतश्चिन्ताञ्जरो निर्मितः ।

एषाऽपि स्वयमेव शुष्यरमण्यभावाद् वराकी हवा

कोऽयंश्चेतसि वेपसा विनिहितस्तन्वीमिर्मा तन्वना ॥

नायिका के प्रति दूती का वचन—स्त्री को यदि योग्य-श्रनुकूल पति न मिले तो इससे यह कहीं अधिक श्रद्धा है कि उसका वचन रहे, या बुढ़ाया आजाये, अथवा उसकी किसी रोग या क्षेत्रिय रोग (राज्यक्ष्मा आदि श्रमाव्य रोग) से मृत्यु हो जाये, (सारे जीवन मर कुपति रूप पीड़ा से दुःखी होकर जीना सत्रसे अधिक बुरा है) ॥ ८१६ ॥

केलि प्रदहति मञ्जा शृंगारोऽस्थीनि चाटव प्राणान् ।

न करोति मनस्तुष्टि दानमभ्यव्यस्य गृहभर्तु ॥ ८१७ ॥

जितमें मन नहीं लगे ऐसे हीन पति की केलि शृंगारचेष्टा हास्य आदि मञ्जा को जलाती है, शृंगार अस्थियों को, चाटुवाद-पुशामद प्राणों को जला देता है, उसका दिया दान भा मन को प्रसन्न नहीं करता ॥ ८१७ ॥

कुत आगताऽसि कस्मिन् वेत्तामियती स्थिता, किमर्थमिति ।

पृच्छन्नस्वस्थमना जनयति रोही शिरशूलम् ॥ ८१८ ॥

पत्नी के प्रति श्रमा—कहाँ से आई है, इतनी देर कहाँ लगाई, क्यों देर की, इस प्रकार शक्ति मनवाला श्रामी बुद्धता हुआ शिर शूल (सिरदर्द) को उत्पन्न करता है ॥ ८१८ ॥

यदि भवति दैवयोगाच्चतुर्निपय समुज्ज्वलस्तदय ॥

तत्रात्मानं क्षपयति जाया च रटन् गृहस्वामी ॥ ८१९ ॥

यदि भाग्यवश कोई सुन्दर उज्ज्वल शरीर वाला युवा मनुष्य दीप्त जाता है, तो घर का स्वामी अपनी पत्नी को कोसता हुआ अपने माँके को पीटने लगता है [ प्रतिदिन पत्नी से भगडा करता है ] ॥ ८१९ ॥

सचिवादे परलोके जनापवादे च जगति बहुवादे ।

दैवार्थिने प्रणये न निदग्धा हारयन्ति तारुण्यम् ॥ ८२० ॥

परलोक है या नहीं, इसने सन्दिग्ध होने से, सप्ताह में अनेक प्रकार की लोफ निन्दा होने से, प्रणय—प्रेम के दैव के अवीन होने से, चतुर स्त्रियों अपने जीवन को व्यर्थ नहीं खोतीं, वे इन बातों की चिन्ता नहीं करती ॥ ८२० ॥

दुर्मर्तृपराम्फलनमलिनीनियमाणशोगमनुविबसम् ।

तुगमपि पतितकल्प स्तनशालिनि तत्पयोधरद्वन्द्वम् ॥ ८२१ ॥

प्रतिदिन दुःख पति द्वारा मार पटने से—भूमि पर खींची जाने के कारण, तेरा सारा सौन्दर्य नष्ट हो गया है । हे सुन्दर स्तनोंवाली ! तेरे ये दोना उन्नत-पीनस्तन भी सूख गये ॥ ८२१ ॥

१० उज्ज्वलचतुर्पं पुरुष कामपते स्त्री नरोऽपि तं दृष्ट्वा तिरिदस्य १३।१२.

२ गुणो दूषयता याति दूषण गुणतो कश्चित् ।

तथाहि नम्रता दोष स्तनयो स्तब्धता गुण ॥

पर्यंक स्वास्तरण पतिरनुकूलो मनोहर सदनम् ।

तुलयति न हि लक्षारो त्वरितक्षणाचौर्यसुरतस्य ॥ ८२२ ॥

सुन्दर बिछा पलंग, अनुकूल पति, सुन्दर मनोहर घर भी जल्दी में सम्पादित  
चौर्यरत के लाखों भाग की भी समानता नहीं कर सकता<sup>१</sup> ॥ ८२२ ॥

सहसा सकटवर्त्मन्यवितर्कितसमुद्रागतेनापि ।

अभिलषितेनोद्धृष्टकमनल्पशुभकर्मणा लभ्यम् ॥ ८२३ ॥

सग रास्ते में सहसा बिना किसी पूर्व सूचना के अचानक सामने आ जानेपर  
इच्छित उद्धृष्टक आलिंगन मिलना बहुत बड़े शुभ कामों का ही फल होता है ।  
[ उद्धृष्टक-उत्सव या देवयात्रा में सहसा थोड़ी देर के लिये नायक और  
नायिका के अंगों का परस्पर रगड़ना-उद्धृष्टक आलिंगन है ]<sup>२</sup> ॥ ८२३ ॥

प्रीति मिल निरतिशया स्वर्ग परलोकचिन्तनैर्गदित ।

तस्यास्तु नन्मलाभो हृदयेऽस्ति पुरोपसयोगात् ॥ ८२४ ॥

परलोक का विचार करने वाला ने निरतिशय [ जिसस बढ़कर कुछ भी  
अधिक नहीं ] प्रीति को स्वर्ग कहा है । यह निरतिशया प्रीति [ स्वर्ग की प्राप्ति ]  
मन चाहे पुरुष के साथ मिलने से ही मिलती है ॥ ८२४ ॥

अतदस्थस्वादुफलमहणव्यवसायनिरचयो येषाम् ।

ते शोकक्लेशरुचा केवलमुपयन्ति पात्रता मन्दा ॥ ८२५ ॥

आस्थिर दुःखाद्य मीठे फल की प्राप्ति के लिये जिन्होंने दृढ़ संकल्प कर  
लिया है, ऐसे मूर्ख व्याप्त केवल शोक और झगड़ा को ही प्राप्त करते हैं, ये इसी  
के योग्य हैं ॥ ८२५ ॥

किं प्रतिकूला महगतिरत परिणतमात्मदुश्चरितम् ।

स्यानुष्ठानव्यसन किं वा तस्यामयोनिहतकस्य ॥ ८२६ ॥

नायिका की विरहावस्था का वर्णन करके दूता नायक के मन में सभोग की  
उत्पत्ति को उपसन्न करती है—क्या यह महगति की प्रतिकूलता है, जो आप के साथ  
उसका अभी तक समागम नहीं हुआ, अथवा उसने अपने किये बुरे कर्मों का

१ अपप्यभोगेषु यथाऽऽनुराणा स्पृहा यथाऽर्ध्वतदुर्गतानाम् ।

परोपतापेषु यथा खजानां क्षीणां तथा चौर्यरतास्तवेषु ॥

२ उत्सवे देवयात्रायां महातिमिरसंकुले ।

विजने स्थानके वाऽपि गच्छतोऽथ परस्परम् ॥

अत्राप्यपण नातिचिरकाळ तु यद् भवेत् ।

तदुद्धृष्टकमि पाहुवास्त्यापनमहासुनि ॥ रतिरत्नप्रदीपिका १४।०४ ०२.

यह फल है, या दुष्ट ब्रह्मा का किया हुआ कार्य है जो अभी तक आपके साथ उसका मेल नहीं हुआ ॥ ८२६ ॥

येन तपस्वी स युवा स्पर्शति समीरं त्वदंगसंस्पृष्टम् ।

त्वत्पादाकान्तभुवे स्पृहयति, ककुर्भं त्वदाश्रितां नमति ॥ ८२७ ॥

इसी कारण आप के अंगों से स्पर्श की हुई वायु का वह विचारी स्पर्श करना चाहती है,<sup>१</sup> जिस भूमि पर आप का पैर पड़ा होता है, उस भूमि पर वह भी चलना चाहती है या उसको देखना चाहती है। जिस दिशा में कार्यवश हम जाते हो, उस दिशा में वह नमस्कार करती है ॥ ८२७ ॥

ध्यायति च त्वद्रूपं, त्वन्नामकवर्णमालिकां जपति ।

एकस्मीकृतचेतास्त्वदंगतः सौख्यसिद्धिमभिकाङ्क्षन् ॥ ८२८ ॥

(अन्तर्युगलकम्)

वह आप ने ही रूप का ध्यान करती है, आप के ही नाम के अक्षरों की माला जपती है। आप के साथ में सुरतानन्द सिद्धि की खगना करती हुई वह आप के अंगों के साथ में एकात्मभाव स्थापित करती है ॥ ८२८ ॥

उत्सृज्य सकलकार्यं तिर्यग्भीषं विलोकयन् भवतीम् ।

कुर्वते गृहाभरण्यां यातायातैः शतावर्ताम् ॥ ८२९ ॥

सारे कार्यों को छोड़कर गघात (लिटकी) आदि में बैठकर, ग्रीवा को थोड़ा टेढ़ा करके, शिमत नेत्रों से आप को देखती रहती है। आपके घर के सामने के गली में हजारों बार घाना जाना करती है—घर के सामने चक्कर काटती है ॥ ८२९ ॥

दृष्टोऽसि तया सुचिरं रोहाभ्याशे परिभ्रमन् स्पृहया ।

सन्देश एव दत्तः शश्वत्तमेतत्तया ' दत्तम् ॥ ८३० ॥

घर के समीप में घूमते हुए आपको उसने बड़ी चाह के साथ देर तक देखा है। इसलिये उसने यह सन्देश भेजा है और यह उपहार [ पान माला आदि ] भी साथ में दिया है ॥ ८३० ॥

शुष्यति साऽलमयाना भवत्कृते वेश्मनिर्गमावसरम् ।

इति चतुरशठस्त्रीमिविलुप्यते त्वदपदेशेन ॥ ८३१ ॥

(अन्तर्युगलकम्)

घर से निकलने का अवसर न मिलने के कारण वह आपने लिये सूखती जाती है। इस प्रकार के श्रुतेसे यहाँ से द्वारा चतुर धूर्तश्रियां परदार्यों का चारित्र्य नष्ट किया करती हैं ॥ ८३१ ॥

१. मेघदूत में आलिङ्ग्यन्ते पुण्यवति या ते तुषावादिवाता,

पूर्वं स्पृष्ट यदि किञ्च भवेदंगमेभिस्तथेति ॥ मेघदूत १०३-

किं वा कथितैरधिकैरस्थानाविष्टचेतसस्तस्या ।

अनुतिष्ठ यथायुक्तं त्वत्तो नाशश्च जीवरक्षा च ॥ ८३२ ॥

(दूतीयचन, महाकुलकम्)

अधिक कहने से क्या लाभ, आप जैसे काठन हृदय वाले व्यक्ति में दिल लगाने वाली उसके लिये जो उचित समझें आप करें, आप से ही उसकी प्राणरक्षा है और आप से ही उसकी मृत्यु है—उसका जीवन-मरण आप के ही हाथ में है ॥ ८३२ ॥

कुलपतनं जनगर्हा नरकगतिं प्राणितयसन्देहम् ।

अगोकरोति तत्क्षणमबला परपुरुषमभियान्ति ॥ ८३३ ॥

पर पुरुष ने पास जाती हुई श्री कुलनिन्ना, लाकापराध, नरकप्राप्ति, जीवन का भय, यह सब उस क्षण में स्वीकार कर लती है ॥ ८३३ ॥

स तु लिखति दासपत्रं त्यजति कुटुम्बं दत्ताति सद्यत्वम् ।

यावन्न भवति पुरतः परयुयति प्रोज्झितावरणा ॥ ८३४ ॥

आवरण रहित (निर्वन्ना), पराई युवती श्री क सामने आने पर मनुष्य दूसरे की दासता भी स्वीकार करने के लिये, अपने सगे सम्बन्धियों का भी छोड़ने के लिये और अपना सर्वस्व लुटाने के लिये तैयार हो जाता है ।<sup>१</sup>  
[ परस्त्री-समागम के लिये मनुष्य सब काम करने के लिये तैयार हो जाता है ] ॥ ८३४ ॥

दृष्टं यद् द्रष्टव्यं व्यपयात कौतुकं विदितमन्तः ।

इति याति मनसि कृत्वा विहितविधेयस्तत्तत्पूर्णम् ॥ ८३५ ॥

जिते देखने की चाह थी, वह देख लिया, मन में उमुक्तता भी समाप्त हो गई, अदर का भी अनुभव कर लिया, मन में यह सांच कर, परकीया रति गुल से कृतकृत्य होकर, कामुक बल्दी ही उस स्थान से हट जाता है ॥ ८३५ ॥

साऽपि च्छिन्नाच्छोदनगृहीतमुक्ता विलोकयन्त्याशा ।

विशति गृहं सप्रस्ता सर्वत आराकृता सर्वैलक्ष्यम् ॥ ८३६ ॥

१ मृच्छकटिक में—न शक्या हि स्त्रियो रोदु प्रात्यता दपितं प्रति—२।११.

कुलकृष्णपायदां वधुवचनयन्त्रणाम् ।

न सदन्ते तरगिण्यो रतिशीला हि यापितः ॥

२ तावत्प्राणपणेनापि क्षपणा सकुन्दला ।

परस्त्रियं प्राणयन्ति न यावद् वक्ष्यमुज्झति ॥ सेमेन्द्र

(क) धृत्वा तु परदारव्याममिश्रितं समागमः । शिवपुराण ०।१।१०

वह छिनार भी जुटकी बगाने जितने समय में—थोड़ी समय में ही सम्भोग से छूटकर, चारों ओर देखती हुई, सग ओर से शक्ति, डरी हुई सी, शमांती हुई घरमें घुसती है ॥ ८३६ ॥

नवचारित्रधरा सुरचितकुलटोदितेषु नो निपुणा ।

पृष्ठा क्व गताऽसि त्व न क्वचिदिति संप्रमाद् ब्रूते ॥ ८३७ ॥

नया-नया शील का नाश, कुलटाओं के अच्छी प्रकार बनाये उत्तरों के देने में अनिपुण, स्त्री से, 'कहा गई थी' पूछा जाने पर, भय से धवराती हुई वह कहती है कि 'कहीं नहीं गई थी' ॥ ८३७ ॥

मित्तदोषे बहुरोपा पुरया अपि चपलकीतुकमाया ।

त्व च प्रहेण लग्ना कार्यविमूढाऽन तिष्ठामि ॥ ८३८ ॥

दूती का नायिका के प्रतिवचन—पुरुष भी चपल और कुतूहल मन वाले होते हैं, थोड़े से अपराध पर बहुत क्रोध करते हैं, और तू जमीन पकड़े बैठी है, एक कदम भी आगे नहीं चलती, मैं यहाँ सोच में पड़ी हूँ कि क्या करूँ ? ॥ ८३८ ॥

इति दोलायितदृष्ट्या स्थिरीकृताऽभ्यस्तकर्मणा दूत्या ।

दृष्टेति शकमाना पदे पदे चलति पश्येऽपि ॥ ८३९ ॥

इस प्रकार दूती के बार-बार कहने से चलने का निश्चय करके अस्तिर-शक्ति मन से चलती हुई जो कदम कदम पर पदों की खरखराहट से भी शक्ति होती है ॥ ८३९ ॥

अनु दिक्षु विक्षिपन्ती मुहुर्मुहुश्चकित्तरलिते नेत्रे ।

प्राप्ता संकेतभुवं शतगुणितमनोरथाकृष्टा ॥ ८४० ॥

बार-बार भयभीत और चपल नेत्रों से चारों ओर देखती हुई, हजारों मनोरथों को लेकर सन्त स्थल पर पहुँचती है ॥ ८४० ॥

भयर्गगारग्रीवामित्रीभूतानुभावसन्दोहम् ।

जनयन्ती लोलाशुकट्टाष्टासकुचनाभि ॥ ८४१ ॥

हिलते हुए वज्र के आचल के कारण शरीर के कुछ दीर्घाई पड़ने एवं कुछ नहीं दीर्घाई पड़ने वाले अंगों से, सकोच, भय, शृंगार और लज्जा मिश्रित भ्रूमण्डि धनुमाय समूह को उत्पन्न करती है ॥ ८४१ ॥

नीपीश्लथनारम्भ निरन्धती वित्तव यामि यामीति ।

निभृतास्पृटामिधाने पल्लवयन्ती स्मरस्य कर्तव्यम् ॥ ८४२ ॥

१ दूती—दीर्घ कृत्वा नयेत्कात्तं वल्लभां वा प्रियं प्रति ।

२ दूती कथिता सन्निमित्तोऽनुवचकविदा ॥

कामुक द्वारा नीवीबन्धन ढोला करना प्रारम्भ करने पर, उसको रोकती हुई थोड़े और मुसप शब्दों में कहती है कि 'हे धूर्त ! मैं जाती हूँ जाती हूँ' । इस प्रकार कहकर सम्भोग की चाह को और भी अधिक बढ़ावा देती है<sup>१</sup> ॥ ८४२ ॥

नयतीवान्तर्विलय समममानेव सर्वगात्राणि ।

सश्लिष्यतेऽन्ययोपा तित्त तस्यामृत पुरत ॥ ८४३ ॥

शरीर के सत्र अवयवों को अतिदृढता से पकड़ने की भाँति मानों कामुक के अन्दर प्रविष्ट हो रही हा, इस प्रकार से परनारी आलिंगन करती है । इस आलिंगन के सामने उसे अमृत भी कड़ुआ लगता है—तुच्छ जचता है ॥ ८४३ ॥

नायिका का वचन—

न कृत तव रहसि पुरो बाष्पावृतकण्ठकुण्ठया थाया ।

गोहस्वामितिरस्कृतिनिष्पादितदुःखवेगनिर्वहणम् ॥ ८४४ ॥

घर के स्वामी द्वारा की हुई भर्त्सना से उत्पन्न दुःख की बात भी एकान्त में तुम्हारे सामने आमुआ से बने गले से कुण्ठित बनी बाणी द्वारा मैंने नहीं कही ॥ ८४४ ॥

उपधानीकृत्य भुजावन्योन्य निर्विशकभाषाभ्याम् ।

सयलितोरु न सुप्त शिथिलाग रतिविमदरिन्नाभ्याम् ॥ ८४५ ॥

सुरत भ्रम से भ्रान्त दोनों एक दूसरे की बाहु की तकिया बनाकर, बिना किसी शफा के, अगों को दीला किये एक दूसरे को ऊर के ऊपर ऊर रखकर हम नहीं सोये ॥ ८४५ ॥

आत्मगृहादानीत प्रच्छाद्य स्वादु भोजन विजने ।

स्वकरेण मया दत्त निर्भृतहृदयेन नाशित भवता ॥ ८४६ ॥

अपने घर से ( अपने हाथ का बनाया ) बस्त्र से ढाप कर लाया ( चोरी से लाया ) भोजन एकान्त में, अपने हाथों से ही दिया, तुमने उसे भी शान्त चित्त से नहीं खाया ॥ ८४६ ॥

न कृता चरित्ररक्षा न च भुक्त त्वच्छरीरमपयन्त्रम् ।

दृष्टादृष्टभ्रष्टा क्व यामि किंवा करोमि दुर्जाता ॥ ८४७ ॥

१ पराङ्गनार्ता सुरताभ्यनुज्ञा मन्दोदिता एव निषेधवाच । मुकुन्दानन्दभाष्य-१२०

(ख) अञ्जिकचिबुक्कण्ठ नासिकाग्र च सुम्बन् ,

पुनरुपहितसौत्क तालु जिह्वा च भूय ।

छुरितजखित-नाभीमूत्रवक्षोरुदोरु ,

रञ्जयति दृढैर्यं ह्योमयित्वाऽयं नीवीम् ॥ रतिरहस्य १०१



मैंने तुम्हारे लिये अपने शील की भी रक्षा नहीं की, बिना किसी स्कावट या हिचकिचाहट के तुम्हारे शरीर का चुम्बन-शालिगन द्वारा भोग भी पूरे तौर पर नहीं किया । दृष्ट विषयानन्द मुझ, अदृष्ट पुण्य से भ्रष्ट मैं कहाँ जाऊँ, दोनों स्थानों से भ्रष्ट हो गई, पूटे भाग्यों वाली मैं अब कहाँ जाऊँ ॥ ८४७ ॥

अवगुण्ठनचिनयरति स्वैरालापं च मन्दसंचारम् ।

सम्प्रति मम पापाया करपिहितमुखा हसन्ति तस्त्रिज्ञाः ॥ ८४८ ॥

कुलबधू के समान मुझ दुष्टा का घृष्ट निःसालना, नम्रता, प्रीति-स्नेह, धीमे से बातचीत करना, पीरता-गम्भीरता पूर्वक चलना देखकर, वास्तविक बात को जानने वाले व्यक्ति हाथों से मुँह का टापर अब मुझ पर ईसते हैं ॥ ८४८ ॥

यासामासीत्सरयं मया समं समवयःकुलस्त्रीणाम् ।

सा धारयन्ति मत्तः कुसंग इति तन्नियन्तार ॥ ८४९ ॥

समान वय एव समान कुलवाली जिन स्त्रिया के साथ मेरी मित्रता थी, उनके गुणजन अब मेरे साथ उठने बैठने-बातचीत करने से उनको रोकते हैं ॥ ८४९ ॥

धिग्धावान् परिजनतः सहमानाऽनुत्तरा ह्यधोवदना ।

लिप्तामि निरभिमाना निजनिर्मितदोषदीर्घल्यात् ॥ ८५० ॥

नीचे मुँह किये, बिना किसी प्रकार का उत्तर दिये कुटुम्बी एव पड़ोसी जनों के धिक्कारों की मैं सह लेती हूँ । अपने निम्ने दोष की निरन्तरता के कारण ही गर्वरहित होकर रहती हूँ ॥ ८५० ॥

सद्भिर्विधीयमानं प्रसंगपतितं पतिव्रतास्त्ववमम् ।

हृदयेन द्रव्यमाना मूढा सीदामि शृण्वन्ती ॥ ८५१ ॥

सज्जना द्वारा प्रसंगवश की हुई पतिव्रता स्त्रियों की स्तुति की मुनकर हृदय में अविशय दुःखी होती हुई मैं मूर्खा पाँविते हाती हूँ ॥ ८५१ ॥

आसन्न उपविशन्तीं वा दाक्षिण्यान्नियन्तुमसमर्थाः ।

अन्योन्यमाक्षमाणा हातिजना संकुचन्ति भुजानां ॥ ८५२ ॥

शांति भोजन के समय मुझे पास में बैठती हुई देखकर, उदास्तापश मुझे न हटाकर सम्मन्धी बन एक दूसरे का देखते हुए लज्जा अनुभव करते हैं ॥ ८५२ ॥

प्रकटीकृता त्वयैव क्षणमात्रममुंचता गृहोपान्तम् ।

अस्मासु दृशं मग्ना प्रेमस्निग्धात्मनुद्धरता ॥ ८५३ ॥

मेरे घर के पड़ोस को एक क्षण के लिये भी न छोड़ कर, तथा मेरे तुम्हारे सामने आने पर मुझ पर स्नेह भरी दृष्टि लगातार डालकर, तुमने ही यह रहस्य प्रकट किया है<sup>१</sup> ॥ ८५३ ॥

परगृहविनाशपिशुना सुभगमन्याभिरुप्यकृतदर्पा ।

कृकलासतुल्यरागा भवन्ति युष्मद्विधा एव ॥ ८५४ ॥

दूसरों के घरों को उजाड़ने वाले, परकीया स्त्रियाँ को मोहित करने में अपने को सौभाग्यशाली समझने वाले, अपने रूप सौन्दर्य का अभिमान करनेवाले, आप जैसे दुष्ट आदमी ही गिरगट के समान क्षण क्षण में रग उदलते हैं<sup>२</sup> ॥ ८५४ ॥

अनभीष्टव्यवहारप्रभवरूपा पीडितान्तरा इत्थम् ।

सोपालम्भा विजने धन्या शृण्वन्ति बन्धकीवाच ॥ ८५५ ॥

इस प्रकार अनिच्छित व्यवहार से उत्पन्न क्रोध से भरी बन्धकी वेश्या की वाणी को, उपालम्भ के साथ भाग्यवान् ही एकान्त में सुन पाते हैं ॥ ८५५ ॥

परतरुणीसद्भावस्नेहार्पितनयनभागदृष्टस्य ।

वेश्यारचितविलासा कथिता पुरस्त पुराणवृणतुल्या ॥ ८५६ ॥

धूसरी सुनती ( परस्त्री ) द्वारा निष्कपट प्रेम से समर्पित कथाओं के आगे वेश्याओं के किये हान भान पुराने तिनके के समान तुल्य हैं ॥ ८५६ ॥

उपनयति रतिमहोत्सवमाराधितदेवताविशेषाणाम् ।

वचनमपि प्रेमाद्रं स्वैरिण्या श्रवणमेति पुण्यवताम् ॥ ८५७ ॥

मन्त्र जप पूजा आदि द्वारा देवता का प्रसाद प्राप्त पुरुषों को रतिमहोत्सव सम्भोगरूपी महान् आनन्द परस्त्री से प्राप्त होता है। स्वैरिणी का प्रेमपूर्ण वचन भी भाग्यशाली पुरुषों को ही सुनने में मिलता है<sup>३</sup> ॥ ८५७ ॥

१. आचार कुलमाख्याति, वपुराख्याति भोजनम् ।

वचन द्युतमाख्याति, स्नेहमाख्याति लोचनम् ॥

२. क्षेमेन्द्रने समयमातृका में अस्सी प्रकार के राग बताये हैं, उनमें एक राग कृकलास राग भी है—

कृकलासाभिधानश्च स्वैर्यदर्शनवचन — २।३६

३. स्वैरिणी—पतिव्रता चैकपत्नी, द्वितीया कुछटा स्मृता ।

तृतीया वृषची ज्ञेया चतुर्थी पुंश्चली स्मृता ॥

वेश्या च पचमे पट्टे, युगी च मसमेऽष्टमे ।

सत ऊर्ध्वं महावेश्या साऽस्पृश्या सर्वजातिषु ॥ महावेश्यं पुराण

(२) नातश्चतुर्थं भसवमाप्स्वपि वदत्युत ।

अतः पर स्वैरिणी स्याद् बन्धकी पचम भवेत् ॥ महा० आदि १२३।७७

का गणना विषयवशे पुंसि वराके, वरांगना स्पृहया ।

व्याजेन वीक्षमाणा ध्यानधियां स्पृशति संज्ञानम् ॥ ८५८ ॥

यदि वरांगना-उत्तम स्त्री-सुमात्री किसी वहाने से समागम की चाह के साथ देरती है, तो एकाग्रचित्त मुनियों का भी उत्तम ज्ञान चंचल हो जाता है, फिर भोग्यस्तु के विषय में तीन पुरुषों की बात ही क्या ? ॥ ८५८ ॥

शिरसा रचितांजलयो दधति निदेशं त्रिविष्टपे गणिकाः ।

परदाररसाकृष्टस्तथापि भेजे शर्चापतिरहल्याम् ॥ ८५९ ॥

स्वर्ग में वेश्यायें जिसकी यात्रा को फिर झुकाकर स्वीकार करती हैं, उस इन्द्र ने भी पण्डे स्त्री के रस की ओर आकृष्ट होकर ग्रहणा का सेवन किया ॥ ८५९ ॥

अप्सरसः किं न धरो पैद्गव्यवतां च किं न धौरेयः ।

येन चकारासक्तिं गोविन्दो गोपदारेषु ॥ ८६० ॥

क्या कृष्ण के यश में अप्सरायें नहीं थीं, लौकिक विषयों में कुशल विद्वानों में क्या कृष्ण अग्रणी नहीं था ? फिर भी कृष्ण ने गोपवधुओं में आसक्ति की ॥ ८६० ॥

प्रेलोक्यगता वेश्याः स्वार्थीना यातुधाननाथस्य ।

तदपि जहार कलत्रं दशरथतनयस्य रामस्य ॥ ८६१ ॥

रावण के अर्धीन स्वर्ग की सब वेश्यायें थीं, तो भी उसने राम की पत्नी सीता का हरण किया ॥ ८६१ ॥

१. किं बुवत्तपनेत्राः सन्ति नो नाकनार्यः

त्रिदिग्परिविहस्यां तापसीं यत् सिषेवे ।

हृदयतृषकुटीरे दीप्यमाने स्मराधौ

उचितमनुचित का भेति नः पण्डितोऽपि ॥

२. भेजे गौत्रमपुन्दरीं सुत्पातिश्रन्द्रश्च भार्यां सुरो

धर्मोऽपि स्वयमेव पाण्डुनृपतेः पत्नीमयासीत् श्याम् ।

गोपार्नां वनितां नितान्तममज्जदेवः स्वयं भाववो,

मूढाः पण्डितमात्रिनोऽपि दिविरे दीपे परस्योत्तरी ॥

(क) दिवाऽऽप्यकामं शमयेद् वशी यो निर्विनिर्वा मदनगरात्तिम् ।

कृपान्वितो मन्यराजवेदी समाप्नुयात्स्वर्गमुखं स धीरः ॥

नागरसर्वस्व ११४.

(ख) नाती शोचतर्थावनाऽमिदपितं कान्तं न चेद्गुणपाद्

उन्मादं मरणं च विन्दति तदा कन्दर्पसंमोहिता ।

अथ मंजयां जननी निजपक्षसमर्थने कृतोत्साहा ।

आक्षेप्तुमाचचक्षे नृपसुतसचिवाश्रिता वाचम् ॥ ८६२ ॥

राज्य मंत्री की बात सुनकर पूर्ण उत्साह के साथ अपने पक्ष का समर्थन करने के लिये और राजपुत्र के मंत्री के वचनों पर आक्षेप करने के उद्देश्य से मंजरी की माता कहने लगी ॥ ८६२ ॥

घटयुवतिषु प्रगल्भो नागरिकादर्शनेन हृतपुस्त्य ।

प्राप्तोपितो विदग्धो निन्दति गणिका भवद्विधोऽवश्यम् ॥ ८६३ ॥

पनहारियों में धृष्ट, नागरिक शिक्षित विदग्ध चतुर स्त्रियां के देखने मात्र से मूढ़ बना नपुंसक बना, गवार, मूर्ख आप जैसा, अवश्य ही वैश्याओं की निन्दा करता है ॥ ८६३ ॥

नार्त्रयति मन पुसामवगाहितमीनवेतुशास्त्राणाम् ।

नखदशनक्षतिहीन जीयत्यतिबन्धकीसुरतम् ॥ ८६४ ॥

कामशास्त्र का भली प्रकार अध्ययन किये पुरुषों का मन, जीवित पति वाली पराई स्त्री के साथ नख दशन से होन सम्भोग से प्रसन्न नहीं होता । [ पति के भय से नखक्षत दन्तक्षत नहीं किये जा सकते ] ॥ ८६४ ॥

स्थापय घटक तावत्, कुरु भूमितले शृणु समास्तरणम् ।

सुरतोपगम ईदृग्ग्रामीणकतरुणमिथुनानाम् ॥ ८६५ ॥

कामुक पनहारी को रास्ते में देखकर गवार कहता है कि 'घड़े को उतार कर एक तरफ रख दे, प्रग्नी पर घास बिछाकर समान करले', गँवार स्त्री पुरुष इस प्रकार से सम्भोग करते हैं' ॥ ८६५ ॥

सचिन्त्येति समागता परवधू रत्यर्धिनीं स्वेच्छया

गच्छेत्कापि, न सर्वदा सुमतिमानित्याह वात्स्यायनः ॥

अनर्गल ८।१३.

(ग) नहि कविना परवारा पृष्ट्या नापि चोपदेष्टव्या ।

कस्यैवतयाऽन्येषा न च तदुपायोऽभिधातव्य ॥

किन्तु तदीय वृत्त काव्यागतया स केवल वक्ति ।

आराधयितुं विदुषस्तेन न दोष कवेरत्र ॥ काव्यान्तकार १४।१२-१३.

१ इसमें श्रीहर्ष की उक्ति अपवादरूप है—

साहित्ये सुकुमारवस्तुनि दृढनायप्रहमन्यिजे,

तर्कं वा मयि सविधातरि सम लोछायते आरणी ।

शय्या वाऽस्तु मृदुचरच्छदवती हर्माहुरैरासृता,

भूमिर्वा हृदयक्षमो यदि पतिस्तुल्या रतिर्येषिताम् ॥

वहलोशीरविलिप्तस्थितजूटक्लापमल्लिकामाल्यः ।

पामरनार्या दृष्टः स्मारोऽहमिति मन्यते चिटो ग्रान्यः ॥ ८६६ ॥

बालों पर खस का मोटा गहरा लेप करके, उनपर मोगरे की माला बाँधे, प्राणीय युवक—प्राणीय मूर्ख नीच स्त्री के कटाक्षपात से ही अपने को कामदेव समझने लगता है ॥ ८६६ ॥ -

गृहकर्मकृतायासा प्रस्विन्नां सलिलकार्यनिर्याताम् ।

उपपत्तिरपीति हर्षं निशागमे पामरी प्राप्य ॥ ८६७ ॥

घर के काम से थकी, पसीने से तर, पानी लेने के लिये घरसे निकली प्राणीय स्त्री को, रात्रि के पहले पहर में प्राप्त करने उपपत्ति-जार अति प्रसन्न होता है ॥ ८६७ ॥

कूपक्षिप्तघटाया नार्यास्तत्काष्ठनिहितचरणायाः ।

वलितग्रीव वीक्षितमुन्नमर्याति मानसं यूनः ॥ ८६८ ॥

घंटे की कुँए में डाले, एक पैर को घड़ा खींचने की बरण पर टिकाये, प्रीया की मोड़कर देखती हुई युवती को देखकर, युवा-व्यक्ति का मन आनन्द से खिल जाता है ॥ ८६८ ॥

लग्नोऽसि यत्र गात्रे कथमपि दैवेन देवयात्रायाम् ।

अद्यापि तन्न मुंचति पुलकोद्गमकण्टकं तस्याः ॥ ८६९ ॥

रथपाना या अन्य किसी प्रसंग में भाग्यश्र अचानक यदि कभी शरीर से प्राणीय युवती के शरीर का स्पर्श हो जाता है, तो उसका धमरव करके आन भी उसके शरीर में रोमांच बना रहता है ॥ ८६९ ॥

उत्चेतुं कार्पासं प्रविष्टया गहनवाटिकां शून्याम् ।

दंकारितेन संज्ञा कृता तथा त्वं च वेत्ति नो मूर्यः ॥ ८७० ॥

निर्जन घने कपास के खेत में कपास चुगने के लिये घुसी प्राणीय पशु द्वारा पत्थर फेंककर, ताली बजाकर अथवा खटार कर दिये हुए सरेत को भी व मूर्ख नहीं समझता—तू तो महामूर्ख है ॥ ८७० ॥

आलिङ्गितमुसलायास्त्वय्येव निविष्टचक्षुपस्तस्याः ।

आवृत्त्या भ्रमति पुरो जातः खलु शालिकण्डने विघ्नः ॥ ८७१ ॥

तेरे बार-बार उसके सामने आने जाने से, तेरे में ही आँख लगाये रहने के कारण, मूसल की हाथ से पकड़ रहने पर भी, धान बूटने में रुकावट अटचन होने लगी ॥ ८७१ ॥

त्वा लोष्टमाक्षिपन्तं पार्श्वस्थैः स्तूयमानसामर्थ्यम् ।

गृहकर्तव्यं त्यक्त्वा पश्यति सा द्वाररन्ध्रेण ॥ ८७२ ॥

पत्नी उड़ाने के लिये या अन्य कारण से हाथ द्वारा या गोपण से पत्थर पेंकते हुए तुमको, समीपवर्त्ता मनुष्यों द्वारा की हुई तेरी प्रशंसा को सुनकर, घर का सब काम छोड़कर दरवाजे के छेद से वह तुमको देखती है ॥ ८७२ ॥

स्थयि मार्गानिकटवर्तिन्यविचिन्तितखेदया तथा सुभग ।

प्रत्यासन्नगृहेष्वपि कृतः प्रसह्य स्मरातुरो लोकः ॥ ८७३ ॥

हे सुभग ! तेरे घर के समीप की गली में आने के लिये उसने मार्ग की धूप आदि दुःख की भी परवाह नहीं की। घरके समीप में एड़ी उसको देखकर—राहगीर भी कामातुर हो जाता है—[ धूप के कारण उसका चेहरा और भी अधिक लाल सुन्दर बन गया है ] ॥ ८७३ ॥

इति चतुरदूतिकोदित उपचितसौभाग्यगर्वपूर्णस्य ।

ऊर्मिसहस्रोल्लसितं भवति मनो ग्राम्यपिगस्य ॥ ८७४ ॥

इस प्रकार चतुर दूती के कहे वचनों को सुनकर, बड़े सौभाग्य के गर्व से भरा ग्राम्य विट का मन बल्लियों उछलने लगता है—अतिशय प्रसन्न होता है ॥ ८७४ ॥

विनिवार्य तत्प्रवर्तितवाक्यविकासं नतोत्तमांगेन ।

श्रीसिंहभटतनयं तमुवाच वचोऽथ नर्तकाचार्यः ॥ ८७५ ॥

मजरी की माता द्वारा प्रस्तुत कथा को समाप्त करने के लिये सिर झुकाकर नर्तकाचार्य ने सिंहभट्ट के पुत्र-राजपुत्र से कहा ॥ ८७५ ॥

नायकभूमौ भरतः कुशीलवाः कोहलादयो मुनयः ।

अप्सरसः स्त्रीनाट्ये गान्धर्वं कमलजन्मनस्तनयः ॥ ८७६ ॥

सुपिरस्वरप्रयोगप्रतिपादनपरिहृतो मतंगमुनिः ।

यदि रंजयन्ति हृदयं भवतो, भूमिस्पृशां कुतः शक्तिः ॥ ८७७ ॥

नाटक की भूमि में भरत के समान, तरला आदि बजाने में कोहल आदि मुनियों के समान, स्त्री पात्र में अप्सराओं के समान, गायन-वादन में ब्रह्मा के पुत्र नारद के तुल्य, बाँसुरी आदि बजाने में मतङ्ग मुनि के समान निपुण, अभिनय करनेवाले कुशीलव जहाँ आपके हृदय को प्रसन्न करते हैं, वहाँ पर हम जैसे सामान्यजनों की क्या सामर्थ्य है, हम आप का क्या मनोविनोद कर सकते हैं । [ भूमिस्पृशा-मर्त्यानाम् ] ॥ ८७६-८७७ ॥

अभ्यधिकं घृष्टत्वं प्रायेण हि शिल्पजीविनो भवति ।

आश्रित-नर्तक-धृत्तेर्विरोपतो विजित-रंगस्य ॥ ८७८ ॥

प्राप्त करके शिल्पजीवी अधिक वाचाल घृष्ट होते हैं, इनमें भी विशेष करके नाट्यभूमि में कीर्ति प्राप्त नर्तक अधिक घृष्ट-वाचाल होते हैं ॥ ८७८ ॥

विज्ञापयाम्यतस्त्वां नरेन्द्र नाट्यप्रज्ञासदृशम् ।

अवलोकयाम्कमेकं मा- भवतु मम धर्मो बन्धुः ॥ ८७९ ॥

हे राजन् ! इसीसे मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि नाटक प्रिय समाज के समान आप एक अंक देखें, जिससे कि मेरा प्रयत्न निष्फल न जाये ॥ ८७९ ॥

इति कथयन्तरमर्तुः पुत्रेण स चोदितो ध्रुवोन्नतया ।

रचिते मकल्लातोद्ये नियोजयामास सूनवृतम् ॥ ८८० ॥

नृत्याचार्य के इस प्रकार कहने पर राजपुत्र ने भ्रुवां के दृगित से उसे आशा प्रदान की । नृत्याचार्य ने सत्र वाद्ययोगा-मुरज-वशी कास्य आदि तय्यार करके सूत्रधार को आशा दी ॥ ८८० ॥

वांशिकदत्तस्थानकतद्भावितभिन्नपंचमे सम्यक् ।

प्रावेशिक्यनसाने द्विपद्मोमहृष्टान्तरेऽनिरात् सूत्री ॥ ८८१ ॥

बोंसुरी बजाने वाले के साथ अन्य वाद्यों का स्वर मिला कर पंचमराग प्रवृत्त हो जाने पर, प्रावेशिकी श्रुतिविशेष के अन्त में, [ गान्धी के अन्त में ], द्विपद्मी को लय विशेष में गाते हुए नदों के बीच में सूत्रधार प्रविष्ट हुआ ॥ ८८१ ॥

उत्साहभावयुक्तः सामाजिकरुद्धदयरञ्जनं कुर्यन् ।

कथितेपुण्यवत्सेरवरचरितस्य विधेय दाक्ष्यसामग्र्या ॥ ८८२ ॥

अष्टकलापरिमाणं ध्रुवां च परिकल्प्य ताललययुक्तम् ।

आहूय नदीं कृत्वा तथा समं स्वगृहकार्यसंलापम् ॥ ८८३ ॥

सूचितपात्रागमनः कियन्ति दत्त्वा पदानि ललितानि ।

निश्चक्राम गृहिण्या सार्धं निःसरणगोतेन ॥ ८८४ ॥

उत्साह और भाव से युक्त सामाजिक जनों के हृदय को प्रसन्न करता हुआ, कवि श्रीहर्ष के बनाये उदयन चरित वाले खलामली नाटक के प्रयोग में कुशल, संपूर्ण सम्पत्ति से युक्त, ताल-लय से युक्त श्रुति-विशेष आदि वस्तु तत्पश्चात्, नदी को बुलाकर उसके साथ में अपनी पर सम्बन्धी बात चीत करने, पान के आने की उल्लेख देकर अपनी सुन्दर चाल से कुछ कदम चलकर बाहर

१० द्विपद्मी—शोकविभ्रमवृत्तेः व्याधिचिन्तासमाश्रिते ।

ध्रुववार्तादिवैरूप्ये योग्या द्विरदिका ध्रुवः ॥ मातलीमाधव टीका

जाने वाले गीत को गाते हुए सूत्रधार अपनी गृहिणी के साथ नेपथ्य से निकल गया<sup>१</sup> ॥ ८८२-८८४ ॥

आश्रित्य कथोद्घात प्रविवेश ततः सविस्मयोऽमात्य ।

दुर्घटसंघटनेन क्षितिनाथस्योदयेन मुदितश्च ॥ ८८५ ॥

सूत्रधार के निकलने के पीछे, कथोद्घात का आश्रय लेकर असमभवनीय संयोग के होने से, राजा उदयन की उन्नति से प्रसन्न एवं चकित हुआ अमात्य योगन्दरायण मंच पर आता है<sup>२</sup> ॥ ८८५ ॥

प्रासादमारुहन्त कुसुमायुधपर्वचर्चरीं द्रष्टुम् ।

निर्दिश्य वत्सराज समनन्तरकार्यसिद्धये निरगात् ॥ ८८६ ॥

राजप्रासाद पर चढ़कर कामदेव के महोत्सव को देखने के लिये वसन्तराज उदयन को कह कर, स्वयं शेष रहे अपने कार्य को पूरा करने के लिये अमात्य योगन्दरायण निकल गया<sup>३</sup> ॥ ८८६ ॥

१. प्रस्तावना या आमुख—सूत्रधारो नटीं भूते मारिष वा विवृणक्तम् ।

स्वकार्यप्रस्तुतांशेषु चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ॥

दृशरूपक १७।८

२. कथोद्घात—स्वेतिवृत्तसम वाक्यमर्थं वा यत्र सूत्रियः ।

गृहीत्वा प्रविशेत् पात्रं कथोद्घातो द्विधैव स ॥

दृशरूपक १९-१०.

(ख) जैसे रत्नावली में—द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यगतात् ।

आनीय क्षटिति घटयति विभिरभिमतमभिमुखीभूत ॥

१।९.

(ग) जैसे रत्नावली में—(सहपंम्)—सर्वथा स्पृशति न स्वामिनमभ्युदया ।

इदं च—येयं सिंहलेखरस्य दुहिता सा सिद्धेना-

दिष्टा यथा योऽस्या, पाषिप्रदृष्ट करिष्यति स

सार्वभौमो राजा भविष्यति । चतुर्थं अक.

३. कुसुमायुध महोत्सव चैत्रोत्सव । दोहो —यथा स्कन्दपुराण में—

मधुमासे तु सपासे शुक्लपक्षे चतुर्दशी ।

प्रोक्ता मदनमुञ्जीति सिद्धिदातु महोत्सवे ॥

चैत्रे मासि चतुर्दश्यां मदनस्य महोत्सव ।

उगुप्सोत्तिभिस्तत्र गीतवाद्यादिभिर्नृत्याम् ॥

भगवांस्तुभ्यते काम पुत्रपौत्रसमुद्दिदा ॥



अथ विरति स्म नरेन्द्रः प्रासादगतः समं वयस्येन ।

अवलोकयन् प्रमोदं प्रमुदितचेताः स्वसौख्यसंपत्त्या ॥ ८८७ ॥

अमात्य योगन्धरायण के निकल जाने पर, अपने मित्र वसन्तक के साथ प्रासाद पर चढ़ा, राजा उदयन अपनी सुखसमृद्धि से प्रसन्न मन के साथ नगर-नियासियों के दर्प को देखता हुआ आता है ॥ ८८७ ॥

विस्मयभावाकृष्टः प्रोत्सुह्वलिलोचने ततो विस्तृतम् ।

नृत्यति पौरजनीधे प्रोवाच वयस्य पश्य पश्येति ॥ ८८८ ॥

विस्मय के कारण चकित बना, पुरवासी श्री-पुरुषों के समूह में आश्चर्य के साथ आँख फैलाकर देखते हुए राजा अपने मित्र वसन्तक को कहने लगा—  
“मित्र देख-देख ॥ ८८८ ॥

तुल्यशिशुतरुणवृद्धं समगुणागुप्रयुवति सविचेष्टम् ।

अगणितवाच्यावाच्यं क्रीडन्ति जनाः प्रवृद्धहर्षेण ॥ ८८९ ॥

नगरनिवासी अत्यन्त दर्प के साथ खेल रहे हैं, इनमें बालक, तरुण, युवा, और वृद्ध सब छोटे-बड़े का भाव भूलकर आनन्द ले रहे हैं, युवती-कुलीन स्त्रियाँ, सुवती वेश्यायें भी नाना प्रकार की हास्यजनक चेष्टायें कर रही हैं । कहने योग्य या न कहने योग्य किर्ती भी प्रकार का विचार बातचीत में नहीं हो रहा है—  
अश्लीलादि गाती गलौज भी चल रहा है ॥ ८८९ ॥

पिष्टासकपिंजरितं सुचिरोच्छ्रितविविधकुसुमनिर्युहम् ।

गात्रायाससमुत्थितग्रहुनिश्वासप्रकीर्णपटवासम् ॥ ८९० ॥

गुलाल से सब दिशाओं पीली-लाल बन गई, पगड़ी में ढेर से लगाया फूलों का गुच्छा भी लाल हो गया है । शरीर की थकान से निकलने वाले निश्वास के कारण कपड़ों पर पड़ा पटवास-धूल्य उड़कर इधर-उधर गिर रहा है ॥ ८९० ॥

तूर्यरषध्यामिश्रितकरतालैरुदुञ्चं प्रनृत्यन्तम् ।

सुहृदपजातसखलनं संदर्शितदार्ढ्यसौम्यं स्थविरम् ॥ ८९१ ॥

तुरी की ध्वनि के साथ में ताली मचाकर हाथों को ऊँर उठार कर नृत्य करते हुए, एवं बार-बार गिरता हुआ वृद्ध भी अपने शरीर की दृढ़ता का सौम्य दिखा रहा है ॥ ८९१ ॥

कुछ छोटा क्षेत्र वैशाख में, कुछ छोटा काल्पुन और क्षेत्र में वसन्त मानते हैं । 'वसन्तः कुम्भसौम्यः, एवं मधु-माघयो वसन्तः, काल्पुन-चैत्री वसन्तः'—यह भी पाठ है । सुश्रुत पर्व चरक में दोनों पाठ हैं ।

वरपादोनोपमर्दन्यतिरसमये कदर्थ्यमानोऽपि ।

स्तनमण्डले स्थितोऽहं त्वं पुनराकृत्य कुत्रचित्तिष्ठ ॥ ८६६ ॥

हार और कजुकी (चोली) में बातचीत—हार चोली से कहता है—  
हारों द्वारा स्तनों में मर्दन करने समय पीटित होता हुआ मैं, लगातार  
स्तनों पर ही बना रहा, तू तो सींचकर दूर फेंक दी गई थी ॥ ८६६ ॥

अधुनाऽन्तरयसि मामिति कोपादिव वारवाणमभिरामम् ।

बहुचिरपद्व्यासैर्वल्यन्त्या हन्ति हार उच्छलित ॥ ८७० ॥

श्रीर और तू मुझको रोकती है, मेरे और स्तन के बीच में तू आता है,  
नृत्यसमय में नाना प्रकार के आश्चर्य वारक पात्रसेपा से ऊपर फों उठता  
हुआ हार बीच से सुन्दर चोली को इस प्रकार कहता है । [ वारवाण-वार  
वर्णीय मुन्तर वान स्थितिर्म यस्य तत् कजु-चोला ] ॥ ८७० ॥

चूतलता भ्रमिन्नस्थानयुतशेखर दधी श्लाघ्यम् ।

अधुस पतन्निर्यूहा न त्वेषा मदनिका वेणीम् ॥ ८७१ ॥

जैसे हुए जूँ से गिरी हुई माला को रत्नर चूतलता ने प्रशंसा प्राप्त  
की । और इस मनिका ने वेणी से गिरते हुए पूला ने गुच्छे को नहीं  
सम्भाला । [ अशौशल से या मदातिरेक के कारण गिरता हुआ गुच्छा नहा  
रोका जा सता ] ॥ ८७१ ॥

स्तनभाराग्रतस्तव प्रतनोर्मप्यस्य नास्ति तेषेक्षा ।

इत्यमिष पादलम्नी क्रीडन्त्या नूपुरी रसत ॥ ८७२ ॥

पैरों में पहने नृत्य करते समय बगते हुए नूपुर पह रहे हैं—कि 'स्तनों के  
भार से मुस्ते हुए वह माग ने आगे कुछ मध्यमाग की अपेक्षा नहा है—उसका  
कुछ मूल्य नहीं ॥ ८७२ ॥

बहति स्म यं नितम्बं पथमपि कृच्छ्रेण मन्दसंचारा ।

कलयति च तूललघुं, जयति मनोजन्मनो महिमा ॥ ८७३ ॥

जो गजगामिनी प्रडी फटिनाई से नितम्ब के भार को येन उन प्रकार से  
उठाये हुए भी, वही नृत्य के समय नितम्ब के भार को कपास से हल्का समझती  
है, वामदेव की महिमा की जय है, उसी की यह महिमा है ॥ ८७३ ॥

उदयनसमनुज्ञातो नर्तति वसन्तकोऽपि मुदितस्मा ।

हास्यप्रभाभिराम चर्चरिकाधेन तन्मप्ये ॥ ८७४ ॥

राजा उदयन से आज्ञा लेकर प्रसन्न हुआ वसन्त भी चर्चरिका के आगे  
डुक्के को गाता हुआ, मनिका और चूतलतिका के बीच में हास्य और लज्जा  
से सुन्दर बना नृत्य करने लगता है ॥ ८७४ ॥

धीरोद्धतललितपदैः क्रीडित्वा ते चिराय नरनाथम् ।

प्रद्योतस्य सुतायाः संदेशकमूचतुः समुपगम्य ॥ ६०४ ॥

राजा का शास्त्रानुवृत्त धीर-उद्धत ललित पदों से देर तक मनोरञ्जन करके, उन्होंने राजा के समीप आकर वासवदत्ता का संदेश कहा ॥ ६०४ ॥

आदिशति देव देवीत्यर्घोक्ते, ते सलज्जमन्योन्यम् ।

अवलोक्य मुखं, नहि नहि-विज्ञापयति प्रणम्य वि येन ॥ ६०६ ॥

हे देव । देवी आजा करती है, इतना कहने पर ही लज्जा से एक दूसरे का मुख देखकर कहने लगी नहीं, नहीं, विनय के साथ प्रणाम करके देवी निवेदन करती है ॥ ६०६ ॥

मकरध्वजस्य पूजां त्वत्पादसरोजसन्निधी कर्तुम् ।

पृथिवीमण्डलमण्डन समीहते मे मनोवृत्ति ॥ ६०७ ॥

हे पृथ्वीभूषण । आपकी उपस्थिति में मकरध्वज की पूजा करने की मेरी इच्छा है ॥ ६०७ ॥

प्रियरतिभोगो मदनो दयितयमन्तो जनस्य मनसि वसन् ।

भावेन भवान् पूज्यो, लोकस्थित्या तु कुसुमशरपाणिः ॥ ६०८ ॥

कामदेव की पूजा से तो लाभ है; अतः मन से तो आपकी पूजा हो जायेगी, और ताँकिक व्यवहार में मकरध्वज की पूजा सम्पन्न होगी । आपको भी रति-सम्भोग प्रिय है, मित्र वसन्तक भी प्रिय है, आप सबके हृदय में बसते हैं । काम-देव को भी अपनी पत्नी रति का भोग प्रिय है, उसका भी सखा वसन्त है, काम भी सबके हृदय में बसता है ॥ ६०८ ॥

इति दत्त्वा सन्देशं प्रकृतिवयःकालसमुचितं भ्रान्त्वा ।

ते मदमदनाविष्टे बभूवुस्तुजैवतिकान्तरिते ॥ ९०६ ॥

इस प्रकार देवी का संदेश देकर स्वाभाविक गर्व एवं यौवन जग्य काम से आविष्ट वे दूतिवर्ग-स्याभाविक हास्यादि; वय-यौवन, काल मदन महोत्सव के अनुसार धूमकर-बलकर नेपथ्य में चली गई ॥ ६०६ ॥

अपनीततिरङ्गरिणी सतो भवन्नृपसुता समं चेष्टया ।

अविदितरत्नावल्या पूजोचितवस्तुहस्तयाऽनुगता ॥ ९१० ॥

हस्ते पीछे, परदे को हटाकर वासवदत्ता दासी के साथ ( काचनमाला के साथ ) रंग मंच में आती है । वासवदत्ता की जानकारी के बिना ही ग्वावली

१. मधुरच ते मग्मथ साहचर्यादसावदर्कः, अपि सहाय एव ।

समीरणो नोदयिता भवेति ध्यादिरवते न न हुताशनस्य ॥ कुमारः ३.

भी पूजा की सम्पूर्ण सामग्री हाथ में लिये उमरे पीछे पीछे गतिष्ट होती है ॥ ६१० ॥

अथ दृष्ट्वा सागरिका प्रमादितां परिजनस्य निन्दित्वा ।

कांचनमालामवदन्तृपमहिषोजातसंक्षोभा ॥ ६११ ॥

इसके पीछे सागरिका ( रत्नावली ) को देखकर, परिवर्णों के आलस्य की निन्दा करते हुए, वासुदेव ने क्रोध में कांचनमाला को कहा ॥ ६११ ॥

प्रेपय कन्यामेनामचरोधं, त्वं गृहाण कुसुमादि ।

यावन्न भवति विषये बीक्षुण्योर्भूमिनाथस्य ॥ ६१२ ॥

इस कन्या को [ रत्नागती को ] घर में मेज दो और पूजा की सामग्री तुम ले लो, जिससे कि राजा की श्रौतों के सामने यह न आये ॥ ६१२ ॥

उपराम्य तत्सर्वेष्टी तामचर्यत्वं निर्मथमाप्तात् ।

मेधाविनीं विमुच्य, प्रज, तस्मिन्मा विलम्बत ॥ ६१३ ॥

इसके पीछे यावन्नमाला रत्नावली के पास जानर कहने लगी कि तू 'मेधाविनी' (मैना) को छोड़कर क्यों चली आई, जल्दी से जा, देर मत कर ॥ ६१३ ॥

विहिते देव्यादेगे मनसीर्षं संविधाय सा तर्था ।

विहृती सुसंगताया हस्ते निहिता, मनोभवसपर्याम् ॥ ६१४ ॥

अथलोकयामि तावत्तिरोहिता सिन्दुवारविटपेन ।

तातान्त पुरिकामिर्यथाऽर्च्यते किं तर्धतदुत नेति ॥ ६१५ ॥

देवी का आदेश है, यह मन में समझकर कि मैना को तो गेने सुसंगता के हाथों में सौंप दिया है, इससे यहाँ लड़ी रहकर, कामदेव की पूजा की सिन्दुवार वृद्ध की ओट में छिपकर देखूँगी । क्या कामदेव की पूजा यहाँ भी उसी प्रकार से होती है, जैसा की मेरे पिता के घर में होती थी ॥ ६१४-६१५ ॥

पिण्डावृत्तमिव रागं हृन्ध्यमिव लब्धविप्रहोत्कर्षम् ।

समुपेत्य चत्तराजं जगाद् सा जयतु देव इति ॥ ६१६ ॥

राग और स्नेह ही मानों पिण्डानार घनीभूत हो गया हो, काम ने ही मानों अतिशय सुन्दर शरीर धारण कर लिया हो—ऐसे चत्तराज उदयन के पास जानर वासुदेव ने कहा—देव की जय हो ॥ ६१६ ॥

परिमुक्तमपि नचत्वं शृंगारं मदनपर्वणा नीतम् ।

भजमानो भजमानां म्यागतवचसाऽभिनन्य तामूचे ॥ ६१७ ॥

परम अनुरागवती वासवदत्ता को स्वागत करते हुए राजा ने कहा, अन्त और शहर सम्पूर्ण रूप में अनुभूत शृंगार भी मदन महोत्सव के कारण फिर से अनुत्तपूर्व की भाँति नया ही हो जाता है<sup>१</sup> ॥६१७॥

भर्गविलोचनपावक्दाहाभ्यधिका मनोभवो मन्ये ।

प्राप्स्यति तव करसगमसुराविरहसमुत्थिता पीडाम् ॥ ६१८ ॥

कामदेव को शिव की ओर को अग्नि से बचने का जितना दुःख हुआ था, उससे भी अधिक दुःख उसे तुम्हारे हाथ के स्पर्श के विरह का होगा—ऐसा मैं मानता हूँ । ( पूजा करते समय कामदेव को तुम्हारे हाथ का स्पर्श उसे मिल जायगा, परन्तु पूजा का समाप्ति पर तुम्हारे हाथ के हटने से विरह का दुःख उसको होगा ) ॥ ६१८ ॥

सा मन्मथमभ्यर्च्य (भ्यार्चस्?) चित्तिनाथ तदनु साधिक तस्याम् ।

परमा मुक् वहन्त्या विप्रह्वन्मदनमनसि कन्यायाम् ॥ ९१६ ॥

वासवदत्ता ने प्रथम कामदेव की पूजा की, फिर इसके पीछे विशेष रूप से राजा की पूजा की । इससे कया-सागरिका ( रत्नावली ) के मन में विश्वास हो गया कि कामदेव शरीरवाला है इसलिये उसने अतिशय प्रसन्नता हुई । ( सागरिका ने कामदेव की पूजा नहीं देखी—उदयन का ही पूजा को देख कर कामदेव को शरीरवाला समझा—इससे प्रसन्नता हुई क्योंकि उसके घर में अशरीरी कामदेव चित्ररूप में पूजा जाता था ) ॥ ६१९ ॥

शृंगाररसममुद्र सोत्कलिक निपितिते तथा नृपसौ ।

तारमधुरस्फुटार्थं नग्नाचार्यं पपाठ नेपथ्ये ॥ ६२० ॥

उत्कण्ठा के साथ शृंगार रस के समुद्र में उदयन को गोता दाते देख कर नग्नाचार्य वैतालिक ने ऊँचे और मधुर स्वर में स्वप्न अर्थ वाली इस आर्या को परदे में से पढ़ा ॥ ६२० ॥

नयनानन्दमरारिडतमण्डलमभिरामममृतरश्मिमिव ।

सायन्तन आस्थाने चित्तिपतय सन्त्युदयन द्रष्टुम् ॥ ६२१ ॥

आँखों को आनन्द देनेवाले सम्पूर्ण पृथ्वी में अभिराम चन्द्रमा के समान शीतल राजा उदयन का देखने के लिये सब राजा लोग सायंकाल के समय सभामण्डप में एकत्रित हुए हैं ॥ ६२१ ॥

उच्चारितेऽन्यनाम्नि त्रिदशपती सत्तृणाच्च्युतपदायाम् ।

उत्पन्नविस्मयरतिनिदधे नरमर्तुरात्मना हृदये ॥ ६२२ ॥

१ वाच प्रसेश येश-व्यापार स्थितिः । वदन्वपन्नामि ।

चिरहृदोऽपि हि यूनां नक्त्यमुपनीयते रागः ॥

वैतालिका के मुन से कुछ थोड़े से ही शब्द निकलने पर सागरिका सोचने लगी कि यह इन्द्र का अथवा किसी अन्य का नाम लेंगे । परन्तु जब उसने उदयन का नाम लिया तब सिंहलेश्वर की कन्या सागरिका के मन में विस्मयपूर्ण स्नेह प्रेम उत्पन्न हो गया—उसे आश्चर्य हुआ ॥ ६२२ ॥

अयमुदयनः स राजा वातः सत्कृत्य मां ददौ यस्मै ।

हन्त परप्रेषणमपि न निष्फलं साम्प्रतं जातम् ॥ ६२३ ॥

क्या यह वही उदयन है, जिसकी मुझे पिता ने सम्मान के साथ सौंपा था । दूसरे के यहाँ दासकर्म भी मेरा निष्फल नहीं हुआ—इसकी मुझे प्रसन्नता है ॥ ६२३ ॥

यावन्न वेत्ति कश्चित्तावद्विस्तारितमेव निर्यामि ।

इति कथमपि नायस्तो हत्वा दशमुत्सर्ज रंगभुजम् ॥ ६२४ ॥

जब तक रोहँ दूसरा नहीं जानता, तब तक मैं यहाँ से हट जाती हूँ । इस प्रकार सोच कर किसी प्रकार नायक का आँखा से उबकर रंगमञ्च को छोड़ गई ॥ ६२४ ॥

कन्वर्पमहमहोत्सवकृतद्वयैर्नावधारितोऽगमाभिः ।

संध्यातिक्रमकालः पश्य त्वं प्रियवयस्य तथा हि ॥ ६२५ ॥

कामदेव ने महोत्सव में मन लगा रहने के कारण, हमने संध्याकाल को गिनतुल मुला ही दिया, हे मित्र ! देख—॥ ६२५ ॥

उद्यमनगान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङ् निशानाथम् ।

परिपाण्डुना मुनेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी ॥ ६२६ ॥

यह पूर्ण दिशा अपने पीले मुख से उदयाचन में छिपे चन्द्रमा की सूचना दे रही है; जिस प्रकार कि सौँडे रमणी अपने पीले चेहरे से हृदय में स्थित प्रिय की सूचना देता है ॥ ६२६ ॥

देवि त्वन्मुखपद्मं पद्मान् विदधाति पश्य निच्छायात् ।

अक्षयोऽपि लज्जिता इव शनैः शनैस्तदुदरेषु लीयन्ते ॥ ६२७ ॥

हे देवा ! देखो कुहना मुख-कमल-इन कमलों को भी कान्तिहीन कर रहा है, भ्रमर भी लज्जित होकर धीरे-धीरे इन कमलों के अन्दर छिप रहे हैं ॥ ६२७ ॥

पृथमभिधाय चित्रैश्चरखन्यामै परिक्रम्य कृत्वा ।

नैष्कामिक्या धनया विनिर्यया नायकोऽपि सह सर्वैः ॥ ६२८ ॥

इस प्रकार सत्ता समय का वर्णन करने, दो-चार बदन रत्नमय पर चलकर राजा बाहर निकलने की प्रथा-नीति को बोलते हुए, सब पात्रों के साथ निम्न गया ॥ ६२८ ॥

१. भ्रमरान्ते निष्क्रमगे पात्राणां गीयते प्रथमेषु ।

निष्क्रामोपागत्युषं विद्यान्नैष्कामिकीं तां तु व

अवे जातसमाप्तौ गीतातोद्यध्वनौ च विश्रान्ते ।

प्रेक्षणकगुणग्रहण नृपसूनु प्रववृते कर्तुम् ॥ ६२६ ॥

अक समाप्त हो जाने पर, गीत-वाद्य-शान्त हो जाने पर राजपुत्र समर भट्ट नाटक के भाव अभिनय-संगीत आदि गुणों की विवचना करने में प्रवृत्त हुआ ॥ ६२६ ॥

नाम्यप्रयोगतत्त्वे मत्तयो न विशन्ति मादृशा प्राय ।

वाहनयानपदातिग्रामादिककार्यदत्तहृदयानाम् ॥ ६३० ॥

मुझ जैसे लोगों की बुद्धि प्राय करके नाम्य प्रयोग के मर्म को समझने में नहीं चलती । क्योंकि हम लोगों का मन तो घोड़े, हाथी, आदि वाहन, रथ आदि यान, पदाति, ग्राम आदि के कार्यों में ही लगा रहता है ॥ ६३० ॥

आस्ते लिखितो ग्रामो गृहाण त सत्प्रदेशवहुभूमिम् ।

वासय तत्रावास भवसि तत्तत्प्रभुसुरो दिवसै ॥ ६३१ ॥

अच्छी उपजाऊ भूमिवाला गाँव तुम्हारे नाम लिए दिया उसको लेकर वहाँ निवास करो थोड़े दिनों में तुम वहाँ के ठाकुर बन जाओगे ॥ ६३१ ॥

कृतजीघनसत्थो हि त्वमपि किमर्थं करोषि विशप्तिम् ।

अर्पय वा यदि नेच्छसि कुरु हस्तदानेन ॥ ६३२ ॥

जीघन निर्वाह का प्रबन्ध हो जाने पर भी क्यों अब चेतनबुद्धि की माँग कर रहा है, यदि नौकरी करने की इच्छा नहीं है, तो नौकरी को छोड़ दो ॥ ६३२ ॥

न च पत्तयो न सप्तिर्न च पोष्यजनस्तथाप्यसन्तुष्ट ।

लभमानेऽपि सदा य चिरन्तनत्वाभिमानेन ॥ ६३३ ॥

तुम्हारे पास न तो पदाति-सिपाही हैं, न धुडसवार हैं, और न स्त्री पुत्र नोकर आदि के पोषण का भार है तो भी जो तुमको मिल रहा है, उससे सदा असन्तुष्ट रहते हो, तुम समझते हो कि मैं पुराना नौकर हूँ, इससे मुझे और अधिक मिलना चाहिये ॥ ६३३ ॥

विहसिक्तोन्मुखत्वं दूरत एवावधारितं भवत ।

तूष्णीं क्रियतामस्मान्छोष्यसि कार्यं प्रतीहारात् ॥ ६३४ ॥

तुम जो कहना चाहते हो, इसे मैंने दूर से ही तुम्हारा मुख देखकर जान लिया है । चुप होकर बैठ जाओ, दारपाल से कार्य की सूचना तुमको मिल जायेगी ॥ ६३४ ॥

यूयं कुटुम्बमध्ये, वयं गम्यते, गोत्रपुत्रसामान्यम् ।

आदाय संविभागं स्वगृह इव स्थीयता यथासौख्यम् ॥ ६३५ ॥

तुम तो घर के आदमी हो, कहाँ दूसरी जगह जा रहे हो, गोत्र कुल, पुत्र सन्तान की भीति अपना भाग— हिस्सा लेकर सुख पूर्वक यहीं रहो ॥ ६३५ ॥

अभ्यन्तरव्ययार्थं न विलब्धो यो मया महोद्वगः ।

तत्रापि तेऽनुबन्धो जाने किं करोमीति ॥ ६३६ ॥

पर तर्पणान्तरागो तर्पण के लिये जो पड़ा ग्राम मैंने अलग कर दिया है, उसकी आय में नहीं लेता, इस पर भी तुम्हारा माँग बराबर बनी ही रहती है, मैं नहीं जानता, क्या करूँ ॥ ६३६ ॥

प्रथमतरमेव कल्पितमनल्पफलजीवन प्रदेशस्थम् ।

अद्यापि ते न जात, नियोगिना पश्य मन्यरताम् ॥ ६३७ ॥

मैंने पहले ही अतिशय लाभ देने वाला भूमिभाग दे दिया है, परन्तु आज तक वह तुमको नहीं मिला, देखो काम करने वाला का आलस्य ॥ ६३७ ॥

एवमप्यैरनुदिनलाभोदयमोहकारिभिर्वचनैः ।

फलशून्यैरनुजीवी प्रतारित क रियत्कालम् ॥ ६३८ ॥

इस प्रकार प्रतिदिन लाभ द्रव्यताम, उदय उन्नति विषयक भ्रमेले पाले, व्यर्थ के विषय में नोकरों से छेतराते हुए—उगे जाते हुए कितना समय चला जाता है ॥ ६३८ ॥

एतद्विषये नैपुण्यमत्र तु भूमिभुजा समाश्रित्य ।

मुखरतया कथयामो जडमिव सामाजिकोचित किञ्चिन् ॥ ६३९ ॥

नाटक के विषय में राजा लोग अच्छे पारखी होते हैं, इस लोकप्रसिद्धि के कारण सामाजिकों के अनुसार मूर्ख की भाँति कुछ थोड़ा सा कहता हूँ ॥ ६३९ ॥

सप्ताश्रय पङ्कजमा शरीरस्त्रिप्रमाणपरिमाण ।

सत्त्वाधिक्याज्ज्येष्ठो व्यस्तसमस्तस्त्रिभिर्विनिष्पाद्य ॥ ६४० ॥

नाटक का शरीर—सात स्वर्ग वाता है [ पट्टन, ऋषभ, गाधार, मध्यम, पचम, जैवत और निपाद ] इनकी मुखर सरस, सरण, मधुराक्षर, अलंकार आदि छह आत्मा हैं । नाटक भी शरीरधारी है—शरीर की भाँति है, इसका तीन प्रमाण [ लोक, वेद और आख्यायन ] परिमाण हैं । वाच्य प्रयोग में सत्त्व की अधिकता रहने से श्रेष्ठ है । तीन—समा, सातोबहा, गोपुच्छा इन तीन लक्ष्यों आसार प्रसार द्वारा सम्पादित होता है ॥ ६४० ॥

१ उद्गस्तु नारीखण्डप — ऊर्ध्वतरादधमा इमं पतनादुत्तममद्वयम् ।

उद्गमश्च निवर्तश्च स एव द्वयं इत्यपि ॥ वाचस्पतिः ।

पतन—पचास गॉय का । कवट—चारसौ गॉय का ।



स (सु?) कुमारविद्वन्मित्र उपरजकरजितो विविधवृत्ति ।

आदेयहेयमध्यैर्भावे सपादित प्रयोगोऽयम् ॥ ६४१ ॥

गान-वाद्य-नृत्य अभिनय आदि सुसुमार त्रियात्र्या से नाटक ओत प्रोत होता है, गमक आलाप से सयुक्त है भारतीय, कौशकी, सात्वती, आरम्भो चार वृत्तियों वाला है, आदेय-ग्रहण करने योग्य हेय-त्याज्य, मध्य व्यभिचारि भावों के साथ यह नाटक किया गया ॥ ६४१ ॥

गम्भीरमधुरशब्द परिवृद्धितगीतविविधभगयुतम् ।

दर्शयतो वैचित्र्यं न भ्रष्टो चादकस्य लयकाल ॥ ६४२ ॥

सुरजादिवाद्य वादक का विस्मयजनक बजाना गम्भीर होने पर भी मधुर था, नाना प्रकार के गीतों की परम्परा से मिला हुआ था—उनसे बड़ा हुआ था, लय का समय वहीं भा चुका नहीं ॥ ६४२ ॥

अपरित्यक्तस्थानकरसकाकुल्यजितस्फुटार्थपदम् ।

अभिरामाविश्रान्त पठित निरवद्यमखिलभाषासु ॥ ६४३ ॥

- १ नाटक को पुरुष के रूप में वर्णित किया है—पुरुष में रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और हृन्त ये सात भात हैं, ये शरीर के आश्रय हैं, शरीर इनमें आश्रित है—नाटक में भी सात स्वर हैं । पुरुष में छ आत्मा हैं—अक्षमय, प्राणमय, मनोमय बुद्धि, आनन्दमय, पाच कोष या नेत्र, कर्ण, रसना, त्वचा, नासिका पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और आत्मा ये छ आत्मा हैं, नाटक में—सुस्वर आदि छ आत्मा हैं । पुरुष में शरीर के अन्दर रहने वाला जीव शरीर है, प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन प्रमाण हैं, सत्त्व रज और तम इन तीन गुणों में सत्त्वगुण सबसे अधिक भ्रेष्ठ है । स्थूल-सूक्ष्म और कारण इन तीन शरीरों के समस्त-समष्टि रूप में बिनाट, हिरण्यगर्भ और ईश्वर ये तीन बनते हैं, व्यस्त-व्यष्टि रूप में प्राज्ञ, सैत्रस, विरवाक्य ये तीन बनते हैं । सुसुमार भूतदया आदि कामज भावों से युक्त, जप, याग आदि क्रियाएँ हैं, रमणीय दर्शन माता आदि से प्रसन्नता मिलती है, काम, क्रोध, दुर्ष, शोक आदि नाना प्रकार की चित्तवृत्तियाँ हैं, कुछ पदार्थ शत्रु-हृत्त हाने से ग्रहण करने योग्य हैं, ॥॥ पदार्थ प्रतिकूल होने से त्याग्य हैं, और कुछ पदार्थों के प्रति उदासीनता उपेक्षा का भाव रहता है । इस प्रकार का पुरुष जीवात्मा है ।

- २ तालान्तरालवर्त्ती य स कालो लय उच्यते ।

विविध स च विज्ञेयो द्रुतो मध्यविलम्बित ॥

पात्रों के पठित की प्रशंसा—पात्रों के पढ़ने में उर, कण्ठ और शिर इन स्थानों का त्याग नहीं हुआ, मन्द्र मध्य और तार स्वर से पढ़ा जाता था, पढ़ने में रस, शृङ्गारदि, काकु—अर्थ और पद सब विलुप्त स्पष्ट थे। नाटक में प्रयुक्त होनेवाली सब भाषाओं में पठन, सुन्दर, स्वावट रहित तथा दोषशून्य था ॥ ६४३ ॥

नियमितदीपनगमनं द्रुतमप्यविलम्बिताललययुक्तम् ।

रसवत्स्वरोपपन्नं कृतसाम्यं साधु गाढभिर्गीतम् ॥ ६४४ ॥

गायकों की प्रशंसा—गायकों ने भी अच्छे प्रकार उत्तमता से गाया—नियम से स्वरों का आरोह अनरोह आदि हुआ है, द्रुत-मध्य विलम्बित इनसे ठीक प्रकार मिलते ताल और लय थे, शृङ्गार-योर आदि रसों के अनुसार स्वर आवाज थी, स्वरों में परस्पर धरातर समता कनी रही ॥ ६४४ ॥

प्रकृतिविशेषाद्यस्थाप्रतिपादकवैपरचनसामग्रा ।

अनुरणमभ्यतीतं सिद्धिद्वयसंपदा धाराम् ॥ ६४५ ॥

नाटक की प्रशंसा—राजा, विदूषक आदि, नायक-प्रतिनायक आदि के स्वभावविशेष एवं कामकृत अभिलाषा आदि व्यवस्था को बतानेवाली पात्रों की वेशभूषा की सम्पूर्णता से आङ्गिक, वाचिक आदि अनुरण करने में सबको नीचे कर दिया एवं सगुणा और सालकार दोनों प्रकार को निर्दोष सिद्धि एवं स्तुति प्राप्त की ॥ ६४५ ॥

भरतमुत्तरुपदिष्टं क्षितिपतिनद्रुपावरोधनारीणाम् ।

मन्ये ता अपि नाट्ये शोभासंशोदनीदृशं नापुः ॥ ६४६ ॥

भरत के पुत्र—कोदण्ड आदि ने नट्य राजा की अन्त पुर-मुन्दरियों को नाटक की चैती शिक्षा दी थी, मैं मानता हूँ उन्होंने भी नाट्य के नियम में इस प्रकार की कान्ति को प्राप्त नहीं किया था ॥ ६४६ ॥

सुरिलष्टसन्धिवर्णं सत्पात्रमुवर्णयोजितं सुतराम् ।

निपुणपरीक्षकदृष्टं राजति रत्नावलीरत्नम् ॥ ६४७ ॥

१. यथा जन्मान्तराभ्यापान् कण्ठे कस्यापि रक्ता ।

तथैव पादमोन्द्यं नैकजन्मविनिर्मितम् ॥ वाचर्याभाषा ।

ओष्ठ, प्रसाद, माधुर्य औदार्य और साम्य ये चार गुण पठन के हैं ।

२. हास्यरुद्धानयोः स्वरिलोचनम्, तौरादिद्रुतेन्द्रुदात्तस्वरितं, कदम्बवीभसमयानकेष्वनुदात्तस्वरितमुत्पादयेत् ।

यह रत्नवली नाटिका रत्न की भाँति शोभित हो रही है, (रत्नावली के पक्ष में)—इस नाटिका में सुख प्रतिसुख गम विमर्श और निर्दहण पौँचों सन्धियों अच्छी प्रकार से सशिल्प मिली है, उत्तम पात्र एवं उत्तम वर्ण अक्षर शब्दों से यह युक्त है, चतुर पदावकों ने भली प्रकार परीक्षा का है। (रत्न के पक्ष में)—रत्न का सविबन्ध भली प्रकार से जुटा है, अच्छे कारीगर ने सुवर्ण में भली प्रकार जड़ा है, रत्न परीक्षका ने भी भली प्रकार से रत्न की परीक्षा की है ॥ ६४७ ॥

एवविधगुणकथनप्रसगिनि धिमावितात्मनृपतनये ।

पठति स्मार्थामन्य स्मृतिविषयमुपागता प्रसंगेन ॥ ६४८ ॥

इस प्रकार से नाटक के गुणों की प्रशंसा करने में राजपुत्र के मन लगाये रहने पर, किसी दूसरे व्यक्ति ने प्रसंगवश बंद आई इस आवाज को पढ़ा ॥ ६४८ ॥

सप्रामादनपसृति प्रेक्षाभिज्ञा सुभाषिताभिरति ।

आच्छोदनाभियोग कुलनिष्ठा राजपुत्राणाम् ॥ ६४९ ॥

सप्राम से न भागना, नाट्य की समझना, सुभाषित—सुन्दर हितकारी वचनों में व्यसन, मृगया में अभ्यास ये राजपुत्रों के धर की विद्याएँ हैं ॥ ६४९ ॥

एतद्वस्तुनि याते श्रुतिमार्गं नृपतितन्दनो रसत ।

आरब्धकथाच्छेदकमापेटवर्णनं चक्रे ॥ ६५० ॥

इसको सुनते ही राजपुत्र समरभट्ट ने तुरन्त ही प्रारम्भ की हुई कथा को समाप्त करने मृगया का वर्णन प्रारम्भ किया ॥ ६५० ॥

चललक्ष्यवेधकौशलमखप्रजवे स्थिरासनाभ्यसनम् ।

भूमिविभागज्ञान भवन्ति मृगयाभियोगेन ॥ ६५१ ॥

मृगया के अभ्यास में अस्थिर लक्ष्य के वेधन में कौशल होता है, दीखते हुए घाँव पर दृढ़ता से साथ बमर बैठा जाता है, मृगया में नदी, पर्वत, जंगल क्षेत्र आदि रूप में पृथ्वी का परिचय होता है ॥ ६५१ ॥

१. न तच्छ्रुतं न त एवमुक्तं न सा विद्या न सा कला ।

नासी योगा न तरुणम एवाटङ्गस्मिन् न दृश्यते न भरतनाट्यशास्त्रे

२. मृगया व खलम मेदरउदङ्गुशोदर खसु भवमुपायनयोग्यं चपु ,

सखानामाप छवते विकृतमखस भवमाधयो ।

तरुणं स च पविर्ना यदिपव सिप्यन्ति लक्ष्य खले,

मिप्यैव व्यसन वदन्ति मृगयामीदम्भनोऽ कुत ॥

शान्ता १५.

वहति जवेन तुरगे निद्रिडस्थितपादकटक्रपादाप्र ।  
 तिर्यक्प्रणिहितकाचो निम्नोन्नतमप्रतो मुनः पर्यन् ॥ ६५० ॥  
 यावत्प्राण धात्रत्याकुलिते निश्चन्द्रुमिर्भीत्या ।  
 गोचरपतिते जीवे लघुक्रिय क्षिपति मार्गेण धन्य ॥ ६५१ ॥  
 (सदानितकम्)

वेग से गैन्ते हुए घोड़े पर दबता से बैठे, रक्षा में पैर का अगला भाग डाले, शरीर का आग की ओर झुकाने, आग का नाचा-ऊँचा भूमि का देखते हुए, शिकारा कुत्तों से भय से प्रार्थना का वाता लगाकर दौड़ते हुए प्राणी के आँख के सामने जाने पर फुत्ता से तुरन्त जाग चलाना-शिकारा देने लिये अति शय गौरव का बात है ॥ ६५०-६५१ ॥

मूले स्थितस्य निवृत्त मृगशुभिन्वाद्य ङीकृत निरुदे ।  
 पातयतो मृगमुत्प्लुतमव्यपदेश्य मुख निमपि ॥ ६५४ ॥

वृद्ध का मूल में शान्त निश्चल छिपकर, जैन्कर-शिकारियों द्वारा धाली धनस्तर आदि बचाकर समीप में लाये, कूदते हुए मृग को बाण से मार कर गिराने में एक अनिर्बचनाय श्रान्त मिलता है ॥ ६५४ ॥

गीतश्रवणोत्कर्ष निवृत्तलक्षणकनलगर्ममुखहरिणम् ।  
 उपवेशितमस्मन् स्पृहणीया एव गृह्णन्ति ॥ ६५५ ॥

गीत का सुनने का लालसा से जानों को खड़े किये, मुख में तिनकों के कणल को लिये, निश्चल शान्त बैठे, हिरण को भाग्यमान हा जानित पशु पाते हैं ॥ ६५५ ॥

दावानलसन्तापान्निर्वात गहनवीरघोऽभिमुखम् ।  
 ओ निरुणद्धि स धन्य सूकरमेकप्रहारेण ॥ ६५६ ॥

अगन में लगा दवानल का गरमी से उचसर निरुलते हुए—सामने की गहन मण्डियों में घुसते हुए सुअर को माले का एक हा चोरे से अपने पर चोंट करने स ओ शिकारी रोक देता है, वह स्तुति करने योग्य है ॥ ६५६ ॥

घनवृत्तोदरमुप समुपेत्य स्वैरममृतपदशब्दम् ।  
 व्याधवर एव कुरुते निर्जीव इत्येव शशकम् ॥ ६५७ ॥

घने वृत्ता में सुगन्ध सोते हुए खरगश क पास उत्तम शिकारी पैरों की आवाज़ किये बिना धाने से पटुकर, जिना किसी परिधम के सरलता से ही खरगश का शिकार कर लेता है ॥ ६५७ ॥

इति विदधति सैहभटात्रागेटकशक्तिलाघवश्लाघाम् ।

इदयागतामगायत् प्रसंगतो गीतिकामपर ॥ ६५८ ॥

समरभट्ट के इस प्रकार से मृगया सामर्थ्य में द्विप्रकारिता का वर्णन करते रहने पर किसी अन्य व्यक्ति ने प्रसंगवश मन ॥ आई इस त्रापा को गाया ॥ ६५८ ॥

आस्ता व्यापाररस प्रवर्तिता सकथाऽपि मृगयाया ।

अन्तरयति सन्मनसामाहारादिविच्योचित कालम् ॥ ६५९ ॥

मृगया सम्बन्धी सुन्दर रस वाली कथा को भी अब नन्द करना चाहिये, इसने कारण आहार आदि का उचित समय बीत रहा है ॥ ६५९ ॥

अवधार्य गीतिकार्थं दानं प्रति धननियुत्तमभिधाय ।

उत्तरथी समरभटो मजरिका समवलोकयन् प्रेम्णा ॥ ६६० ॥

गीतिका के अभिप्राय को समझकर कोपाध्यक्ष को पाना के लिये दान देने की आज्ञा देकर, मजरी को प्रेम से देखता हुआ समरभट्ट उठ खड़ा हुआ ॥ ६६० ॥

गत्याऽथ स्वावसथ विनिवर्तितभोजनादिवर्तव्य ।

मजरिकाकृष्टमना अभिदध्यौ सचिवसन्निधावेद्यम् ॥ ६६१ ॥

अपने निवास स्थान पर जाकर, भोजन आदि करणीय कार्यों को सम्पन्न करके, मजरी में अनुरक्त मन वाला समर भट्ट मन्त्री से इस प्रकार से कहने लगा ॥ ६६१ ॥

भ्रूभगस्मितवीक्षितमृदुवक्त्रघर्षोऽगहारगमनेषु ।

क्षुप्तुमप्रहरण एको युगपद्विहिताश्रय कथं सत्या ॥ ६६२ ॥

उस मजरी के भ्रूभग, स्मित [ मन्दहास्य ], विशेष रूप से देखने में, कोमल स्वर में, वक्रोक्ति में, हाथ पैर आदि अंगों के चालन में, चलने में, अनेकों कामदेव ने किस प्रकार से एक साथ में आश्रय लिया है ॥ ६६२ ॥

सुन्दोपसुन्दनाश फलमात्मभुवस्तिलोत्तमासृष्टे ।

जनमृतये ता सृजता किं दृष्टं सुरहितं तेन ॥ ६६३ ॥

तिलोत्तमा की रचना करके तो ब्रह्मा ने सुन्द और उपसुन्द दो राक्षसों का घघ किया था । मनुष्यों की मृत्यु के लिये इस मजरी को बनाकर ब्रह्मा ने देवताओं का क्या लाभ सोचा ॥ ६६३ ॥

सुमनोमि परिकरिता मृगशावकतरलचक्षुपस्तस्या ।

कामोचितफलहेतुर्देहभृता दीर्घिका वेणी ॥ ६६४ ॥

मृगशावक के समान चञ्चल आँखों वाली मजरी की फूलों से गूँथी लम्बी वेणी, शरीरधारी मनुष्यों में प्रबल काम विकार को उत्पन्न करने वाली है ॥ ६६४ ॥

कमलमिव वदन्तकमलं पिबन्ति तस्यास्त्रिविष्टपत्रप्राः ।

सदलिक्रमपेतदोषं सविभ्रमं मधुमदावात्मम् ॥ ६६५ ॥

मंजरी के कमल के समान मुक्कमल का स्वर्ग से च्युत मनुष्य ही पान करते हैं<sup>१</sup> । मंजरी का मुख तिलक से भूषित, बाल आदि दोषों से रहित, विलास युक्त, मधु—मधु के समान के मदकारक तथा ईषद् रस वर्ण है । ( कमल के पद में )—कमल मंजरी से युक्त—रात्रि से युक्त, दिन में निरलित, तरंग वायु आदि से विशेष रूप में हिलने वाला, मकरन्द से भरा, ईषद् रसमय लाली लिले है ॥ ६६५ ॥

यः शैलेन्द्रनितम्बं सुरताप्यै सेवते तपोनिरतः ।

सृहयति सोऽपि नितम्बं सुरताप्यै समवलोक्य तत्त्वंग्याः ॥ ६६६ ॥

उन में लगे हुए जो प्यास देवत्व प्राप्ति के लिये पर्वतों के कटिभाग—मध्यभाग का सेवन करते हैं, वे भी उस कामन्त्या के नितम्ब को देखकर सम्भोग की चाह करने लगते हैं<sup>२</sup> ॥ ६६६ ॥

त्रिरुते मध्यविभागो पाक्षोर्युगलं परद्रयोपेतम् ।

जनयति तदपि मृगाक्षी सहस्ररुतोऽधिकं तापम् ॥ ६६७ ॥

उस मंजरी का मध्यभाग—कटि, ठडर भाग तान अन्धियों से ( दो ऊर्वन्धियों और एक निरु ) बना है, इसमें तीन वांछ्यो हैं । दोनों गार्ध्रों में दो कर ( हाथ ) हैं । तो भी यह मृगाक्षी स्वर्ग से भी अधिक सताव देती है । इसके तो पाँच ही कर हैं—दूर के हजारों कर हैं ( न—हाथ एवं किरणें—दोनों अर्थ हैं ) ॥ ६६७ ॥

सा अग्यरा मुग्धना प्रहर्षिणी सैन सैव तनुमध्या ।

न करोति कस्य विरमयमिति नभिरामंजुभाषिणीसैव ॥ ६६८ ॥

१. ( क ) क्षीणे पुण्ये मय्यंशकं विशन्ति—गीता;

( ख ) स्वल्लीमूर्ते सुषरितफले स्वर्गिणी गता ये ।

२. विभ्रम—प्रोचः स्मितं च कुमुभाभरणादिवाक्षा,

तद्वर्जनं च सदसैव विमण्डनं च ।

आज्ञेय कान्तवचनं छपनं सखीभि-

निष्कारयस्यतिगतैः न विभ्रमः स्यात् ॥

नागरसर्वस्व १३।१३.

३. मानसयमुल्कायं विचार्यं कार्यमार्गाः समर्थादपिदं वदन्तु ।

तेष्वपि नितम्बा किमु मूढाणामुत स्मरस्मेरविजायिनीनाम् ॥ शृङ्गारशतक.

मज्जी सग्वरा-माला को धारण किये, सुवदना-शोभन मुख वाली, प्रह  
पिण्णो-हर्षदात्री, तनुमध्या-सूक्ष्म मध्य भागवाली-सुश्रोणी, रुचिरा-सुन्दरी,  
मृदुभाषिणी-मधुर भाषणशीला-होने से किसको आश्चर्य में नहीं डालती-  
सबको चकित करती है। सग्वरा आदि छुद्दों का एक साथ समावेश किसको  
आश्चर्य में नहीं डालता? ॥६६८॥

अनुकुर्वत्या कन्या तथा तथा नायकस्तथा दृष्ट ।

येन जरत्त्वप्यटनी धनुष स्पष्टा वशार्धवाणेन ॥ ६६९ ॥

रत्नावली नाटिका के अभिनय में रत्नावली कन्या का अभिनय करते हुए  
मज्जी ने नायक उदयन को इस प्रकार से देखा था, जिसको देखकर ऐसा प्रतीत  
होता था-मानो कामदेव ने अपने धनुष के प्रान्त भाग से बुद्धों को स्पर्श कर  
दिया हो-बुद्ध भी कामातुर बन गये थे ॥६६९॥

रूप यौवनचित्रितमनगविकृतानि नाट्यदीप्तानि ।

शमितामपि शमगर्व समुत्पन्नत्यविकल तस्या ॥ ६७० ॥

मज्जी का रूप, यौवन, मण्डन, नाट्य से उद्दीप्त शृंगार चेष्टाय, मुनियों के  
शान्ति के अभिमान को सम्पूर्ण रूप में चूर चूर कर देती हैं ॥६७०॥

दग्धेऽपि वपुषि भीतिं न विमुचति नीललोहितसमुत्थाम् ।

तत्क्षेत्रे वसति यत प्रमदारूपेण शम्बरध्वसी ॥ ६७१ ॥

शरीर के जल जाने पर भी कामदेव नाल-लाहित [ शिव ] के भय से आज  
भी भयभीत होकर स्त्री के रूप में मज्जी के शरीर में रह रहा है। क्योंकि  
स्त्री अवध्य है, इसलिये काम ने स्वरूप ग्रहण किया है। [ शम्बरध्वसी  
कामदेव ] ॥६७१॥

यदि य परलोकमति शृणुत श्रेयस्तपोधना मत्त ।

उत्सृज्य यात तूर्णं वारवधूमुपित स्थानम् ॥ ६७२ ॥

हे तपोधन मुनियों! यदि तुमको परलोक स्वर्ग की इच्छा है, तो मुझसे  
मोक्ष को तुमो, वेश्याओं से सेवित स्थान को छोड़कर जल्दी से दूर भाग  
जाओ ॥६७२॥

१. सग्वरा - अमनोमानां प्रवेण त्रिमुनियतियुता सग्वरा कीर्तितेवम् ।

सुवदना-ज्ञया सप्ताखवर्षाभिमनययुता ग्धौ स सुवदना ।

प्रहपिण्णो-प्याराभिर्नजरणा प्रहपिण्णायम् ।

रुचिरा - ब्रह्मी सन्नी गिति वाचरा चतुर्द्धे ।

मधुभाषिणी-सजसा जगौ च यदि मधुभाषिणी - धृन्दोमज्जरी.

२. शृणु हृदय रहस्य यत्प्रशस्त मुनीनां, न खलु न खलु बोधितसन्निधि सन्निधेय ।

हरति हि हरिणाञ्चो क्षिप्रमक्षिभुरग्रं पिहितशमतनुभ्रं विरामपुत्तमानाम् ॥

चिरमपि विकल्प्य निश्चितिरियमेव स्थाप्यते, न गतिरन्या ।

तन्निर्माणे जाता लावण्यमयाः कणा विधेरणवः ॥ ६७२ ॥

देर तत् निचारने के पीछे यही निश्चय हुआ कि इस मजरी के बनाने में 'ब्रह्मा के परमाणु भी लावण्यमय बन गये थे; इसने सिखाया दूसरा कोई यस्ता नहीं दीवता' ॥ ६७३ ॥

आसाद्य समुन्द्रायं तस्याः स्तनयुगलमविद्वत्प्रसरम् ।

क्षपयति यज्जनमेवं कस्त्यक्षयति तद्विवेकवान् पतितम् ॥ ६७४ ॥

मजरी के दोनों स्तन निर्गम रूप में बहते हुए अपनी उन्नति के शिखर पर पहुँच कर मनुष्य का [ निरपराधी मनुष्य का ] नाश कर देते हैं । निवेकी मनुष्य आँवों के सामने आये इन स्तनों को पकड़े जिना कैसे छोड़ सकता है । [ निरपराधी पुरुष को जो माग्ता है, सामने आने पर उस अपराधी पुरुष की बुद्धिमान मनुष्य पकड़ता ही है' ] ॥ ६७४ ॥

स कथं न स्पृहणीयो विपयरतैस्तन्निवम्वविन्यासः ।

शान्तात्मनाऽपि विहितं विश्वसृजा गौरवं यम्य ॥ ६७५ ॥

विपरीतों से विमुक्त शान्तचित्त ब्रह्मा ने मजरी के जिन नितम्बों की भारी बनाया है, उन नितम्बों की चाह विपरीतों में रत पुरुष क्यों न करें ॥ ६७५ ॥

स्मरणार्थस्योत्पत्तिः सुमनस इषवो घलाश्रया शक्तिः ।

सोऽपि व्यग प्रहरति, धातुरहो चित्रमाचरितम् ॥ ६७६ ॥

जिस [ काम ] की उत्पत्ति स्मरण से है; फूल जिसके नाश हैं, अमला जिसकी निवृत्ति नष्ट है, जिसने अग नष्ट हो गये हैं, वह व्यग अलग-काम युवा वृद्ध स्तन पर प्रहार करता है, यह ब्रह्मा का आश्चर्यजनक कार्य है ॥ ६७६ ॥

तिष्ठन्त्यन्ये, दृष्ट्वा सारं जगता तदङ्गनारत्नम् ।

नष्टपठनावधानो भवति ब्रह्मा सनिर्वेदः ॥ ६७७ ॥

दूसरों की बात रहने दी—सारे ससार की सार भूत मजरी को देखकर ब्रह्मा भी वेदपाठ करना भूल जाता है और इसके कारण दुःखी रहता है ॥ ६७७ ॥

१. लावण्य—सुधापलेषु च्छायावास्तरलचमिधान्तरा ।

प्रतिभाति यदनेषु लावण्यं सविद्वेक्यते ॥

२. सुवृत्तमुद्यत पीनमदूरीकृतमायनम् । स्तनयुग्मं तद्वत्प्रस्तं—मविष्यपुराण.

३. नितम्बविन्यस्य नारीयासुन्वतामिमिह—पृथुः । महाभोगाय संशोक्तः—मविष्यपुराण

४. मनोऽहं मूलं हृदयमूर्ते—वृद्धसंहिता ७७।११;

काम जाना म ते मूलं सकल्पाज्जायते किञ्च ॥



यदि पश्यति ता शर्वस्तदपररामासमागमाद्विमुक्त ।

निन्दति मूर्धनि सोम स्मरान्निसधुत्तरं शरीरञ्च ॥ ६७८ ॥

अन्य स्त्रियों से सम्बन्ध करने में विमुख बने महादेव यदि मंजरी को एकबार देख ले, तो शिर में स्थित चन्द्रमा की तथा कामाग्नि से जलते शरीर दोनों की निन्दा करने लगे [ चन्द्रमा से कामाग्नि बढ़ती है, चन्द्रमा काम का उद्दीपक है— “परमसुहृदनगो रोहिणीवल्लभस्य”—विद्वत्शालभञ्जिका—१।१ ] ॥ ६७८ ॥

केशव इह सन्निहित, साऽपि मनोहारिरूपसपन्ता ।

तद्वत्तुश्चयनभुष कथमुज्जति सैन्धवीशकाम् ॥ ६७९ ॥

यह मन्जरी लक्ष्मी के समान अति रूपवती है, उसका वक्षस्त्रयल-स्तनों के औन्नत्य, कठिनत्व आदि सम्पत्ति से युक्त है। इसलिये विष्णु उसमें लक्ष्मी का भ्रम करते हैं, उसी के पास रहते हैं। [ सैन्धवी-लक्ष्मी ] ॥ ६७९ ॥

उदयति न पण्डिताना कथमात्मनि कौतुक गजेन्द्रगति ।

यन्नववयसा पुमा विना क्रियायोगमुपसर्गा ॥ ६८० ॥

उस मन्दगामिनी को देखकर पण्डितों के मन में भी आश्चर्य उत्पन्न होता है, क्योंकि भिनमें अभी जराणी फूटी है, ऐसे पुरुषों में भी विना क्रियायोग के [ सयोग रूप क्रिया के विना भी ] उपसर्ग [ विरहजन्य पीडा ] होने लगते हैं ॥ ६८० ॥

भुतिकुवलयमीक्ष्यता कुवलयता वा त्रिलोचन यायात् ।

हरिणदृशो यदि नस्यात् कनकोज्ज्वलकेसर मध्ये ॥ ६८१ ॥

यदि नील कमल में स्पर्श के समान पोला केशर न होता तो उस मृगाक्षी के कानों में लगे नीलकमल ने आँखों की शोभा लेली है, अथवा आँखों ने उस नील कमल की शोभा ले लिया है, इसका निश्चय करना कठिन होता, पीला केशर ही नीलकमल और आँखों में भेद कराता है ॥ ६८१ ॥

ललनास्तदतुल्यतया पुरुषा अपि तदुपभोगविरहेण ।

गच्छन्ति शोपमनिश, प्रकृतिद्वयजिता स्वस्था ॥ ६८२ ॥

१. व्याकरण में क्रिया के विना य आदि उपसर्ग नहीं बनते, क्रिया के साथ जुड़ने पर ही इनकी उपसर्ग सञ्जा होती है—

‘उपसर्गा क्रियायोगे’ [ पा १।१।२९ ] पाणिनेरिति समतम् ।

निष्क्रियोऽपि वाराति सोपसर्गा, सदा कथम् ॥

परन्तु मंजरी के साथ सम्भोग क्रिया के विना ही पुद्गलों में विरहजन्य पीडा होने लगती है, यह आश्चर्य है ।

अन्य क्रियाँ मजरी के समान न होने की चिन्ता से; और पुनः उसके उप-  
भोग के विषय के दुःख से, रात दिन सूखते जाते हैं, केवल नपुंसक ही  
सत्य है ॥ ६८२ ॥ -

दुर्धृत्तयोर्न वृत्तं स्ताभास्पदमेति तत्पयोधरयोः ।

यौ दत्त्वाऽमलमूर्तिं मध्ये हारं, जनज्ञयं कुरुतः ॥ ६८३ ॥

दोरे आचरण वाले उसके स्तनों का वर्त्तन प्रशस्तनीय नहीं है, जो स्तन  
निर्मल स्वरूप के हार को बीच से रखकर मनुष्यों को भारते हैं ॥ ६८३ ॥

भूमण्डलेऽत्र सकले जातः परमपरमद्वृतं किञ्चिन् ।

नो जाता यदपार्था कृशोदरी चार्तराष्ट्रपाताऽपि ॥ ६८४ ॥

इस सारी पृथ्वी पर इससे अधिक आश्चर्य की बात दूसरी कोई नहीं, इस-  
गामिनी-कृशोदरी का जन्म निर्मल नहीं हुआ, अति रूपरती-हाने से सबके लिये  
आनन्ददायक है ॥ ६८४ ॥

रूप एष मध्यदेशस्तन्व्या नाहर्षमण्डलं बोधुम् ।

शक्त इति कृतं विधिना रोमावलिभूषणं सहजम् ॥ ६८५ ॥

उस तन्वज्ञी का यह पतला मध्य भाग ही ऐसा है, जो कि कितों प्रकार के  
आभरण के भार को नहीं उठा सकता । इसीने ब्रह्मा ने इस भाग में खनन से  
ही रोम पक्ति बना दी [ जीवन के आगमन की सूचना देने वाली रोमपक्ति  
उत्पन्न कर दी ] ॥ ६८५ ॥

सान्मोचर, ईक्षुण्णुगलस्याधीरता, भ्रुवो भंगः ।

तन्त्रंग्या बलमीदृग् जयति जगत्तदपि निरोपम् ॥ ६८६ ॥

उसका निचला ओठ झँकता है, दोनों आँखों में चञ्चलता है, भ्रुवों में  
कुटिलता है, उस तन्वज्ञी का बल इस प्रकार का है, निरभी वह सम्पूर्ण जगत्  
को बीतिती है ॥ ६८६ ॥

यद्वत्तु तितम्बः स्थूलो ररानां, हारं च कुचयुगं पीनम् ।

तटाहुमृणालिकया सापायं कटकयोजनमनुक्तम् ॥ ६८७ ॥

१. पृतराष्ट्र के पुत्रों के साथ पाण्डवों के पुत्र पाण्डवों का एक साथ रहना सबसे  
अधिक आश्चर्य है—औरव-पाण्डव एक साथ रहें—यह आश्चर्य है । इस  
विशेष का परिहार यही है कि उस हंसगामिनी का जन्म भयं नहीं हुआ ।  
कृशोदरी—उदरेयातिनुद्धेन चिकित्सेष मृदुत्वचा ।

यौषिद् भवति मोगाद्या निष्य मिष्टाचमेवनी ॥

पारिजात के गुच्छे की वेशी में धारण करने की इच्छा मूर्त ही कर सकता है। इसी प्रकार मूढ मनुष्य ही नाश्वर्य के वक्ष से कौतुभ मणि की लेने की इच्छा करता है ॥ ६६३ ॥

स्वनियतपुरुषस्पृश्याः पापा वयमन्यथा क्व हीनकुलाः ।

क्व च यूयमिन्द्रकल्पा अनल्पमनसो गुणामरणाः ॥ ६६४ ॥

कहाँ हम हीन कुल में उत्पन्न पापी—अपने ही नियत पुरुषों से [ कुल वाले पुरुषों से] स्पर्श हैं [उनमें ही विवाह आदि हमारा हो सकता है] ? कहीं आप इन्द्र के समान उदार अन्तःकरण विनीत-कुलीनत्व आदि गुणों वाले ? ॥ ६६४ ॥

दुष्पुरुषैः प्रकृतिरियं सस्य तु दग्धात्मजन्मनः काऽपि ।

अगणितयुक्तायुक्तो लगयति चेतो यदस्थाने ॥ ६६५ ॥

दुष्पुरुष, जलमें दे फामदेव का यह स्वभाव ही है कि वह मनुष्यो विवेक रहित बनाकर अज्ञान में लगाता है—सम्बद्ध करता है ॥ ६६५ ॥

या हसति सरोजयती रसान्विता सहजरागरक्तेति ।

ध्यानधिय आत्मधृतिं निन्दत्येकत्र पुरुष आसक्तम् ॥ ६६६ ॥

जो मजरी कमलिनी को भी हँसती है, वह स्नेह वाला मजरा तुममें अनु-रागवती बनी है, [ उसका यह अनुराग स्वाभाविक है ] । एक ही पुरुष में आसक्त [ परमात्मा में आसक्त ] एकामचित्त मनुष्यों की अन्तःकरण वृत्ति की यह निन्दा करता है, उनको भी नीचा दिखाती है—उनकी अपेक्षा भी आप में उसका ध्यान अधिक है ॥ ६६६ ॥

स्निग्धेति नाभिनन्दति जन्मशक्तेनापि सर्पिषो धाराम् ।

पंचाक्षयूतारतिं नानर्बकरागसंगता स्तीति ॥ ६६७ ॥

घृत की धारा से नदी कम से स्निग्ध होने पर भी वह उसकी निन्दा करती है—[ मजरी का स्नेह घृत की धारा से भी अधिक आप पर है ] । अनर्पकारक क्षुद्र में मनुष्य नहीं लगाती ॥ ६६७ ॥

न स्तीति चन्दनलता भुजंगपरिवेष्टिता रसाद्र्तेति ।

न गृणोति कीर्त्यमाना स्वप्नेऽपि मदनमूर्च्छिता मत्सीमा ॥ ६६८ ॥

रस से भरी—सौर्भ से परिवेष्टित चन्दनलता की प्रशंसा नहीं करती [ युग विदग्ध कामुकों से युग होने पर स्वयं स्नेहवती होकर भी मुक्त अनुभव नहीं करती ] । काम से मूर्च्छित मठलों के समान स्वप्न में कही बात भी नहीं सुनती ॥ ६६८ ॥

१. भागवत के अनुसार मदन-प्रद्युम्न मद्यक्षा के उदर से निकले हैं (१०।१५।१३)

काम से मूर्च्छित-कहे हुए गुणों की नहीं सुनता ।

स्थूल नितम्ब भले ही रशना का बोझ उठाये, पीन दोनों स्तन भी भले दार को धारण करें। परन्तु कमलनाल के समान कोमल उसके दोनों बाहुओं में अनर्थकारी बाजूबंद का पहनना उचित नहीं ॥ ६८७ ॥

बहलोपायाभिज्ञा गुणविषये सत्तत्माहितप्रीति ।

यलिन स्थापयति वशे करभोरुर्विप्रहेण मृदुनैव ॥ ६८८ ॥

मनुष्यो को वश म करने के विलास कला कौशल आदि अनेक उपायों का जानने वाली, रूप रसादि इन्द्रिया के गुणों में अनुराग रखने वाली, यह करभोर कोमल युद्ध से ही बलवाना को अपने वश में कर लेती है। अपने अनुग्रह मान से बड़े बड़ों को अपने अधीन कर लेती है ॥ ६८८ ॥

इति तत्पुतिमुखरमुखे राजसुते मकरकेतनाकुलिते ।

समुपागता प्रगल्भा मजरिकाचोदिता दूती ॥ ६८९ ॥

कामदेव से वैचैन राजपुत्र के इस प्रकार से मजरी की स्तुति करते हुए मजरी से मेजी प्रगल्भा दूती राजपुत्र के पास आई ॥ ६८९ ॥

सा सप्रणति पुरत सुमनस्ताम्बूलपटलक निक्षेपे ।

व्यज्ञापयच्च तदनु स्वावसरे सहचरीकार्थम् ॥ ६९० ॥

दूती ने प्रणाम करके, राजपुत्र के सामने फूलों एवं पान की पिण्डियाँ रख दीं, और समय देरकर अपनी सखी का कार्य कहना आरम्भ किया ॥ ६९० ॥

मुररिपुनाभिसरोरुहमघतसीकर्तुमीहते मूढा ।

नक्षत्रराजमण्डलमिच्छति वियत समादालुम् ॥ ६९१ ॥

मूर्ख व्यक्ति विष्णु भगवान् की नाभि से उत्पन्न कमल को प्राप्त करना चाहते हैं। इसी प्रकार आकाश में से नक्षत्रों के बीच से चन्द्रमा को लाना चाहते हैं [ अर्थात् मूर्ख मनुष्य मजरी को प्राप्त करना चाहते हैं वह कमल एवं चन्द्रमा के समान उनके लिये दुष्प्राप है ] ॥ ६९१ ॥

निरचेतनाऽभिकाक्षति पीयूष त्रिदिवसद्वानामभशनम् ।

अभिलपति शयनमुष्ण नवचन्दनपल्लवास्तरणम् ॥ ६९२ ॥

चेतना शून्य व्यक्ति देवताओं के भाजन अमृत को प्राप्त करना चाहते हैं एवं चन्दन के गूतन पत्तों से बने गरम तिलीने पर सोना चाहते हैं [ जिस प्रकार से ये दोनों बातें असंगत हैं उसी प्रकार मजरी का पाना भी असंगत है ] ॥ ६९२ ॥

विदधाति पारिजातकसुमनोनिर्यूहधारणश्रद्धाम् ।

दुर्व्यवसिता जिघृक्षति नारायणवत्सो रत्नम् ॥ ६९३ ॥

पारिजात के गुच्छे की वेशी में धारण करने की इच्छा मूर्ख ही कर सकता है । इसी प्रकार मूढ़ मनुष्य ही नारायण के वक्ष से कौस्तुभ मणि को लेने की इच्छा करता है ॥ ६६३ ॥

स्वनियतपुरुषसदृश्याः पापा वयमन्यथा क्व हीनकुलाः ।

क्व च यूयमिन्द्रकल्पा अनल्पमनसो गुणभरणाः ॥ ६६४ ॥

कहाँ हम हीन कुल में उत्पन्न पापी—अपने ही नियत पुरुषों से [ कुल वाले पुरुषों से ] स्तुत्य हैं [ उनमें ही विवाह आदि हमारा हो सकता है ] ? कहीं आप इन्द्र के समान उदार अन्तःकरण विनीत-कुलान्त्य आदि गुणों वाले ? ॥ ६६४ ॥

दुष्प्रकृतेः प्रकृतिरियं वस्य ॥ दग्धात्मजन्मनः काऽपि ।

अगणितयुक्तायुक्तो लगयति चेतो यदस्थाने ॥ ६६५ ॥

दुष्प्रकृति, जलमेंड़े कामदेव का वह स्वभाव ही है कि वह मनसो विवेक रहित बनाकर अग्न्यान् में लगाता है—सम्बद्ध करता है ॥ ६६५ ॥

या हसति मरोजयती रसान्विता सहजरागरक्षेति ।

ध्यानधिय आत्मवृत्तिं निन्दत्येकत्र पुरुष आसत्ताम् ॥ ६६६ ॥

जो मजरी कमलिनी की भी हँसती है, वह स्नेह वाला मजरी तुममें अनुरागवती बनी है, [ उसका यह अनुयाग स्वाभारिक है ] । एक ही पुरुष में आसक्त [ परमात्मा में आसक्त ] एकाग्रचित्त मनुष्यों को अन्तःकरण वृत्ति की यह निन्दा करता है, उनको भी नीचा दिखाती है—उनकी अपेक्षा भी आप में उसका ध्यान अधिक है ॥ ६६६ ॥

स्निग्धेति नाभिनन्दति जन्मशक्तेनापि सर्पिषो धाराम् ।

पंचाक्षयूतगतिं नानर्ध्वरागसंगतां स्तौति ॥ ६६७ ॥

घृत की धारा सेरों जन्म से स्निग्ध होने पर भी वह उसकी निन्दा करती है—[ मजरी का स्नेह घृत की धारा से भी अधिक आप पर है ] । अनर्पकारक धूप में मनसो नहीं लगाती ॥ ६६७ ॥

न स्तौति चन्दनलता भुजगपरिवेष्टिता रसाद्रेति ।

न शृणोति कीर्त्यमाना स्वप्नेऽपि मदनमूर्च्छिता मत्सीम् ॥ ६६८ ॥

रस से मरी—सौंसा से परिवेष्टित चन्दनलता की प्रशंसा नहीं करती [ भुजग विदग्ध कामुकों से सुत होने पर स्वयं स्नेहवती होकर भी भुजग अनुमन नहीं करती ] । काम से मूर्च्छित मद्युक्ती के समान स्वप्न में कहीं बात भी नहीं सुनती ॥ ६६८ ॥

१. भागवत के अनुसार मदन-प्रलय मद्युक्ती के उदर से निहने हैं (१०।१५।११)

काम से मूर्च्छित-वड़े हुए गुणों को नहीं सुनता ।

चिद्वेष्टि करणमध्ये रसना ताम्बूलरागयुक्तेति ।

शसति मतिं मुमुक्षोरविशिष्टा शशवृषाश्वपुम्भेषु ॥ ६६६ ॥

पाँचों शनेन्द्रियों में वह ताम्बूल की लाली से युक्त रसना—जिह्वा से द्रव्य करती है [ क्योंकि मज्जरी की जिह्वा में स्वाभाविक रक्तिमा है और पान से कृत्रिम लाली आती है, इसीसे उसे इससे द्रव्य है ] । मोक्ष की इच्छा वाले पुरुषों की शश, वृष, अश्व आदि पशुओं में समान बुद्धि की प्रशंसा करती है ॥ ६६६ ॥

नो बहु मनुते रम्भा नलकूबरमभिसृतेति कामार्ता ।

गर्हति च देवगणिकामनुरक्तामुर्वशीं पुरुरवसि ॥ १००० ॥

काम से पीड़ित होकर स्वयं नलकूबर के पास जाने वाली रम्भा को भी वह बहुत मान नहीं देती । पुरुरवा में आसक्त देवगणिका उर्वशा को भी वह कुछ नहीं गिनती [ दिव्य योनि की होकर उसने आदिव्य मर्त्यलोक के आदमी में मन लगाया—इससे उसका भी आदर नहीं करती ] ॥ १००० ॥

हरति मनो नो ह्रियते, रजयति न रज्यते कदाचिदपि ।

गृह्णाति चित्रचरितैरपकृतिभिर्गृह्यते न बह्वीभि ॥ १००१ ॥

मज्जरी दूसरे मनुष्यों का मन हरण करती है, परन्तु अपना मन किसी को नहीं देती, दूसरों का मनोरञ्जन करती है, परन्तु कभी भी किसी में अनुरक्त नहीं होती । विचित्र आचरणों स्वाभाविक विलक्षण विलासों से दूसरों के मन को बश में करता है, और स्वयं दूसरों के किये बहुत से उपकारों से भी बश में नहीं होती ॥ १००१ ॥

१ शेष, वृष और अश्व—ये तीन उपलक्षण हैं—मज्जरी सब प्राणियों में समान बुद्धि रखती है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिना ।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिन ॥ गीता २।१८

कामशास्त्र में शश, वृष और अश्व जाति के पुरुष प्रसिद्ध हैं—वह मज्जरी तीनों में समान अनुराग रखती है ।

शश—स्त्रीजितो गायनश्चैव नारीसखपर सुखी ।

पङ्गुलशरीरश्च श्रीर्माश्च शशको मत ॥

वृष—उपकारपरो नित्य स्त्रीवश श्लेष्माश्लेष्मिणी ।

दशगुलशरीरस्तु मेदस्वी वृषभो मत ॥

अश्व—लुब्धश्च कृपणश्चैव मिथ्यावादी च निभय ।

द्वादशगुलजिह्वस्तु कुशलाऽपि हयो मत ॥

अनगरग [२।१६ १८] पञ्चसायक [२।८।१८] में विशेष रूप से देश का सूचक है ।

प्रेममयीवाभाति प्रेम तु नान्वेव केवलं वेत्ति ।

कण्टकिता भवति रते रतभोगसुखं गृणोति लोकात्तु ॥ १००२ ॥

प्रेम की मूर्ति बनी प्रतीत होती है, परन्तु वास्तव में वह प्रेम की केवल नाम से ही जानती है । प्रेम क्या मैं या रमण क्रीडा की वार्त्ता में उसे रोमांच हो जाता है, परन्तु ब्रह्मानन्द के समान सम्भोग के सुख को अन्य पुरुषों से ही सुनती है, [ उसने कभी अनुभव नहीं किया ] ॥ १००२ ॥

कुरुते विविक्तचाटून् शिल्पविशेषेण न तु रसावेशान् ।

अनभिज्ञा भङ्गनरुजामाकल्पकचेदनां समावहति ॥ १००३ ॥

अपना चातुर्य दिग्गाने के लिये ही कृता विशेष से यह निर्दोष प्रिय वाक्यों की-समस्याओं की रचना करती है; किसी राग के कारण प्रिय बातें नहीं करती [सुशामर नहीं करती] । काम की पीडाओं से अनभिज्ञ है, उनको नहीं जानती, परन्तु कामावस्था सम्बन्धी अनुभवों का उनको ज्ञान है ॥ १००३ ॥

चालैघार्जचरहिता रुरतोश्वरमेत्य चन्द्रलेखेव ।

हृतधनपतिमाहात्म्या प्रवृत्तिरिव रत्नसां पत्युः ॥ १००४ ॥

मंजरी बाल चन्द्रलेखा के [ द्वितीया के चन्द्रमा के ] समान पक्ष है— उसमें सीवापन नहीं है [ कण्ट करने में कुशल है ] । चन्द्रमा की भाँति ईश्वर-महादेव को प्राप्त होकर अधिक प्रकाशित होती है । मंजरी धनी व्यक्ति को प्राप्त करके अधिक विलास वाली बन जाती है । जिस प्रकार से रावण ने कुबेर का सब धन ले लिया था; उसी प्रकार धनी व्यक्तियों का धन हरण करने में उसकी प्रवृत्ति है ॥ १००४ ॥

नरनाथ, किं प्रवीमि, त्रिपुरान्तरुनयनहाहदग्धोऽपि ।

दुःसाध्यसाधनमदमुत्सृजति न पापकुसुमास्त्रः ॥ १००५ ॥

हे नरनाथ ! अधिक क्या कहूँ, महादेव का शक्ति का अग्नि से जला हुआ पापी कामदेव भी कष्टसाध्य कार्य के सम्पादन में अरुने हठ को अग भी नहीं छोड़ता [ मंजरी के द्वारा असाध्य कार्य से भी सिद्ध कर लेता है ? ] ॥ १००५ ॥

त्वद्दर्शनावकाशां संप्राप्य यतो दुरात्मना तेन ।

चिरसंभृतकोपेन प्रारब्धा साऽपि हन्तुमिषुधारेः ॥ १००६ ॥

( कुलरम्भ )

इसी कारण से उस दुरात्मा कामदेव ने तुम्हारे दर्शन का एक लाभ देकर, चिर काल संचित क्रोध पूर्वक बाणों की वृष्टि से उस पर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया ॥ १००६ ॥

अवहेलयेव भवता संस्पृष्टा येन चेन्द्रदण्डेन ।

जातः स एव तस्या अनन्यभवमार्गणः प्रथमः ॥ १००७ ॥

जिस चन्द्रदण्ड से आपने अग्रहेलना रूप में [ वास्तव में स्नेह रूप से ] मञ्जरी का स्पर्श किया था, वही चन्द्रदण्ड उसके लिए कामदेव का पहला बाण बन गया ॥ १००७ ॥

विज्ञानार्जितदर्पो निभृतं हसितं समानशिल्पाभिः ।

त्वयि सक्तदृशः सरया विसंप्लुते नाट्यनिर्माणे ॥ १००८ ॥

मेरी सखी को अग्रवस्थित नाट्य रचना में तुम में लगी श्रौतियों को देखकर, नाट्य कर्म में सम्पादित गर्ववाली समान कला में शिद्धित सतियों चुपचाप हँसने लगी ॥ १००८ ॥

अवधीर्याऽऽचार्यरूपं भरतोदितदोषकरणमभुताम् ।

विस्तारितः प्रयोगस्त्वदवस्थितिषाच्छ्रया तन्वया ॥ १००९ ॥

नाट्यशास्त्र के आद्य प्रवर्तक आचार्य भरत से कहे नाट्य दोष से उत्पन्न आचार्य के क्रोध को समझ कर, उस कोमलांगी ने आप देर तक बैठे रहें—इस चाह से नाटक का खेल लम्बा कर दिया ( जिससे अधिक समय आपको देख सके ) ॥ १००९ ॥

भग्नेऽपि प्रेक्षणके तदनन्तरभूमिकाश्रयावस्थाः ।

गृह एव निरवसानं वितनोति न नाट्यधर्मेण ॥ १०१० ॥

नाटक के समाप्त हो जाने पर भी उसके आगे की भूमिका को (प्रथम अंक के समाप्त होने पर दूसरे अंक की भूमिका को लेकर), आपने घर में ही सदा करती रहती है, नाटक के रूप में नहीं करती ॥ १०१० ॥

ध्यायत एकं पुरुषं परमात्मविदः शशंस या न पुरा ।

ज्ञानानुकुरुते सैव ध्यायन्ती त्वा महापुरुषम् ॥ १०११ ॥

जो मञ्जरी पहले एक पुरुष परमात्मा को खानने वालों की प्रशंसा नहीं करती थी, वही अब आप महापुरुष का ध्यान करती हुई उन्हीं शानियों का अनुकरण करती है ॥ १०११ ॥

गतमेवमेवमासितमालोक्तिमेवमेवमालपितम् ।

इति विस्मृतान्यकार्या स्मरति कृशांगी त्वदीयलीलानाम् ॥ १०१२ ॥

राजपुत्र ने इस प्रकार से गमन किया था, राजपुत्र इस प्रकार से बैठा था, इस प्रकार से देखा था, इस प्रकार बातचीत की थी, इस प्रकार से वह कृशांगी अन्य सब कार्यों को भुलाकर आपकी चेष्टाओं का ही स्मरण करती है ॥ १०१२ ॥



नलदूयरो वराहो, रतिरमणो रमण एव किं तेन ।

अनिन्द्योऽपि न बुद्धो त्रिद्वयविहितासु सुखगोत्रेषु ॥ १०१३ ॥

कुवेर का पुत्र नलदूर दान है ( क्योंकि नास्त्र के शाप से अर्जुन वृक्ष बना ); रतिरमण-कामदेव नाम मान रो ही रमण है ( अनग होने ने रमण नहीं कर सकता ), कृष्ण का पौत्र और प्रद्युम्नपुत्र अनिन्द्य चतुर पुरुषों की सम्मोह वात्स्य में पण्डित नहीं ॥ १०१३ ॥

न जयन्तोऽजन्तगुणो, न कुमारो मारकर्मणो वाद्य ।

येन समस्तां नयामन्तुमिति सन्धी बह्वृति मानसं क्लेशाम् ॥ १०१४ ॥

जयन्त-दन्द्रपुत्र में भी बहुत गुण नहीं हैं ( उत्तरे और ण रूप धारण करके सीता के कुत्तों पर चतु प्रहार मिलाया ), कुमार-कार्तिकेय भी काम के मोहन आदि कर्मों को अर्थात् नहीं जानता ( अर्थात् कुमार ही है ), आपसी किस्म सबपुत्र से तुलना की जाये, इसी मानसिक क्लेश से मेरी तथा दुःखी है ॥ १०१४ ॥

उत्तमगानो मजरी अन्य सब कायों को छोड़कर अविदित चित्त से आपके बारहनामा वाले इस महा स्तोत्र को इच्छित फल प्राप्ति के लिये लगातार जपती है ॥ १०१७ ॥

तामेव गच्छ यस्यामासज्य विलम्बितोऽसि गतलज्ज ।

वेलामियतोमलमलमेतैरधुना शठानुनयै ॥ १०१८ ॥

हे निर्लज्ज ! उसी के पास जा, जिसमें आसक्त होकर मेरे पास आने में इतनी देर की । अब इन धूतता पूर्ण अनुनयों को—खुशामदों को बन्द करो ॥ १०१८ ॥

वदयामि सापराध क्रोधस्फुरदधर्मंचितभ्रूकम् ।

इति विदधाति सुमध्या हृदयेन मनोरथवृत्तिम् ॥ १०१९ ॥

( सन्दानितकम् )

अब स्त्री के साथ प्रेम करने में काव से पड़ पड़ते आठों से एव भुवों देवा करके इस प्रकार से कहूँगी—ऐसे सकल्यों का अभ्यास यह सुभौषी करनी है ॥ १०१९ ॥

उत्सहते न द्रष्टु प्रतिबिम्बितमानन, कुत शशिनम् ।

का सकथा मृणाले क्षिपति भुजौ सर्वतो व्यथिता ॥ १०२० ॥

यह अपने मुख का परछाई भी शीघ्रे दर्पण में देखने से डरती है, ( चन्द्रमा की भाँति कहा सन्ताप उत्पन्न न हो जाये, इसलिये दर्पण में मुख भी नहीं देखती ), फिर चन्द्रमा का देखने की बात दूर रही । दुःखी होकर वह अपनी बाहुओं को इधर उधर बराबर फँकती है, मृणाल—कमल नाखों पर भुजायें रखने का बात ही कहाँ ॥ १०२० ॥

दूरे कदलीदण्डा ऊर्वोरपि न सहते समारलेपम् ।

करसम्पर्काद्विमुखी विश्राम्यति पल्लवेष्विव विरुद्धम् ॥ १०२१ ॥

वह तो अपनी दोनों जगध्रों को भी मिलाकर नहीं रख सकती—फिर केले के स्तम्भ की बात हो क्या ( उसकी अपनी जगध्रें ही केने के समान हैं—अब उनकी ही मिलाकर नहीं रख सकती—फिर केले के स्तम्भ की बात क्या ) । वह तो अपने दोनों हाथों को परस्पर मिला ही नहीं सकती, इसलिए कोमल पत्तों पर उसका

१ किं किं वन्दुमुपेत्य सुवसि बभ्रान्निर्लज्जं छज्ज न ते,  
वस्त्रा-त शठ मुञ्च मुञ्च, शपथे ॥ पृच्छं वाम्बुञ्जै ।  
स्निग्धा इव रात्रिभ्रामावशात्तामेव यादि प्रियां  
निर्माद्योऽस्तिपुण्यदामनिकरे का यद्वद्वानां रति ॥

लेटना किसी प्रकार सम्भव नहीं । ( अगना स्पर्श भी वह सहन नहीं कर सकती, फिर बाहर की वस्तुओं का स्पर्श कैसे सहेंगी ) ॥ १०२१ ॥

अयि मंजरि, सैव त्वं, विदग्धजनमरिडता पुरो सैव ।

कुन्तुमायुधः स एव व्यसनं कुत प्लुतायातम् ॥ १०२२ ॥

हे मंजरी ! तू तो वही पहले वाली है, चतुर जनों से शोभित यह नगरी भी यही है, कामदेव भी वही है, फिर यह आपत कहाँ से आ पड़ी ॥ १०२२ ॥

यस्याः कामः कृपणो रागकृष्टिस्तृणोलपप्रख्या ।

साऽपि गता भूमिभिर्मां, जीवन्त्या नेह्यते किमिह ॥ १०२३ ॥

जिसका काम दीन-आकृष्टि-कर निम्नल है, स्नेह का आकर्षण-दूरां आदि लता की भाँति तुच्छ है; उसकी भी ऐसी दशा हो गई । जीवित व्यक्ति को इस लोक में क्या नहीं देखना पड़ता ॥ १०२३ ॥

अभियोगशिक्षितानामशिक्षितानां च मदनचेष्टानाम् ।

सुतनु विशेषप्रहणे सामर्थ्यं तद्विदामेव ॥ १०२४ ॥

हे सुतनु ! अत्यन्त परिश्रम के साथ सीखे एवं अभिक्षित पुद्गलों में काम चेष्टाओं के मैद को सम्भले का सामर्थ्य-अनुभव शास्त्र से सीखे व्यक्तियों में ही होता है ( इसलिये फट पत्थनों से भाव को नहीं दिखाया जा सकता, इसलिये हमसे दुर्भाग्य भाव छिन्न नहीं सकता ) ॥ १०२४ ॥

व्यथयन्नपि सद्भायः परिजनचिन्ताकरोऽपि रमणीयः ।

आपत्ते त्वयि लक्ष्मीमभिनवरागाश्रयोऽधिकाक्षेमः ॥ १०२५ ॥

प्रथम उत्पन्न हुई मन की व्याकुलता, मन को पीड़ित करते हुए भी शरीर की शोभा-कान्ति की हानि नहीं पहुँचाती, सतीजनों के लिये चिन्ता का निषय होने पर भी मनोहर होती है । आप में मन की बेचैनी कानानस्याम्य अमर्णाप शोभा को और भी अधिक बढ़ाती है ॥ १०२५ ॥

एकः स एव जातो भुवनेऽस्मिन्नसमसायरूपधौ ।

तेन शशियिम्बफलफे भुवन्मना लेखितं निजं नाम ॥ १०२६ ॥

इस ससार में कामदेव का प्रतिद्रव्यो एक ही उत्पन्न हुआ है, उस भुक्त्वा ने चन्द्र बिम्ब पर अगना नाम लिख दिया है । उसकी कवि बटुए दूर तक फैला है ॥ १०२६ ॥

पादत्नेन सतीलं विन्यमः सुभगनानिनां भूतिः ।

सौभाग्ययराकुन्तुमं घनपतिभूतोः कदर्थितं तेन ॥ १०२७ ॥

उसने सौभाग्य मानने वालों के शिर पर अनायास ही पैर रख दिया (उनको नीचा दिखा दिया), उसने कुवेर के पुत्र-नलकूबर के सौभाग्य के यश, कुमुम को व्यर्थ बना दिया ( मिट्टी में उसका यश मिला दिया ) ॥ १०२७ ॥

नरवचनपटुबुद्धिः संपादितकपटचाटुसंघटना ।

त्वमपि विलासिनि गमिता गतिमियती येन सुभगेन ॥ १०२८ ॥

( अन्तर्विशेषकम् )

हे विलासिनि ! जिस सौभाग्यवान् ने मनुष्यों को ठगने में चतुर बुद्धि; चाटु वचनों से मनुष्यों को बश में करने वाली तुझको भी इस ध्वस्त्या में पहुँचा दिया ॥ १०२८ ॥

तद्वत् तस्य स्थानं, यत्तामहे कार्यसाधनायालम् ।

कुर्वन्त्येष हि यत्नं भिषग्जनाः कृच्छ्रसाध्यरोगेऽपि ॥ १०२९ ॥

इसलिये उसका नाम पता बता; जिससे इच्छित समागम के लिये प्रयत्न किया जाये । क्योंकि वैद्य-कष्टसाध्य रोग में भी यत्न करते ही हैं ( 'याज्ज्वाल-गतप्राणास्तावत्कार्या प्रतिक्रिया' ) ॥ १०२९ ॥

इति गदिते सख्या सा तदभिमुखं चञ्चुरी समुन्मील्य ।

वितरति कृच्छ्रेण चिराद् भावितमक्लिष्टहंकारम् ॥ १०३० ॥

इस प्रकार से सखी के कहने पर उसके सामने कुछ देरी से आँखों को खोल कर-बड़ी कठिनाई से, देर में वह स्पष्ट रूप हँकार करती है-( मुख से कुछ नहीं बोलती ) ॥ १०३० ॥

का पुरुषार्थसमीक्षा द्योतयतः शर्यरीं शरांकस्य ।

तर्पयतां भुवमखिलां सलिलमुचां कोऽभिफांसितो लाभः ॥ १०३१ ॥

'रानि को प्रकाशित करते हुए चन्द्रमा को कौन से पुरुषार्थ की-धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष-किसकी चाह है ? सम्पूर्ण पृथ्वी को पानी से सिंचने हुए बादलों को किस लाभ की आकांक्षा रहती है ? ( किसी की नहीं )' ॥ १०३१ ॥

मण्डयितुं वियदुदयति पुरुहूतधनुर्विनीव फलवान्ध्राम् ।

अनपेक्षितात्मकार्यः परहितकरणग्रहः सतां सहजः ॥ १०३२ ॥

१. चन्द्रमाः प्रयुषवारजिप्सया करोति गोभिः कुमुदावबोधनम् ।

स्वभाव एवोन्नतचेतसां सतां परोपकारव्यसनं हि धीविरम् ॥

कस्मादिन्द्रसौ विनोति जगतीं प्रीयूषकैः इरे;

कस्माद् वा मलभारयैष धरणीं धाराधरः सिञ्चति ।

भ्रामं भ्राममयं च मन्दयति वा कस्मात् त्रिबोधीं रविः

साधूनां हि परोपकारकरणे नोपाप्यपेक्षं मनः ॥

इन्द्रधनुष विना किसी पल की आकाश के ही आकाश को शोभित करने के लिये उदय होता है । सज्जन पुरुष स्वभाव से ही विना किसी स्वार्थ के परानुग्रह तत्पर होते हैं ॥ १०३२ ॥

प्रायेण यन्निदान तन्सेवनमुपशमाय रोगाणाम् ।

स्मरमान्स्व तु यदुत्थ तदेव स्वलु भेषज यतस्तस्य ॥ १०३३ ॥

प्राय करके रोग का वो कारण होना है, वही उस रोग की छान्ति का उपाय होता है । इसलिये काम बन्य व्याधि बन्ता विष पुरुष विशेष के कारण से उत्पन्न हुई है, वही पुरुष इस रोग की औषध है ॥ १०३३ ॥

तेन सहायति सुतनुस्त्वत्पादसरोजरेणुसगतये ।

आशीर्विषयोपेते समोगसुखोदये तु नाकाक्षा ॥ १०३४ ॥

( सन्धानितकम् )

इतसे वह सुगन्धी आषकी चरण धूलि प्राप्त करना चाहती है, आशीर्वाद भूत समोगजन्य सुख का प्राप्ति में उसको विल्कुल चाह नहीं है ॥ १०३४ ॥

प्रमदमुपैति मयूरी परम शब्देन वारिवाहस्य ।

अनिमिषबिलोकितेन प्राप्नोति मयी कृतार्थतामेव ॥ १०३५ ॥

बाल की गणना को सुन्दर मयूरी अति प्रसन्न होती है, अपने मित्र को निर्निमेष दृष्टि से देखती हुई मयूरी अपने को कृतार्थ मानती है ॥ १०३५ ॥

न धृथान्मुक्तिमुखारतया न च पुमल्लोमनाभियोगेन ।

विदधामि तद्गुणास्था स्वरूपमात्रप्रसंगेन ॥ १०३६ ॥

१. ह्राद शृंगीक्ष्य स्य प्रकाशस्तापः कृशानीं पवनस्य वेगः ।

परोपकार कष्टकारतात्मा महाजनानीं सहज स्वभावः ॥ चेमेन्द्र

१. आग से जलने पर दण्ड उपाय किया जाता है, विरस्वविषभौषधम्—इसीसे मायवनिदान में कहा है—हनुर्व्याधिपिपनेस्त विरस्वस्यायंकारियाम् ।

भौषधानविहातासामुपयोगः सुखावदः ॥

हेतुविपरीतायंभाती—विषप्रधानपथ्यमान शोथ में विषकारक दण्ड उपनाद, वमन रोग में—वमनकारक मैनकज आदि देना, अग्नि से जलने पर आग का लेप आदि ।

इसी प्रकार नैषध में भी समयन्ती की कामजन्य व्याधि के लिये नख को उपाय कहा है—

स्वास्त्वा नखद विना न दृढने छारत्य कोश्वोरवाः ।

( नखद—खम पृथ नख की प्राप्ति )

मैं उसके गुणों को भिन्ना प्रशंसा के रूप में वाचलता के कारण नहीं कह रही, और दूती होने से आपका उसके प्रति आष्ट्र करने के लिये भी नहीं कह रही हूँ। केवल आपकी जानकारी के लिये उसके गुणों का वर्णन करती हूँ ॥ १०३६ ॥

सद्भावबद्धमूले स्मितदृष्टिभ्रूविलासपल्लविते ।

सेवन्ते हृद्यरसा रागतरोर्मंजरी धन्या ॥ १०३७ ॥

सद्भाव-शोभन चित्तविकार-रतिभाव के दृढ होने पर, स्नेहभरी दृष्टि से देखने पर, भ्रुवों के विलास से पल्लवित-बड़े, राग रूपी वृद्ध के हृदयगम रस भृंगारादि रस का तथा मंजरी का उपयोग भाग्यशाली ही करते हैं ॥ १०३७ ॥

तिष्ठतु तदगसगो विलोकिता येन ऋटिति वरगात्री ।

तस्यान्यो युवतिजन प्रतिभाति मनुष्यरूपेण ॥ १०३८ ॥

उसके अर्गों के स्पर्श की बात छोड़ो—जिसने भी उस भुगात्री का जल्दी में उडती नजर से एक बार भी देख लिया, वह दूसरी युवतियों को मनुष्य समझने लगता है उनको स्त्री नही समझता ॥ १०३८ ॥

सकृदपि यैरनुभूतस्तत्तनुपरिरम्भसुखरसास्वाद ।

विद्धि नराधिप तेषा दूरीभूत प्रजाकार्यम् ॥ १०३९ ॥

जिसने उसके शरीर का आलिंगन का सुख एक बार भी अनुभव कर लिया है, हे राजन्! वह सब लोक व्यवहार भूल गया ॥ १०३९ ॥

आस्था का रखतु तस्या विषयमहदुर्वलेषु पुरुषेषु ।

यस्या विलासजालकपतित शकुनायते कपिल ॥ १०४० ॥

जिस मंजरी के विलास जाल में गिरा कपिल मुनि भी पक्षी की भाँति पँस जाता है, फिर रूप-रस आदि विषयों के ग्रहण में निर्बल पुरुषों की बात ही क्या ? वे तो अग्रह ही उसके विलासा में पँस जायेंगे ॥ १०४० ॥

दग्धोऽपि पुनर्दग्धो नूनमनगो हरेण, सा तन्वीम् ।

दृष्ट्वाऽपि येन तिष्ठसि निराकुल स्वस्थयूत्तेन ॥ १०४१ ॥

१ इयमकुरिता प्रेम्णा, भानान् पल्लवित्ता भवत् ।

सकोरका मण्यत स्नेहान् कुसुमिता भवेन् ॥

रागादृष्टवती मयमनुरागेण भुज्यते ॥

२ आत्मानमन्त करणे मुनीन्द्रास्तावत् प्रशस्ता परिशीलयन्ति ।

यावन्मुलेन्दु सविज्ञासरगे विज्ञासिनीनां न विशोध्यन्ति ॥

याचयाचदशार्तिं प्रथयति ललना हि मोहनाग्रान्ता ।

सावतावत्पुंसामुत्साह- पल्लवान् समुत्सृजति ॥ १०५३ ॥

सुरत सुर से अभिभूत कामिनी जैसे जैसे चुम्बन आदि में अपनी असमर्थता दिखाती है, वैसे वैसे पुरुषों का उत्साह बाह्य और आन्तरिक सम्भोग में नाना प्रकार से बढ़ता है ॥ १०५३ ॥

इति शून्योद्धतवेरमनि हरति शनै सहजमशुकं तस्मिन् ।

दर्शितसाध्वसलत्वा जगाद् मे किं करोपीति ॥ १०५४ ॥

इस प्रकार कहकर दूती के चले जाने पर एकान्त में समरभट द्वारा उसका स्वाभाविक अशुक धीरे धीरे दूर करना प्रारम्भ करने पर वह भय और लज्जा के साथ बोली—मेरे साथ यह क्या कर रहे हो ॥ १०५४ ॥

अपि मुग्धे तत् प्रियते पुरुषार्थचतुष्टयस्य सारम् ।

इति निगदितसस्मेर स्मरार्थधुरित आततान रतिरुलहम् ॥ १०५५ ॥

हे मुग्धे ! मैं वही पर रहा हूँ जो धर्म अर्थ काम और मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय का सार है । इस प्रकार अपने वचन से ही मुस्कराता हुआ समरभट काम से व्याकुल होकर रति युद्ध करने लगा ॥ १०५५ ॥

१. रतकक्षां कक्षपथमुवक्ष्यने किमपि कुविमुखी सुमुखी नवा ।

हृदनेति मतेति वचोमिपान्मदनदोषनमन्मभिवास्मरत् ॥ इमरी काव्य ७।१११.

(ख) काला तन्वी मृदुरियमिति त्यज्यतामत्र शका,

कविषद् दृष्टा अनभरतो गंगरी भवमाना ।

तस्मादेवा रहसि भवता निर्दय पीडनीया

मन्दाक्रान्ता वितृजति रसनेषुयष्टि समप्रम् ॥ विकटवितम्बा.

(ग) कविता वनिता गीति, प्रायो नादौ रसप्रदा ।

उद्गितान्ति रसोद्रेक गाद्यमाना पुनः पुनः ॥

२. सहज अशुक का धार्य—श्री ललमुखराम मतमुस्तारम त्रिपाठी जी ने छात्रा किया है—परन्तु मेरी दृष्टि में सहज अशुक—से योनिचुद् (Hyman) योनि के ऊपर का स्वाभाविक परदा लेना ठीक है—वही वास्तव में स्वाभाविक-जन्मवाचक है—उसे बसने धीरे धीरे जब हटाना प्रारम्भ किया—तब उसने भय और लज्जा से कहा क्या कर रहे हो ।

३. मुग्धा—मुग्धा नववयस्य नवयौवनभूरिता ।

नवावयवहरयापि छात्राशयपरतिषेधा ॥

(ख) नि सारे अगति प्रवचसद्यो सारं कुराद्वीदृष्टा-

मेक भोगमुख परमाश्रयमानन्वेन पुत्र्य विदुः ॥ अनगरत्न.

(ग) अनिदितमुल्लुख्यं निगुण वस्तु किञ्चिज्जगत्तिरिह कश्चिन्मोक्षहायावच्छेद ।

मम तु मत्तमतस्मेरवारुषयधूयन्मदकलमदिरादौवोविमोक्षां हि मोक्ष- ॥

(घ) कक्षहृषं सुरतमाचक्षते विनाशमकृत्वाद् यामयाद्यव्यय कामस्य ।

विहितनमस्कृतिरासनमधिताम्रौ ' नायकेन निर्दिष्टम् ।

पृष्ठे च देहकुशले विनयान्वितमभ्यधाद् दूती ॥ १०४७ ॥

दूती नमस्कार करके, समरभट्ट द्वारा अंगुली से बताये आसन पर बैठ गई । शरीर का कुशल मंगल पूछने पर दूती ने विनय पूर्वक कहा—॥ १०४७ ॥

श्रीमन्नद्य श्रेय सम्पन्ना गुरुजनाशिपोऽशोपाः ।

अथ मदन प्रसन्नो, भाग्यवयैरद्य परिणतं फलतः ॥ १०४८ ॥

श्रीमान् ! आज गुरुजनों के सब आशीर्वाद कल्याण से युक्त हो गये—सफल हो गये । आज कामदेव प्रसन्न है, आज शुभ कर्मों का फल प्राप्त हो गया ॥ १०४८ ॥

अद्य जननी प्रसूता, सौभाग्यगुणोदयोऽद्य निष्णीतः ।

त्वयि वितरति सत्नेहं निरामयप्रश्नभारतीं तस्या ॥ १०४९ ॥

( सन्धानितकम् )

आज माता का जन्म देता उत्कृष्ट दुष्टा, आज नाता भस्तर से लौभाग्य का उदय हुआ, स्नेह के साथ आज आपने जो इसका आरोग्य पूछा ॥ १०४९ ॥

उत्कलिकाकुलमनसामुद्रिक्तरिरसयाऽभिभूतानाम् ।

औदासीन्य भजता समागता भवति नालिका यूनाम् ॥ १०५० ॥

उत्कण्ठा से बेचैन एवं लुम्भन आलिंगन आदि से रमण की इच्छा वाले युवा स्त्री पुरुषों को, तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति के कारण जो उदासीन बनना पड़ता है, वह उसकी मूर्खता है—तीसरे पुरुष का उस समय उपस्थित होना मूर्खता है ॥ १०५० ॥

धृतसुमन राग्धनुपा सहायवान्तिष्ठ दक्षितया सार्धम् ।

यामो वयं, न राजति विजनस्थितमिधुनसन्निधावपर ॥ १०५१ ॥

पुष्पों का धनुष बाण लिये कामदेव तुम्हारा सहायक है, प्रेयसी के साथ बैठो, मैं भी जाती हूँ, एकान्त में बैठे जोड़े के पास दूसरा आदमी अच्छा नहीं लगता ॥ १०५१ ॥

एषा नृत्यश्रान्ता मदनेनायासिताऽतिसुकुमारा ।

त्वमपि रतिसमरशूर, स्वर्गभुव सन्तु कुशलाय ॥ १०५२ ॥

यह मजरी नृत्य करने से थक गई है, काम से पिडित है, अति सुकुमार है, तुम भी रतियुद्ध में शूर हो, आपके लिये देवता कुशल करें ॥ १०५२ ॥

१ मन्त्रे अर्धांशोच मैषज्ये भोजने पियागमने ।

उच्यते स नाहारिकः अत्रुक्त अपि य त्वरे ॥

२ भोषी चाक्षय, पयोबरहय अकामुर्क इक्ष्वर

पीनोरु द्वयमेक रागकवच ताम्रावरं पृथ्वजम् ।

कांक्षीनूपुरशब्ददुन्दुभिरव हिकाप्रणादाकुल

कामिन्या नक्षदन्तशस्त्रमतुल प्राप्नोतु युद्ध मवान् ॥



यावद्यावदराक्तिं प्रथयति ललना हि मोहनाक्रान्ता ।

सावन्तावत्पुसासुत्साहं पल्लवान् समुत्सृजति ॥ १०५३ ॥

सुरत सुर से अभिभूत कामिनी जैसे जैसे चुम्बन आदि में अपनी असमर्थता दिखाती है, वैसे वैसे पुरुषों का उत्साह बाध और आभ्यन्तर सम्भोग में नाना प्रकार से उड़ता है ॥ १०५३ ॥

इति शून्योक्तवेश्मनि हरति शनैः सहजमशुक तस्मिन् ।

दर्शितसाध्वसलज्जा जगाद् मे किं करोषीति ॥ १०५४ ॥

इस प्रकार कहकर दूती के चले जाने पर एकान्त में समभ्य द्वारा उसका स्वाभाविक अशुक धीरे धीरे दूर करना प्रारम्भ करने पर वह भय और लज्जा के साथ बोली—मेरे साथ यह क्या कर रहे हो? ॥ १०५४ ॥

अयि मुग्धे तत् क्रियते पुरुषार्थचतुष्टयस्य यत् सारम् ।

इति निगदितसस्मेर स्मरनिधुरित आतृप्तान रतिकलहम् ॥ १०५५ ॥

हे मुग्धे ! मैं वहीं कर रहा हूँ, जो वर्म अर्थ काम और मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय का सार है । इस प्रकार अपने वचन से ही मुस्कृता हुआ समरमट काम से व्याकुल होकर रति बुद्ध करने लगा ॥ १०५५ ॥

१ रत्नकला कलपायसुवक्षणे किमाप कुविमुलो मुमुक्षो नवा ।

द्वन्द्वनेतिममेति वचामिपामदनदोषनमन्त्रमिवास्मरत् ॥ इन्मीर काव्य ७।१११

(ख) बाबा चन्दो मृदुस्त्रिमिति स्थयतामत्र शका,  
काचिद् दृष्टा स्मरभरतो मंगरी भञ्जमाना ।

तस्मादेषा रदसि भवता निदय पीडनाया  
मदाक्रान्ता विभ्रजति रसनेषुयष्टि समयम् ॥ विकटनितम्बा

(ग) कविता वनिता गीति प्रायो नादौ रसप्रदा ।

उद्गिरन्ति रसोद्भक्त गाढमाना पुन पुन ॥

२ सहज अशुक का अर्थ—श्री तनसुखराम मनसुखराम त्रिपाठी जी ने खजना किया है—परन्तु मेरी दृष्टि में सहज अशुक—से योनिबुद्ध (Hyman) योनि के ऊपर का स्वाभाविक परदा लेना ठीक है बड़ी वास्तव में स्वाभाविक-जन्मजात वक्ष है—उसे उसने धीरे धीरे जब इतना प्रारम्भ किया, तब उसने भय और लज्जा से कहा क्या कर रहे हो ।

३ मुग्धा—मुग्धा नववयस्तत्र नवयौवनमृषिता ।

नवान्नाहस्यार्जवे खजनापारतिर्यया ॥

(ख) नि सारे जगति प्रपचसद्व्यो सार कुट्टनीदृशा

मेक भोगसुख परमाणपरमानन्देन तुल्य विदु ॥ अनारक्ष

(ग) अविदितसुखदुःख निर्गुणवस्तु किञ्चिज्जगदतिरिहकलि मोक्षहरयावच्छे ।

ममत्तु मतमनस्मेरतादृश्यपूर्णमदकलमदिराप्तीनीतिमोक्षा हि मोक्ष ॥

(घ) कलहहप सुरतमाचक्षते विवादात्मकत्वाद् वाग्राज्यत्वाच्च कामस्य ।

नानासुरतविशेषैराध्य चकार भुक्तसर्वस्वम् ।

गणिकाऽसौ राजसुत त्वगस्थिरोर्य मुमोच नातिचिरात् ॥१०५६॥

उपसहार—नाना प्रकार के सम्भोग विशेषों से इस गणिका ने राजपुत्र को प्रसन्न करके जल्दी से उसका सम्पूर्ण धन ले लिया—केवल त्वचा और अस्थि ही उसके शरीर पर छोड़ी ॥ १०५६ ॥

तद्यन्मयोपदिष्ट कामिजनार्थान्निकारणं तेन ।

महतीं समृद्धिमेप्स्यसि कामुकलोकाहृतेन विसेन ॥ १०५७ ॥

कामिजनों से धन प्राप्त करने के जो उपाय मैंने कहे हैं उनके द्वारा कामुक जनों से त्वांचे हुए धन से बहुत ऐश्वर्य को प्राप्त करोगी—बहुत धनी पनेगी ॥ १०५७ ॥

इत्युपदेशभयणप्रबोधतुष्टा जगाम धाम स्वम् ।

मालत्यपगतमोहा विकरालापादवन्दना कृत्वा ॥ १०५८ ॥

विकराला से लिये इस उपदेश को मुनकर, शान होने से प्रसन्न मालती मोह के दूर होने पर विकराला के पैरों में नमस्कार करके अपने घर को चली गई ॥ १०५८ ॥

काल्यमिदं य शृणुते सम्यक् काव्यार्थपालनेनासौ ।

नो वक्ष्यते कदाचिद्विद्वेद्याधूर्तकुट्टनीभिरिति ॥ १०५९ ॥

इस काव्य को जो भली प्रकार सुनता है, और इस काव्य के अर्थों को कार्य रूप में लाता है, वह कभी भी विद्वेद्याधूर्त और कुट्टनी से ठगा नहीं जाता ॥ १०५९ ॥

इति श्रीकाश्मीरमहामण्डलमहीमण्डनराजजयापीठमन्त्रिप्रवर-

दामोदरगुप्तकविविरचित कुट्टनीमत समाप्तम् ।

— ❀ ❀ —

(७) शय्यावस्त्रममरते, तुरगाराहेव पौषे भावे ।

वस्त्रीव वचसुरते या स्यात्सैव विदजनपूज्या ॥

१ यद् द्यूतेन युषाष्टरस्य विहित, यद् विष्णुना वा वळे

यत्पुण्ड्रे घनाधिपस्त्र कञ्जिना राज्ञो नखस्यापि यत् ।

संभूयापि य वस्त्रासुरमलैरुन्मेष्य पाथोनिधे

वेद्या पश्यत छीज्यैव कुरुते सप्तदृष्टे कामिनाम् ॥

(४) तावच्च तूष्णं धनमादरेत् यावत् स रागेण विवक्षस्य ।

प्रशान्तरागानलशीतलक्षस्तु स छोहपिण्डी कठिनरवसेति ॥

(५) याचेत सर्वं सुरतार्त्तिकाले समूहबन्धेन निरुद्धकायम् ।

प्रायेण तृप्ताय न रोचते हि विमग्नशास्त्रापिपयवमाश्रम् ॥

(६) निषोतसार विरतापकार क्षुब्धेक्षुरावकमतिमे त्यजेत्तम् ।

छन्धाधिवासक्षयकारि शुष्क पुष्प स्यत्येव हि केशपाश ॥

समयमादका ५।७० ७८,